हिन्दी प्रचारिणी सभा: (कैनेडा) की अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका
Hindi Chetna: International quarterly magazine of Hindi Pracharini Sabha Canada
वर्ष : १७, अंक : ६७, जुलाई २०१५ •Year 17, Issue 67, July 2015

हिन्दी चेतना

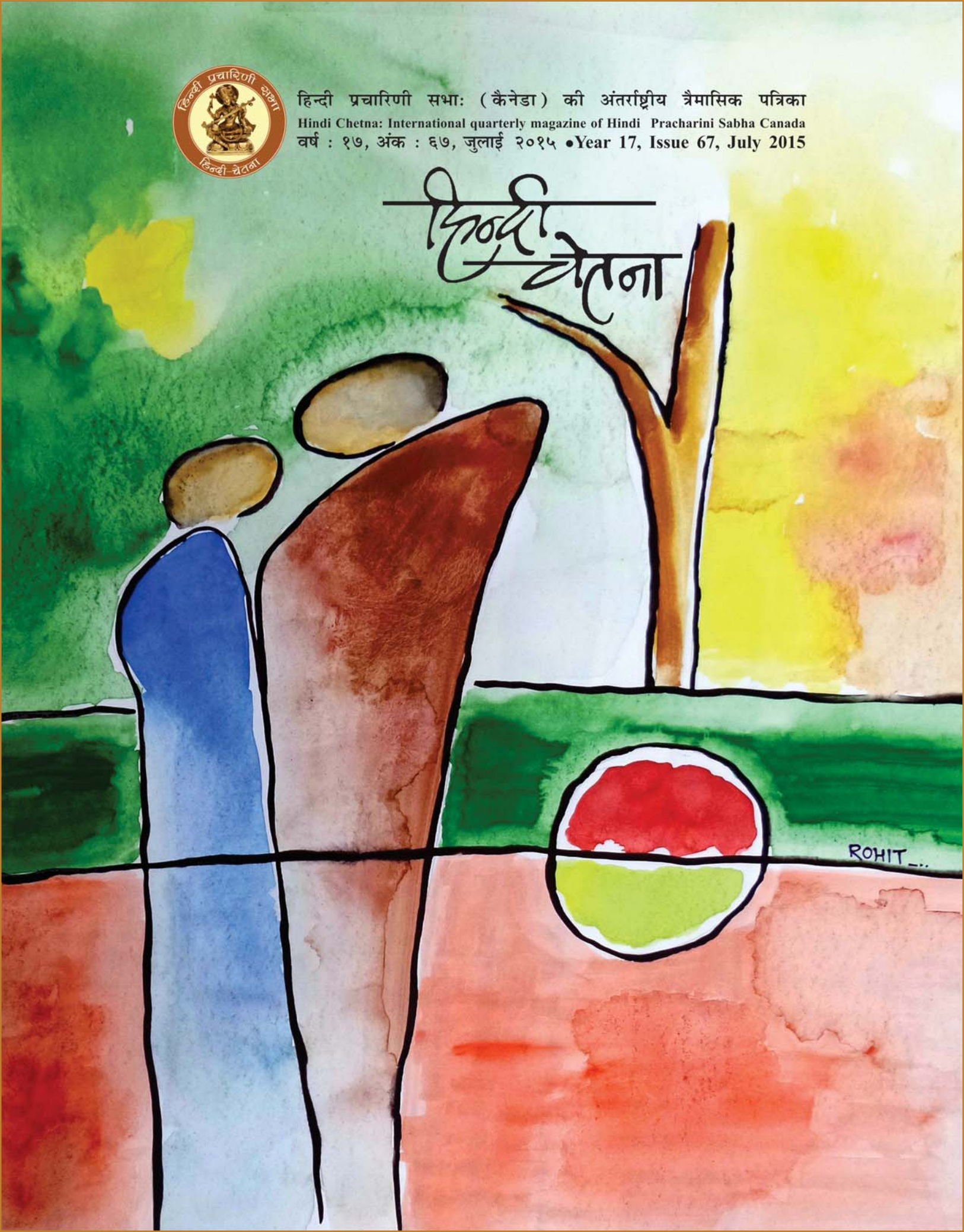

शिवना प्रकाशन

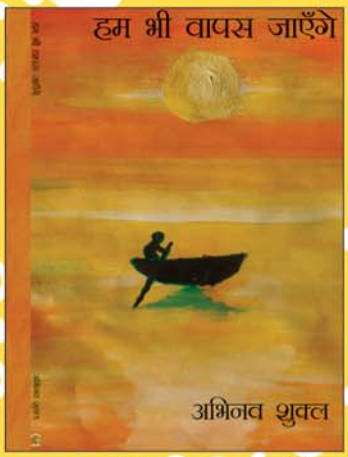

पाल ले इक रोग नादाँ...
(ग़ज़ल संग्रह)
ISBN: 978-93-81520-07-9
गौतम राजरिशी
मूल्य : 200 रुपये

दस प्रतिनिधि कहानियाँ
(कहानी संग्रह)
ISBN: 978-93-81520-17-8
सुधा ओम ढींगरा
मूल्य : 100 रुपये

कसाब.गांधी@यरवदा.in
(कहानी संग्रह)
ISBN: 978-93-81520-18-5
पंकज सुबीर
मूल्य : 150 रुपये

हम भी वापस जाएँगे
(कविता संग्रह)
ISBN: 978-93-81520-19-2
अभिनव शुक्ल
मूल्य : 100 रुपये

सार्थक व्यंग्य का यात्रीः प्रेम जनमेजय
(हिन्दी चेतना ग्रंथमाला)
ISBN: 978-93-81520-16-1
सं. सुधा ओम ढींगरा, लालित्य ललित
मूल्य : 350 रुपये

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें अब सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर उपलब्ध हैं

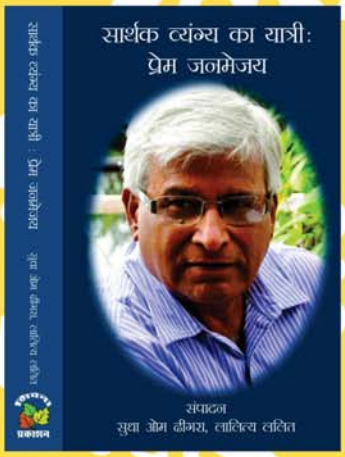

http://www.flipkart.com

http://www.amazon.in

http://www.ebay.in

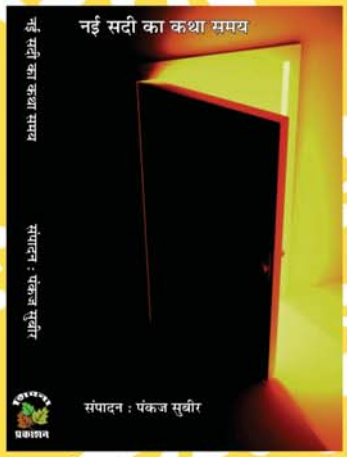

नई सदी का कथा समय
(हिन्दी चेतना ग्रंथमाला)
ISBN: 978-93-81520-14-7
सं. पंकज सुबीर
मूल्य : 200 रुपये

शिवना प्रकाशन

शॉप नं. 3-4-5-6, पी. सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्यप्रदेश 466001
फोन 07562-405545, 07562-695918, मोबाइल +91-9977855399
Email: shivna.prakashan@gmail.com, http://shivnaprakashan.blogspot.in

संरक्षक एवं प्रमुख सम्पादक
श्याम त्रिपाठी
(कैनेडा)

सम्पादक
सुधा ओम ढींगरा
(अमेरिका)

सह-सम्पादक
रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' (भारत)
पंकज सुबीर (भारत, समन्वयक)
अभिनव शुक्ल (अमेरिका)

परामर्श मंडल
पद्मश्री विजय चोपड़ा (भारत)
कमल किशोर गोयनका (भारत)
पूर्णिमा वर्मन (शारजाह)
पुष्पिता अवस्थी (नीदरलैंड)
निर्मला आदेश (कैनेडा)
विजय माथुर (कैनेडा)

सहयोगी
सरोज सोनी (कैनेडा)
राज महेश्वरी (कैनेडा)
श्रीनाथ द्विवेदी (कैनेडा)

विदेश प्रतिनिधि
डॉ. एम. फ़िरोज़ ख़ान (भारत)
चाँद शुक्ला 'हदियाबादी' (डेनमार्क)
अनीता शर्मा (शिंघाई, चीन)
अनुपमा सिंह (मस्कट)

वित्तीय सहयोगी
अश्विनी कुमार भारद्वाज (कैनेडा)

आवरण चित्र तथा अंदर के रेखाचित्र
रोहित रूसिया (छिंदवाड़ा)

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी (सीहोर, भारत)
शहरयार अमजद ख़ान (सीहोर, भारत)

(हिन्दी प्रचारिणी सभा कैनेडा की त्रैमासिक पत्रिका)
Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001
Financial support provided by
Dhingra Family Foundation
वर्ष : 17, अंक : 67
जुलाई-सितम्बर 2015
मूल्य : 5 डॉलर ($5), 50 रुपये
'हिन्दी चेतना' को आप ऑनलाइन भी पढ़ सकते हैं :
http://www.vibhom.com/hindi chetna.html
http://hindi-chetna.blogspot.com
फेसबुक पर 'हिन्दी चेतना' से जुड़िये
https://www.facebook.com/hindi.chetna

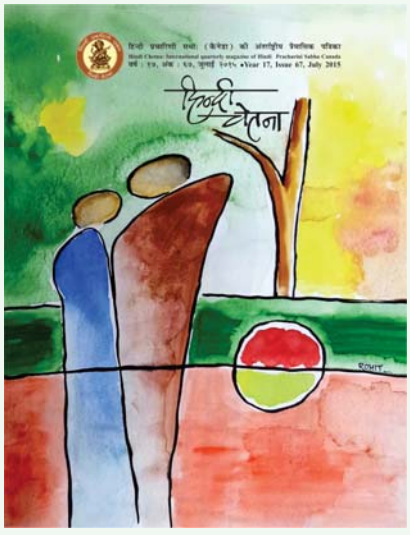

HINDI CHETNA

6 Larksmere Court, Markham Ontario, L3R 3R1
Phone : (905) 475-7165, Fax : (905) 475-8667
e-mail : hindichetna@hotmail.com
Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna ID No. 84016 0410 RR0001

Hindi Chetna is a literary magazine published quarterly in Toronto, Ontario under the editorship of Mr. ShiamTripathi. Hindi Chetna aims to promote the Hindi language, Indian culture and the rich heritage of India to our children growing in the Canadian society. It focuses on Hindi Literature and encourages creative writers, young and old, in North America to write for the magazine. It serves to keep readers in touch with new trends in modern writing. Hindi Chetna has provided a forum for Hindi writers, poets, and readers to maintain communication with each other through the magazine. It has brought local and international writers together to foster the spirit of friendship and harmony.

इस अंक में

सम्पादकीय 5

उद्‌गार 6

साक्षात्कार

प्रताप सहगल

प्रेम जनमेजय 9

कहानियाँ

प्रश्न-कुंडली

गीताश्री 15

काँच की दीवार

नीलम मलकानिया 21

केस नम्बर पाँच सौ सोलह

माधव नागदा 23

अग्नि परीक्षा

प्रो. शाहिदा शाहीन 29

व्यंग्य

जब मैं अमरीका गया

सुधाकर अदीब 32

लघुकथा

शादी का शगुन

डॉ.राम निवास मानव 35

बीमार आदमी

रणजीत टाडा 35

ख़ास आप सबके लिए!

अनिता ललित 35

निबन्ध

पगडंडी से पुस्तकालय तक

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल 36

लेख

डेनमार्क में हिन्दी व भारतीय संस्कृति का स्वरूप

अर्चना पैन्यूली 40

विश्व के आँचल से

नीना पॉल से बातचीत

कैलाश बुधवार 44

भाषांतर

तेलुगु कहानी / तारों से खाली आसमान

पेद्दिंटि अशोककुमार

अनुवादः आर. शांता सुंदरी 47

ओरियानी के नीचे

एसिड अटैक और प्रेम की प्रति हिंसा

सुधा अरोड़ा 51

गीत

जया गोस्वामी 55

नवगीत

रमेश गौतम 56

शशि पाधा 57

कविताएँ

मनीषा श्री 58

अनीता शर्मा 59

संध्या शर्मा 59

नीलोत्पल 60

दोहे

डॉ. सुरेश अवस्थी 61

संजीव सलिल 61

ग़ज़ल

ज़हीर क़ुरैशी 62

हाइकु

रमेश चन्द्र श्रीवास्तव 63

ताँका

डॉ. कुमुद बंसल 63

माहिया

डॉ. सरस्वती माथुर 63

विश्वविद्यालय के प्रांगण से

कश्यप पटेल 64

अविस्मरणीय

गिरिजा कुमार माथुर 64

पुस्तक समीक्षा

अम्बर बाँचे पाती

डॉ.ज्योत्स्ना शर्मा 65

पाल ले एक रोग नादाँ....

पवन कुमार 66

खिड़कियाँ खोलो

सौरभ पाण्डेय 68

दस प्रतिनिधि कहानियाँ

पूजा प्रजापति 70

कसाब.गांधी@यरवदा.इन

वंदना गुप्ता 73

गीतोपनिषद

डॉ. सुशीला देवी गुप्ता 77

फैसला अभी बाक़ी है

शहरयार अमजद ख़ान 78

पुस्तकें 78

साहित्यिक समाचार 79

आख़िरी पन्ना

सुधा ओम ढींगरा 82

'हिन्दी चेतना' की सदस्यता प्राप्त करने हेतु सदस्यता शुल्क 200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष), 1000 रुपये (पाँच वर्ष) अथवा 3000 रुपये (आजीवन) आप 'हिन्दी चेतना' के बैंक एकाउंट में सीधे अथवा ऑनलाइन भी जमा कर सकते हैं।

Bank : YES Bank, **Branch :** Sehore (M.P.)

Name : Hindi Pracharini Sabha Hindi Chetna

Account Number : 041185800000124

IFS Code : YESB0000411

भारत में 'हिन्दी चेतना' के सदस्य बनने हेतु संपर्क करें-

पंकज सुबीर, पी. सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश-466001

मोबाइल : 09977855399, दूरभाष 07562-405545

ईमेल : subeerin@gmail.com

'हिन्दी चेतना' सभी लेखकों का स्वागत करती है। अपनी मौलिक रचनाएँ चित्र और परिचय के साथ भेजें। 'हिन्दी चेतना' एक साहित्यिक पत्रिका है, अतः रचनाएँ भेजने से पूर्व इसके अंकों का अवलोकन ज़रूर कर लें। रचनाएँ भेजते समय निम्नलिखित नियमों का ध्यान रखें:

- 'हिन्दी चेतना' जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी।
- प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा।
- पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी।
- रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा।
- प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।
- सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में भेजें, पीडीएफ़ अथवा स्कैन इमेज न भेजें।
- बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें।

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं।

संपादक मंडल तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

अगर आदमी का मन सबल है, तो वह हर बाधा पार कर सकता है

निस्संदेह भारत प्रगति, उन्नति और विकास के पथ पर तीव्र गति से अग्रसर है। पर कुछ दिशाओं की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता; जिसमें सरकार के साथ जनता के साथ की ज़रूरत होती है। देश में चारों ओर प्रदूषण का विराट रूप एक बड़ी चुनौती है। इससे शरीर में कितने रोगों को पनाह मिलती है, गत दिवस हेल्थ जर्नल के आँकड़े देखकर मैं दंग रह गया। मैगी के लिए लोगों ने बेहद शोर मचाया और उसे हटा भी दिया गया; लेकिन शराब और गुटका तथा प्रदूषण, जो जीवों के लिए बेहद हानिकारक और घातक है, उस तरफ ध्यान देना तो दूर, लोग उसके परिणामों के बारे में जानना भी नहीं चाहते, सुनने से भी गुरेज करते हैं।

आज मैं आपका ध्यान जिस विषय की ओर दिलाना चाहता हूँ, वह एक मानवीय समस्या है; जो मुझे बार-बार झकझोरती है। वह है समाज के वे लोग जो किसी न किसी प्रकार की विकलांगता के शिकार हैं। विकलांगता और उससे जन्मी विवशता को लोग भारत में अधिकतर समझ नहीं पाते और जीवन के कई क्षेत्रों में इन्हें वह सम्मान नहीं मिलता; जिसके वे अधिकारी हैं। रोटी-रोज़ी के लिए भी इन लोगों को काफी मशक्क़त करनी पड़ती है।

मैं लगभग अर्ध शताब्दी से विदेशों में रह रहा हूँ। यहाँ पर इन लोगों को विशेष सुविधाएँ और उनके जीवन सम्बन्धी विशेष प्रवधान हैं। सरकार की ओर से स्कूलों, सरकारी दफ़्तरों और अन्य संस्थाओं में उनका स्वागत होता है। अपनी पिछली भारत यात्रा के दौरान मैंने इन लोगों की जो दुर्दशा देखी, वह दिल दहलाने वाली थी। अपने पराए इनसे कतराते थे। कुछ स्थानों में थोड़ा बहुत परिवर्तन हुआ हैं; किन्तु वह नहीं के बराबर है। परिवार से लेकर सारे राष्ट्र में ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति बनी हुई है, जिसे हम अनदेखा नहीं कर सकते। कुछ दिन पहले भारत के चैनल एन डी टी वी पर एक कार्यक्रम देखा; जो नाटकीय शैली में संयोजित किया गया था, जिसमें मिडिया के लोग भूमिका निभा रहे थे। उसे देखकर प्रतीत हुए कि देश में इनकी स्थिति करुणाजनक है। इस समस्या को दर्शाने के लिए अभिनय कर रहे पात्रों पर की गई प्रतिक्रियाएँ दर्शकों को दिखाई गईं इस कार्यक्रम का उद्देश्य बिलकुल स्पष्ट था कि यह समाज की सच्चाई है। लोग किस प्रकार, किस हद तक इन विवश लोगों के साथ निर्दयता का व्यवहार करते हैं। उनके अधिकारों पर आघात करते हैं। उनकी कोमल भावनाओं को ठेस पहुँचाते हैं। उन्हें अपनी इच्छाओं को व्यक्त करने का भी हक नहीं देते। उनका किस तरह तिरस्कार, अपमान ? और निरादर किया जाता हैं ; जबकि अपनी उस स्थिति के लिए उनका कोई दोष नहीं।

हिन्दी साहित्य के विद्वान् डॉ. रघुवंश सहाय वर्मा, जो डॉ. रघुवंश के नाम से जाने जाते थे, अपनी योग्यता के बल पर अपनी पहचान बनाने में सफल हुए, साथ ही 1964 में दो भागों में प्रकाशित हिन्दी साहित्य कोश के सम्पादन में संयोजक के कार्य का उन्होंने कुशलतापूर्वक निर्वाह किया। यह कोश आज भी हिन्दी जगत् में अपना सर्वोच्च स्थान बनाए हुए है। इस कोश के प्रधान सम्पादक थे धीरेन्द्र वर्मा और ब्रजेश्वर वर्मा तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी। आश्चर्य जनक बात है कि डॉ. रघुवंश हाथ से कार्य न करके केवल पैर से ही कार्य कर पाते थे। उन्होंने पूरा लेखन पैर से ही किया। यही नहीं पोलियो ग्रस्त डॉ. महाराज कृष्ण जैन ने कहानी लेखन महाविद्यालय के द्वारा लगभग 4 दशकों तक कई सौ लेखकों को कहानी लेखन के लिए तैयार किया। अगर आदमी का मन सबल है, तो वह हर बाधा पार कर सकता है। ज़रूरत है समाज उन्हें सम्मान जनक स्थान दे और सहयोग करे। विदेशों में इन्हें 'स्पेशल पीपल' कहा जाता है और उनकी ओर ख़ास ध्यान दिया जाता है। मॉल, पार्किंग लॉट में इनके लिए स्थान सुरक्षित होते हैं। स्कूलों में बच्चों को इनसे प्यार करना और इनका आदर करना सिखाया जाता है। नौकरी में भी इन लोगों से किसी तरह का भेदभाव नहीं किया जाता।

समाज का दृष्टिकोण बदलने के लिए उनमें किस तरह जागरूकता लाई जाए, इस विषय पर गम्भीरता से चिंतन करने की आवश्यकता है।

आपका,

श्याम त्रिपाठी

ईमेल पता परिवर्तन की सूचना

'हिन्दी चेतना' का ईमेल पता बदल गया है, सभी लेखकों से आग्रह है कि अब पत्रिका हेतु अपनी रचनाएँ तथा पत्र आदि नए पते पर ही भेजें। पूर्व के पते पर न भेजें, वह बंद कर दिया गया है। नया ईमेल पता यह है:-

e-mail :
hindichetna@hotmail.com

उद्‌गार

मैं भी सहमत हूँ

'हिन्दी चेतना' का अप्रैल अंक पढ़ा। शुरुआत कहानी से। महेंद्र दवेसर की 'शारदा' फेमिनिज़्म की झंडाबरदार और आज के समाज का सच उगलती है। 'गॉड ब्लेस यू' में डॉ. वंदना मुकेश का कथ्य हालिया ज़िंदगी के किसी किरदार को जीता दिखाई देता है। अख़बार नवीस हूँ, भूमिका द्विवेदी की रस्म-ए-इज्रा कालमों में बटी ज़िंदगी के कुछ ख़ास पहलुओं पर लेज़र बीम डालती है। लघुकथाओं में लोक सहित दीगर अनुभव रंग समेटने की खुली कोशिश है। माया एंजेलो मेरी एक पसंदीदा कवयित्री हैं। माया की रचनाधर्मिता पर गरिमा श्रीवास्तव की सोच का कैनवास विहंगम है। कविताओं में अंतस् से उपजे आक्रोश की अभिव्यक्ति है। फिर भी अतृप्ति बाकी रह जाती है। प्रवासी साहित्य में तुलना के स्वर लाउड न होना खटकता है। कुल जमा कलेवर की बात करें तो हिन्दी चेतना, सुधा ओम ढींगरा के शब्दों को पत्रिका-पाठक के रिश्ते की नज़र से प्राण प्रतिष्ठित करती हैं, जब वे अपने सम्पादकीय में कहती हैं 'हमारा आपसी रिश्ता और मज़बूत होगा।' यक़ीनन, मैं भी सहमत हूँ।

-किशोर दिवसे, बिलासपुर, छत्तीसगढ़।

****

खूबसूरत कथानक

'हिन्दी चेतना' के अप्रैल-जून अंक में वंदना देव शुक्ल की कहानी 'मोहभंग' आज के समाज की एक कटु सच्चाई को इंगित करती है, साथ में समाधान भी प्रस्तुत करती है कि जब आप वृद्ध होने पर अकेले हो जाएँ और बच्चों के लिए आपकी अहमियत लगभग नगण्य हो गई हो या फिर अपनी ज़रूरत तक सीमित हो गई हो, तब ज़रूरी है अपने अकेलेपन को भरना। फिर चाहे माध्यम जानवर ही क्यों न बनें .....खूबसूरत कथानक बुना गया है, जो पाठक को आकर्षित करता है। वहीं प्रज्ञा की 'इमेज' कहानी भी ज़िन्दगी का यथार्थ प्रस्तुत करती है, कैसे इंसान इमेज बनाने के लिए किसी भी हद को पार कर सकता है, उसका चित्रण है। मगर कभी-कभी नुकसान भी उठाना पड़ सकता है। ये भी ध्यान देने योग्य है, इसलिए किसी के भी जीवन के एक पहलू को न देखकर सम्पूर्णता से जानना ज़रूरी होता है, वर्ना, कब इंसान ठगा जाए, उसे पता ही नहीं चलेगा। महेंद्र दवेसर दीपक की कहानी 'शारदा' एक औरत के बाँझपन से उपजी त्रासदी का चित्र है, जिसमें एक बार वो खुद अपने हाथ जला बैठती है, जब अपनी ही बहन और पति उसे धोखा दे देते हैं तो दूसरी बार जहाँ आसरा पाती है, वहाँ भी उसका शोषण होने लगता है तो चीत्कार कर उठती है। उसके अन्दर की औरत ये सोच आख़िर उसका दोष क्या है, तड़प उठती है, 'बाँझपन मेरी मजबूरी है जुर्म नहीं, तुम मर्द लोग बार-बार इसे जुर्म बना सज़ा देते हो' सारी पीड़ा इन शब्दों में बयान हो जाती है। वहीं अन्य कहानियाँ और लघुकथाएँ भी ध्यान खींचती हैं।

गरिमा श्रीवास्तव ने एक थी माया के माध्यम से माया एंजेलो के जीवन वृत्त से परिचित कराया, वहीं मंजू मिश्र और निर्मल रानी का प्रवासी साहित्य पर दृष्टिपात करते आलेख प्रवासी कविता और कहानी के विभिन्न पहलुओं से परिचित कराते हैं, जो बताते हैं अच्छा और पठनीय साहित्य प्रवासियों द्वारा भी उपलब्ध कराया जा सकता है यदि आलोचक उन पर ध्यान दें तो। कविता, दोहे, ग़ज़ल, हाइकु, गीत के साथ संस्मरण, पुस्तक समीक्षा और साहित्यिक समाचारों को भी प्रमुखता से जगह दी गई है। सबसे अंत में सुधा ओम ढींगरा द्वारा लिखित आख़िरी पन्ना वो भेद खोलता है, जिस पर अक्सर भारतीय आपत्ति तो जताते हैं मगर इन्साफ यहाँ उम्र बीतने पर भी नहीं मिलता, वहीं अमेरिका में गलत करने वाले को तुरंत सज़ा दी जाती है, जिसको देने का मुख्य उद्देश्य यही है कि यदि आप पश्चिम की नक़ल कर ही रहे हैं, तो वहाँ की अच्छाइयों को भी अपनाइए। वहीं उनके मन में एक टीस भी है कि आज भी अपने देश में निर्भया इन्साफ़ को तरस रही है, वहीं वहाँ तुरंत दिया न्याय स्वस्थ सन्देश देता है, ताकि जनता का न्याय व्यवस्था पर भरोसा कायम रहे। एक संदेशपरक और संतुलित आलेख।

'हिन्दी चेतना' इसी तरह प्रगति के सोपान तय करती रहे और देश और विदेश दोनों धाराओं का संगम कराती रहे ताकि पाठक अपने देश के साथ विदेशी संस्कृति से भी परिचित होता रहे।

-वन्दना गुप्ता, दिल्ली।

****

संपादन में तत्परता व चुस्ती

'हिन्दी चेतना' का 65वां अंक मिला। अन्तरंग और बहिरंग दोनों ही आकर्षक और बेहतरीन। वरिष्ठ कथाकार मृदुला गर्ग की कहानी 'सितम के फनकार' ने भीतर तक झकझोरा, नीना पॉल की 'सिगरेट बुझ गई' एक सामन्ती मर्द के दुःखद अंत का किस्सा रही। कंचन सिंह चौहान की कहानी 'मोरा पिया मोसे बोलत नाही' प्रेम में मर्द की फितरत की किस्से बयानी है ... बाकि कहानियाँ भी ठीक-ठाक हैं। अफ़रोज़ और नासिरा शर्मा का साक्षात्कार दोनों ही अंक की शोभा बढ़ाते हैं। संपादन में आपकी तत्परता व चुस्ती दिखाई देती है। नरेंद्र व्यास की कविताओं ने भी मन को छुआ। इतनी अच्छी पत्रिका के सम्पादन हेतु आप बधाई की पात्र हैं। मेरी ओर से आपको ढेरों शुभकामनाएँ!

-रंजना श्रीवास्तव, सिलिगुड़ी

****

मर्मस्पर्शी कहानियाँ

'हिन्दी चेतना' का जनवरी (2015) अंक ताज़े फूलों वाले मुख पृष्ठ से लेकर आत्मीय ऊष्मा से भरा आपका आख़िरी पन्ना बेहद मर्मस्पर्शी कहानियाँ तथा रचनाएँ ... विशेषकर कहानी के भीतर कहानी स्तम्भ में सुशील जी बड़ी गहराई तथा मनोयोग से चयनित कहानी को पर्त दर पर्त उकेरते चलते हैं। आलोचना अंक तो दस्तावेज़ी था। आप तथा सहयोगियों को मेरी बधाई!

-सूर्यबाला, मुम्बई।

****

वन्दना देव शुक्ल को बधाई

'हिन्दी चेतना' का अप्रैल अंक मिला। वन्दना देव शुक्ल की कहानी 'मोहभंग' माँ-बाप और बच्चों के संबंधों को दर्शाती यथार्थपरक कहानी है। यह कहानी घर-घर की कहानी है। लेखिका ने रोशी और संजू को विदेश भेज कर उनके स्वार्थ को दर्शाया है; जबकि स्वार्थ जीवन के हर क्षेत्र में और हर संबंध में रहा है और रहेगा। पर अब स्वार्थ माँ-बाप और बच्चों के संबंधों को भी प्रभावित करने लगा है। यह आज की आधुनिक जीवन शैली, सामाजिक परिवेश और गिरते जीवन मूल्यों की देन हैं। मेरे तीन भाई भारत में रहते हैं और मैं अकेली यूएसए में हूँ। तीनों भाइयों ने माँ-बाप से अपने बच्चे पलवा लिये और अब उन्हें कोई भी अपने साथ रखना नहीं चाहता। हालाँकि तीनों ही उच्च पदों पर आसीन हैं और मेरे माँ-बाप उम्र के उस दौर में हैं; जहाँ उन्हें बच्चों के साथ और सहायता की ज़रूरत है। भाई चाहते थे कि उन्हें किसी आश्रम में छोड़ दिया जाए। मैं उन्हें वहाँ अकेला तड़पता नहीं छोड़ सकती थी और उन्हें अपने साथ यहाँ ले आई और अब वे मेरे साथ हैं। भाई वहाँ समाज में गर्व से कहते हैं-माँ-बाप शुद्ध माहौल में रहते हैं, मेडिकल सर्विसिज़ बेहद

अच्छी हैं, बहन उनका बहुत ख्याल रखती है जी। कभी शर्मिंदा नहीं होते कि माँ-बाप के प्रति उनके भी कुछ फ़र्ज़ हैं, कभी सोचते नहीं कि बहन के सास-ससुर भी हैं, मेरे सास-ससुर पहले से ही मेरे साथ रहते हैं, मेरे पति अकेले बेटे हैं। कभी बहन के तनाव और द्वंद्व का नहीं सोचा, अकेली कैसे चार बुज़ुर्गों को सँभाती होगी! यह मानसिकता देश-विदेश कहीं भी मिल जाती है। 'मोहभंग' कहानी ने मुझे इतना प्रभावित किया कि पत्र लिखना मजबूरी सी हो गई। वन्दना देव शुक्ल को बधाई!!!

-नीला अग्रवाल, शिकागो, अमेरिका।

****

व्यंग्य की कमी खटकी

मैं इस बात से सहमत नहीं कि सामाजिक सरोकारों, बुराइयाँ और विदूपताओं का चित्रण करने के लिए विदेशों के पात्रों की रचना की जाए। भारत के महानगरों में भी वही स्थिति होती जा रही है; जो विदेशों में है। 'मोहभंग' कहानी में अगर भारत के महानगरों के चरित्र भी लिए जाते तो भी कहानी को विस्तार मिलता। इस विषय पर बहुत सी कहानियाँ पढ़ी हैं और अंत भी नया नहीं लगा। विदेशों में लिखी गईं एक दो कहानियों का अंत भी अकेलेपन को दूर करने के लिए कुत्ते का सहारा लिए, किया गया है। मैंने ऑन लाइन और पत्रिकाओं में पढ़ी हैं वे कहानियाँ। 'इमेज' कहानी का कथ्य और कहन दोनों अच्छे लगे। 'शारदा' और 'गॉड ब्लेस यू' विदेश की विसंगतियाँ दर्शाती कहानियाँ हैं। विदेशों में लिखी जा रही कहानियाँ विषय और शिल्प की सृष्टि से आकर्षित करती हैं। काव्य की हर विधा इस पत्रिका में मिली। निर्मला रानी का लेख 'प्रवासी साहित्य की अवधारणा और स्त्री कथाकार' तथा मंजु मिश्रा का 'अमेरिका में बसे प्रवासी और उनकी काव्य साधना' से प्रवासी साहित्य के बारे में कुछ जानकारी मिली। 'हिन्दी चेतना' में प्रवासी साहित्य पर अच्छे लेखों की कमी मुझे हमेशा खटकती है। सम्पादकीय में त्रिपाठी जी ने भारत और इंडिया के बँटवारे की जो बात कही है, वह तो स्पष्ट लग ही रहा है। हिन्दी वाले ही ऐसा करवाने पर तुले हुए हैं। आख़िरी पन्ना हर बार की तरह नयापन लिए और सजग है। सुधा ओम ढींगरा कम शब्दों में बहुत कुछ कह जाती है। व्यंग्य की कमी खटकी। पत्रिका प्रगति के पथ पर आगे बढ़े, ढेरों शुभकामनाओं के साथ.....

-देवव्रत शर्मा 'आशीष', कानपुर।

****

संपूर्ण सामग्री पठनीय

आपकी पत्रिका विदेश में हिन्दी की पताका फहरा रही है, जिसकी झलक स्वदेश में भी देखी जा सकती है। उसकी फरफराहट की आहट सुनी जा सकती है। उसके त्याग भरे केशरिया, सादगी के श्वेत और समृद्धि के हरित रंगों की चमक दूर देश से भी देखी जा सकती है। स्तरीय रचनाएँ। संपादकीय से लेकर अंत तक संपूर्ण सामग्री पठनीय ही नहीं संग्रहणीय भी। आशित और प्रत्याशित बहुत कुछ और भी। यही सब विशिष्टताएँ इस पत्रिका को मूल्यवान बनाती हैं।

पत्रिका और उसके संपादक दोनों को पत्रकारिता के मूल्यों को जीवित रखने के लिए बधाई और आगे भी इसमें सफलता की अनवरत प्राप्ति के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ!!!

-प्रो. गुण शेखर, गुआंग डोश, चीन।

****

अति उत्तम पत्रिका

आपका मैगज़ीन मिला। आप सच में काबिलेतारीफ़ हैं; जिन्होंने इस देश में हिन्दी भाषा को जीवित रखा है। हम जैसे सेवा निवृत्त लोगों के लिए यह एक वरदान जैसा है। भिन्न-भिन्न लेखों से बहुत जानकारी मिलती है, कई नए-पुराने लेखकों के बारे में पता चलता है, जिनके बारे में यहाँ बैठ कर जानना बेहद मुश्किल है। भारत और यहाँ साहित्य में क्या रचा जा रहा है, इस मैगज़ीन से पाठक जान पाते हैं। विदेशों का हिन्दी समाज आपके इस कार्य के लिए ऋणी है। मेरी नज़रों में 'हिन्दी चेतना' अति उत्तम पत्रिका है।

-सीमा चटर्जी (ओंटेरियो कैनेडा)

****

अच्छे अंक के लिए मेरी बधाई

'हिन्दी चेतना' का अप्रैल अंक आज ही डाक से मिला। अंक उलट-पुलट गया। पत्रिका पठनीय सामग्री से भरपूर है। आप अच्छे अंक के लिए मेरी बधाई लें।

-भारत भारद्वाज (दिल्ली, भारत)

****

अनुकरणीय और प्रेरणाप्रद

'हिन्दी चेतना' का अप्रैल 2015 अंक प्राप्त हुआ। आपने 17-18 वर्ष पूर्व जो पौधा उत्तरी अमरीका की धरती पर रोपा था, अब वह बड़ा होकर लहलहाने लगा है। मेरे लिए यह इसलिए भी प्रसन्नता की बात है, क्योंकि हिन्दी चेतना की इस यात्रा का थोड़ा बहुत मैं भी साक्षी हूँ।

इसके लिये आपने जो परिश्रम और त्याग किया है वह अनुकरणीय और प्रेरणाप्रद है। इसे यदि कोई लिपिबद्ध कर सके तो अच्छा रहेगा।

आशा है कि आप स्वस्थ सानंद हैं। अपना स्नेह और आशीर्वाद बनाये रखेंगे..इसी विश्वास के साथ..सादर।

-विनोद पाण्डेय, इटावा।

****

बधाई व शुभकामनाएँ

'हिन्दी चेतना' अंक 66 अप्रैल-जून 2015 मिला धन्यवाद। सर्व प्रथम ढींगरा फ़ाउण्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय साहित्य सम्मान से सम्मानित साहित्यकारों सुश्री उषा प्रियंवदा जी, चित्रा मुद्गल जी व ज्ञान चतुर्वेदी जी को बहुत-बहुत बधाई तथा शुभकामनाएँ। अंक की कहानियाँ और कविताएँ पसन्द आईं। मेरा भी मन है कि आगामी अंक के लिए कविता भेजूँ। बहुत अच्छी पत्रिका हेतु बधाई एवं शुभकामनाएँ।

-सुधा गोयल, बुलन्दशहर।

****

लेखकों से अनुरोध

बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फाइल अथवा वर्ड की फाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। चित्र की गुणवत्ता अच्छी हो तथा चित्र को अपने नाम से भेजें। पुस्तक समीक्षा के साथ पुस्तक आवरण का चित्र, रचनाकार का चित्र अवश्य भेजें।

-सम्पादक

सूचना

'हिन्दी चेतना' पत्रिका अब कैनेडा के साथ-साथ भारत से भी प्रकाशित हो रही है। पत्रिका के सदस्य बनना चाहते हैं तो संपर्क करें-

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

मोबाइल : 9313727493

पंकज सुबीर

मोबाइल : 9977855399

ढींगरा फ़ाउण्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय साहित्य सम्मानों की घोषणा

उषा प्रियंवदा, चित्रा मुद्गल एवं पद्मश्री डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी को मोरिंस्विल, अमेरिका में प्रदान किया जाएगा सम्मान

(हिन्दी चेतना के भारतीय समन्वयक, साहित्यकार पंकज सुबीर कार्यक्रम के विशिष्ट वक्ता होंगे।)

'ढींगरा फ़ाउण्डेशन-अमेरिका' तथा 'हिन्दी चेतना-कैनेडा' द्वारा प्रारंभ किये गए सम्मानों के नाम चयन के लिए प्रबुद्ध विद्वानों की जो निर्णायक समिति बनाई गई थी, उस समिति के समन्वयक श्री नीरज गोस्वामी द्वारा प्रस्तुत निर्णय के अनुसार समिति ने 2014 में प्रकाशित हिन्दी उपन्यासों और कहानी संग्रहों पर विचार-विमर्श करके जिन साहित्यकारों को सम्मान हेतु चयनित किया है, वे हैं - 'ढींगरा फ़ाउण्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय साहित्य सम्मान' : (समग्र साहित्यिक अवदान हेतु) उषा प्रियंवदा (अमेरिका), 'ढींगरा फ़ाउण्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान' : कहानी संग्रह- 'पेंटिंग अकेली है' सामयिक प्रकाशन (चित्रा मुद्गल) भारत, उपन्यास-'हम न मरब' राजकमल प्रकाशन (डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी)।

सम्मान समारोह 30 अगस्त 2015 रविवार को मोरिंस्विल, नॉर्थ कैरोलाइना, अमेरिका में आयोजित किया जाएगा। पुरस्कार के अंतर्गत तीनों रचनाकारों को 'ढींगरा फ़ाउण्डेशन-अमेरिका' की ओर से शॉल, श्रीफल, सम्मान पत्र, स्मृति चिह्न, प्रत्येक को पाँच सौ डॉलर (लगभग 31 हज़ार रुपये) की सम्मान राशि, अमेरिका आने-जाने का हवाई टिकिट, वीसा शुल्क, एयरपोर्ट टैक्स प्रदान किया जाएगा एवं अमेरिका के कुछ प्रमुख पर्यटन स्थलों का भ्रमण भी करवाया जाएगा।

प्रेमचंद सम्मान तथा डॉ. मोटूरि सत्यनारायण पुरस्कार से सम्मानित प्रतिष्ठित कहानीकार, उपन्यासकार उषा प्रियंवदा प्रवासी हिंदी साहित्यकार हैं। उनकी प्रमुख कृतियों में कहानी संग्रह -फिर वसंत आया, जिन्दगी और गुलाब के फूल, एक कोई दूसरा, कितना बड़ा झूठ, शून्य, मेरी प्रिय कहानियाँ, संपूर्ण कहानियाँ, वनवास तथा उपन्यास - पचपन खंभे लाल दीवार, रुकोगी नहीं राधिका, शेष यात्रा, अंतर्वंशी, भया कबीर उदास, नदी आदि हैं। समग्र साहित्यिक अवदान हेतु उन्हें सम्मान प्रदान किया जा रहा है।

हिन्दी चेतना के भारतीय समन्वयक, प्रसिद्ध साहित्यकार पंकज सुबीर कार्यक्रम के विशिष्ट वक्ता होंगे। भारतीय ज्ञानपीठ नवलेखन पुरस्कार, अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा यूके सम्मान, वागीश्वरी सम्मान, वनमाली सम्मान, इंडिपेंडेंट मीडिया सोसायटी जे सी जोशी सम्मान से सम्मानित पंकज सुबीर गत वर्ष कैनेडा में आयोजित सम्मान समारोह में भी विशिष्ट वक्ता के रूप में शामिल हुए थे।

व्यास सम्मान, इंदु शर्मा कथा सम्मान, साहित्य भूषण, वीर सिंह देव सम्मान से सम्मानित हिन्दी की महत्त्वपूर्ण कहानीकार चित्रा मुद्गल के अभी तक तीन उपन्यास - एक जमीन अपनी, आवां, गिल्लिगडु, बारह कहानी संग्रह- भूख, जहर ठहरा हुआ, लाक्षागृह, अपनी वापसी, इस हमाम में, ग्यारह लंबी कहानियाँ, जिनावर, लपटें, जगदंबा बाबू गाँव आ रहे हैं, मामला आगे बढ़ेगा अभी, केंचुल, आदि-अनादि आ चुके हैं। सम्मानित कथा संग्रह 'पेंटिंग अकेली है' उनका नया कहानी संग्रह है जो सामयिक प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है।

पद्मश्री, राष्ट्रीय शरद जोशी सम्मान, कथा यूके सम्मान, यश भारती सम्मान, सहित अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कार एवं सम्मान से सम्मानित- पद्मश्री डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी भोपाल में हृदय विशेषज्ञ के रूप में कार्यरत हैं। अब तक प्रकाशित कृतियों में कहानी संग्रह -रामबाबू जी का बसंत, मूर्खता में ही होशियारी है, उपन्यास -नरक यात्रा, बारामासी, मरीचिका, हम न मरब, व्यंग्य संग्रह -जो घर फूँके, हिंदी में मनहूस रहने की परंपरा प्रकाशित हो चुके हैं। उन्हें उनके राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित उपन्यास 'हम न मरब' के लिये यह सम्मान प्रदान किया जा रहा है।

उल्लेखनीय है कि 2014 से प्रारंभ किये गए ढींगरा फ़ाउण्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय साहित्य सम्मान पिछले वर्ष साहित्यकारों सर्वश्री महेश कटारे, सुदर्शन प्रियदर्शिनी तथा हरिशंकर आदेश को कैनेडा के टोरण्टो में प्रदान किये गए थे।

'ढींगरा फ़ाउण्डेशन-अमेरिका' की स्थापना भाषा, शिक्षा, साहित्य और स्वास्थ के लिए प्रतिबद्ध संस्थाओं के साथ मिलकर कार्य करने हेतु की गई है ताकि इनके द्वारा युवा पीढ़ी और बच्चों को प्रोत्साहित कर सही मार्गदर्शन दिया जा सके। देश-विदेश की उत्तम हिन्दी साहित्यिक कृतियों एवं साहित्यकारों के साहित्यिक योगदान को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित करना भी इसका उद्देश्य है।

उत्तरी अमेरिका की त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका 'हिन्दी चेतना' को गत 16 वर्षों से हिन्दी प्रचारिणी सभा प्रकाशित कर रही है। हिन्दी प्रचारिणी सभा की स्थापना 1998 में हुई थी। हिन्दी प्रचारिणी सभा गत 17 वर्षों से विदेशों में हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में एक विशेष भूमिका निभा रही है।

❐

लेखन अन्य कलाओं की अपेक्षा कम खर्चीला माध्यम है, इसलिए लेखन के इलाके में भीड़ भी ज़्यादा है

(कवि, संस्मरण लेखक, आलोचक, कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, बाल साहित्यकार प्रताप सहगल से व्यंग्य यात्रा के संपादक और प्रतिष्ठित व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय की बातचीत)

हिन्दी चेतना के संपादक मंडल ने व्यंग्य यात्रा के संपादक और प्रतिष्ठित व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय को आग्रह किया था कि वे कवि, संस्मरण लेखक, आलोचक, कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, बाल साहित्यकार प्रताप सहगल से बातचीत करें। प्रेम जी ने हमारे आग्रह को सहर्ष स्वीकार किया और रोचक प्रश्नों से प्रताप जी के भीतर-बाहर से बहुत कुछ निकलवा लिया। प्रस्तुत है आपके समक्ष वह बातचीत-

प्रेम जनमेजय: मेरे सामने ऐसे प्रताप सहगल बैठे हैं जिनसे, पिछले लगभग चालीस वर्षों में, मेरा सामना अनेक रूपों में हुआ है। जीवन के रास्तों पर चलते हुए अनेक मोड़ों पर मिले हैं, पर उन मोड़ों पर गुम नहीं हुए हैं, अपितु अगले नहीं तो दूसरे-तीसरे मोड़ पर किसी निराकार प्रभु से अवतरित हुए हैं। निराकार इसलिए कि मैं इन्हें किसी एक फ्रेम में नहीं बाँध पाया। व्यक्तिगत जीवन में तो हो सकता है एक बड़े से फ्रेम में बँध जाएँ पर साहित्य की दुनिया के लिए इनका नख-शिख वर्णन करने के लिए अनेक फ्रेम तलाशने होंगें। कवि, संस्मरण लेखक, आलोचक पर लुच्चे नहीं, कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, बाल साहित्यकार ; ये दीगर बात है कि 'सर' से बाल लगभग गायब हैं आदि अनेक आकारों से युक्त प्रताप सहगल वस्तुतः निराकार हैं। इन्हें किसी एक आकार में नहीं बाँधा जा सकता। मन ने कहा कि बावरे, निरीह व्यंग्यकार जब तूँ नहीं बाँध पाया तो बँधने वाले से ही पूछ ले कि वह किस आकार में बँधना पसंद करेगा। तूने तो इस जीव को व्यंग्यकार के आकार में भी बाँधने का प्रयत्न किया है। तो हे निराकार प्रभु प्रताप अपने विविध रूपों को वर्णन करते हुए बताएँ कि इन रूपों में आप कब-कब अवतरित हुए ? आप का आदि रूप क्या है? आपके पाठक/प्रशंसक आपको किस रूप में जानें ? आपको अपना कौन-सा रूप अधिक प्रिय है?

प्रताप सहगल: यह तुम्हारे लेखन के शैल्पिक विन्यास का ही कमाल है कि एक सीधे से सवाल को नारद की तरह पूरी पृथ्वी का चक्कर लगा कर मेरे सामने उछाल दिया। यह भी भूमंडलीकरण का कोई रूप है क्या? सवाल विधाओं के चुनाव का है। मैं भी आज तक यह समझ नहीं पाया कि मैं इतनी विधाओं में क्यों लिखता हूँ। शायद वैविध्य मेरी जीवन शैली का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। मुझे खाने में भी विविध व्यंजन पसंद हैं, जगह-जगह घूमना अच्छा लगता है, तरह-तरह के कला-रूपों की प्रस्तुतियाँ मुझे अपनी ओर आकर्षित करती हैं। सौंदर्य चाहे प्रकृति का हो या मनुष्य का, मेरी नसों में प्रेम बनकर उतरने लगता है और फिर जब इतनी सारी विधाएँ आपके सामने हों तो उनका इस्तेमाल क्यों न किया जाए? सच बात तो यह है कि विधा ही मेरी 'वस्तु' का चुनाव कर लेती है। अब याद करना भी मुश्किल हो रहा है कि मेरे लेखन में पहले कविता उतरी थी या कहानी? शायद दोनों साथ-साथ. हाँ, इतना याद है कि प्रकाशित रूप में सबसे पहले कहानी ने ही साहित्य के द्वार पर दस्तक दी थी। 1961

संपर्कः
एफ़-101, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-110027
फ़ोन : 011-47550565, 0981638563
Email : partapsehgal@gmail.com
Websit : www.partapsehgal.com

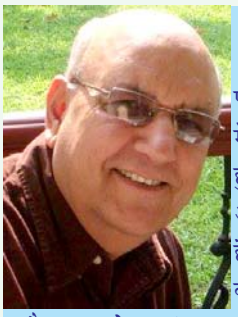

प्रताप सहगल

प्रताप सहगल एक जाने-माने कवि, नाटककार, कथाकार और आलोचक के रूप में पहचाने जाते हैं। 10 मई, 1945 को पश्चिमी पंजाब के झंग प्रदेश में (अब पाकिस्तान में) इनका जन्म हुआ। प्रारंभिक शिक्षा रोहतक और मिडिल तथा उच्च शिक्षा दिल्ली में हुई। 1970 में दिल्ली विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी प्रथम में एम ए किया और इसी साल आपकी नियुक्ति दिल्ली कालिज, जो अब ज़ाकिर हुसैन कालिज के नाम से जाना जाता है, में एक प्रवक्ता के रूप में हुई। यहाँ आपने 40 वर्षों तक स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं के अध्यापन के साथ-साथ शोध-कार्य निर्देशित किया। 2010 में आप ज़ाकिर हुसैन स्नातकोत्तर सांध्य महाविद्यालय से एसोसिएट प्रोफ़ेसर के पद से सेवा-निवृत्त हुए। इसी सेवा में रहकर उन्होंने अपना सृजनात्मक कार्य किया।

प्रताप सहगल एक अग्रणी कवि और नाटककार तो हैं ही, कथा-साहित्य और आलोचना में भी उनका कार्य उल्लेखनीय है। उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण लंबी कविताओं की सर्जना तो की ही है, साथ ही लंबी कविता और नाट्यानुवाद पर उनके मानक आलेख औरों के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं। बाल साहित्य के क्षेत्र में ही उनका काम उल्लेखनीय है। इसीके साथ आप बीस वर्षों तक 'यूनिवर्सिटी टुडे' के सहयोगी संपादक रहे।

प्रकाशित कृतियाँ

कविता संग्रह- सवाल अब भी मौजूद है, आदिम आग, अँधेरे में देखना, इस तरह से (छह लंबी कविताएँ), नचिकेता'स ओडिसी (अंग्रेज़ी में), छवियाँ और छवियाँ, मुक्ति-द्वार के सामने।

संपादित कविता संग्रह - एक दूसरे से अलग (लंबी कविताएँ), अलग अलग होने के बावजूद (लंबी कविताएँ), नवें दशक की कविता यात्रा, यूनिवर्सिटी टुडे के सहयोगी संपादक (बीस वर्ष), 'सुहासदीप' पत्रिका के दो कविता अंक। 23 सहयोगी कविता संग्रह हैं।

नाटक- अन्वेषक, चार रूपांत, रंग बसंती, मौत क्यों रात भर नहीं आती, नौ लघु नाटक, नहीं कोई अंत, अपनी अपनी भूमिका (रेडियो नाटक), रास्ता इधर भी है , अँधेरे में (पीटर शेफ़र के नाटक ब्लैक कॉमेडी का रूपांतर), किस्सा तीन गुलाबों का : (बल्गेरियन लेखक वालेरी पित्रोव के नाटक 'व्हैन दि रोज़ेज़ आर डांसिंग का अनुवाद), पाँच रंग नाटक, कोई और रास्ता तथा अन्य लघु नाटक, मेरे श्रेष्ठ लघु नाटक, यूँ बनी महाभारत।

सहयोगी नाटक संग्रह- सात छोटे नाटक, समकालीन लघु नाटक, युवामानस के एकांकी, अंधविश्वास विरोध के एकांकी।

बाल साहित्य- छू मंतर (नाटक संग्रह), दस बाल नाटक : (रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बाल कहानियों से प्रेरित), दो बाल नाटक।

कथा साहित्य- अनहद नाद (उपन्यास), प्रियकांत (उपन्यास), मछली मछली कितना पानी, अब तक (कहानी संग्रह), हर बार मुसफ़िर होता हूँ (यात्रा-वृत्तांत)।

रेडियो पर प्रसारित धारावाहिक नाटक- कच्ची छत का मकान, बूड़ा वंश, रास्ता इधर है, वार्ड नंबर 16, बात ज़रा सी, अथ कथा रघुवंश, छू मंतर, गल्प मंजूषा-रवीन्द्रनाथ ठाकुर की तेरह कहानियों का रूपांतर, रवीन्द्रनाथ ठाकुर के उपन्यास 'गोरा' का तेरह कड़ियों में रूपांतर, श्रीकृष्ण मिश्र के संस्कृत क्लासिक 'श्री प्रबोध चन्द्रोदय' का छब्बीस कड़ियों में रूपांतर, आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास 'गोली' का तेरह कड़ियों में रूपांतर, बंकिम के उपन्यास 'आनन्दमठ' का तेरह कड़ियों में रूपांतर, 'शब्दों की यात्रा' के अन्तर्गत आपके तेरह नाटक एवं कहानियों का रूपांतर।

टी वी पर- खंडहर पर बैठा आदमी (नाटक)।

आलोचना- रंग चिंतन, समय के निशान, समय के सवाल, नए दौर का हिन्दी नाटक। 14 आलोचना ग्रंथ हैं।

अनुवाद- अनेक बल्गारियाई, अफ़्रीकी एवं स्पानी कविताओं के अनुवाद विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित, बल्गारियाई लेखक वालेरी पित्रोव के नाटक 'किस्सा तीन गुलाबों का' के नाम से अनुवाद, आपकी अनेक कविताओं, नाटकों एवं आलेखों का अंग्रेज़ी, बल्गारियाई, स्पेनिश, पंजाबी, उर्दू, बंगला, गुजराती, नेपाली, बर्मी, पश्तो तथा अन्य कई भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित।

अनेकों सम्मानों एवं पुरस्कारों से पुरस्कृत आपका नाटक अन्वेषक-कालीकट विश्वविद्यालय, गुरुकुल कांगड़ा विश्वविद्यालय एवं तिरुवनंतपुरम विश्वविद्यालय के बी ए स्तर के पाठ्यक्रम में और अनेक बाल कविताएँ एवं बाल नाटक पांचवीं से आठवीं कक्षा तक की पाठ्य-पुस्तकों में शामिल। आपके नाटकों और साहित्य पर कई एम फ़िल और पीएँच.डी हुई हैं।

का साल था और मेरी पहली कहानी 'बेकार' वीर अर्जुन में प्रकाशित हुई थी। बेकार कहानी का शीर्षक है, कहानी की आलोचना नहीं। उन दिनों मैं नवीं कक्षा में था। घर में पिता बेकार हो चुके थे और बाहर भी बेकारी की बहार थी। दो साल बाद मुझे भी नौकरी की खोज में बाज़ार में उतरना था। आसपास बेकार घूमते नौजवान भी नज़र आते थे। यानी बेकारी का सवाल ज़हन को कौंचने लगा था। यहीं से इस बात की पहचान शुरू होती है कि कैसे आत्मानुभव रचना में सामाजिक अनुभव के साथ जुड़ता है। इतने साफ़ तरीके से तब समझ पाना मुश्किल था, लेकिन बाद में यह बात समझ में आई और मेरी कविताओं में उतरती चली गई। मेरी एक कविता है 'डबलरोटी वाला'। बता दूँ कि मैंने आठवीं जमात पास करने के बाद ही काम करना शुरू कर दिया था। डबलरोटी भी बेची और छोले कुलचे भी। सिनेमा के सामने लगे स्टाल पर नींबू पानी भी बेचा और चरस की गोलियाँ भी। फैक्टरियों में भी काम किया और उसी उम्र में मोहब्बत भी। अब आप 'डबलरोटी वाला' पढ़ें या 'फैक्टरी के बाहर', लंबी कविता 'प्रेम प्रसंग' या अन्य कई कविताएँ, इनमें आत्मानुभावों का सामाजिक विस्तार ही मिलेगा। यानी कविता एक ऐसा माध्यम है; जिसमें विषय और विषयी घुले-मिले चले आते हैं। ऐसे ही कई अनुभव आपको मेरे कथा-साहित्य में भी मिलेंगे और अन्यत्र भी।

पढ़ने और उम्र के बढ़ने के साथ-साथ न सिर्फ़ अनुभव विस्तार पाते हैं, उनमें परिपक्वता भी आती है। मेरी समस्या ही यही है कि मैं स्वयं को एक फ्रेम में बाँधकर रख नहीं पाता। मैं एक बेचैन रूह हूँ, जो एक विधा से दूसरी और दूसरी से तीसरी में आवाजाही करती रहती है। इससे ताज़गी भी बनी रहती है और वैविध्य भी। हींग लगे न फिटकरी, रंग भी चोखा आवे। संभव है अगले किसी मोड़ पर मैं कुछ और करता मिलूँ।

निराकार में साकार अनुपस्थित है। हम कलाओं में अनुपस्थित की खोज में ही लगे रहते हैं। लेखन अन्य कलाओं की अपेक्षा कम खर्चीला माध्यम है, इसलिए लेखन के इलाके में भीड़ भी ज़्यादा है। अभी भी साहित्य में बहुत कुछ अनुपस्थित है। उसे ही चिह्नित करना शेष है और यह शेष कभी भी समाप्त न होने वाली यात्रा है।

प्रेम जनमेजय: आगे बढ़ने से पहले इस घुमाऊ फिराऊ नारद के साथ अपनी पहली रचना के प्रकाशित होने का सुख बाँट लो। पहली रचना, पहला प्रसारण,

पहली नौकरी, पहला प्रेम, पहला भ्रष्टाचार आदि का रोमांच ही कुछ और होता है।

प्रताप सहगल: ऊपर अपनी पहली प्रकाशित कहानी का ज़िक्र कर चुका हूँ। यही बंदे की पहली प्रकाशित रचना है। इतवार का दिन था और मैं उस दिन आह्लादित था। उन दिनों मैं दिल्ली की एक मज़दूर बस्ती कर्मपुरा में रहता था। आसपास कहानी का नोटिस लिया गया। मुझसे ज़्यादा मेरे पिता प्रसन्न थे कि मैं लिखने लगा हूँ। मेरा पहला रेडियो प्रसारण 1962 में आल इंडिया रेडियो से एक कवि गोष्ठी में हुआ था, यानी रेडियो के साथ मेरा रिश्ता बहुत पुराना है। पहली नौकरी मैंने हायर सेकंडरी पास करने के बाद ही 1963 में शुरू कर दी थी। एक चिटफंड कंपनी का एजेंट बना। नए ग्राहक बनाना और उनसे मासिक किश्तें वसूल करना। लाजपत राय मार्किट में उसका दफ़्तर था। वहीं बैठता और कंपनी के लिए धंधा करता। पहली तनख्वाह मिली सौ रुपये महीना।

पहला प्रेम? कह नहीं सकता कि वह प्रेम था या सम्मोहन, लेकिन उस वक़्त तो वह प्रेम ही लगता था। उसकी झलक पाने की बेकरारी रहती थी। मेरी उम्र थी चौदह साल। आठवीं जमात में पढ़ता था। काफ़ी दिन चला यह प्रेम-प्रसंग और फिर समय के साथ ही तिरोहित हो गया।

पहला भ्रष्टाचार? यह तो नहीं कहूँगा कि भ्रष्टाचार करने का अवसर नहीं मिला, लेकिन हिम्मत ही नहीं पड़ी भ्रष्टाचार करने की। इस मामले में डरपोक हूँ।

प्रेम जनमेजय: यह तो हुई आपके स्वयं के रूप की चुनाव-चर्चा, ऐसी चुनाव-चर्चा जिसमें आपका मत ही महत्त्वपूर्ण है और उसके आधार पर आपने अपने प्रिय रूप की चर्चा की। परंतु इस साहित्यिक निराकार रूप के साथ एक जीवन से जुड़े उस प्रिय की भी चर्चा जुड़ जाती है जो आपको सर्वप्रिय है। जिसके कारण आपको जीवन के एक मोड़ पर लगा कि अकेले चलने में वो आनंद नहीं है, जो जीवन भर साथ देने वाले प्रिय संगी के साथ चलने में आनंद है। और ऐसे में आपने शशि का चुनाव किया। यह चुनाव-देखते ही नैनों के द्वार से दिल तक पहुँचने वाला था, सोच समझकर लिया जाने वाला निर्णय था, अपनी जूलियट के कदमों पर झुककर प्यार की भिक्षा माँगने वाला था, अथवा लड़की के घरवालों से लघु युद्ध के उपरान्त मिली विजय था ? अथवा इनमें से कुछ नहीं था और बहुत कुछ अलग था?

प्रताप सहगल: आपका प्रश्न है तो नितांत व्यक्तिगत लेकिन जब आपने इसे सार्वजनिक रूप से पूछ ही लिया है तो जवाब भी हाज़िर है। शशि को पहली बार मैंने उस ज़माने की खटारा डी टी सी की बस में देखा था। बस के आगे वाली सीट पर एक सौम्य चेहरा नज़र आया। साधारण से कपड़े, गेहुँआ रंग, काजल से भरी छोटी आँखें। वे अपने में मस्त किन्हीं विचारों में खोई हुई थीं। मुझे वो चेहरा ऐसा लगा, जिसे हम बहन जी छाप चेहरा कहते हैं। शशि ने मेरी ओर देखा तक नहीं और हम दोनों विश्वविद्यालय पहुँच गए। हम दोनों एम. ए. कर चुके थे। 1970 का साल था। दोनों ने ही एम. लिट्. में दाखिला ले लिया था। हैरानी तब हुई जब वही चेहरा मुझे एम. लिट्. की कक्षा में भी नज़र आ गया। उत्सुकता तो थी जानने की लेकिन...लेकिन हमसे बुलाया न गया और मेरी बात रही मेरे मन में। ऐसा आकर्षण भी नहीं जगा कि बात किये बिना रहा न जाए। अब दृश्य तीसरा। एक दिन आर्ट्स फैकल्टी की लायब्रेरी में मैं प्रवेश कर रहा था कि प्रवेश द्वार पर ही काउंटर के सामने बहुत सारी किताबें सँभाले वही चेहरा फिर सामने था। इस बार शशि के लंबे, लहराते काले केश भी नज़र आए और बाले तेरे बाल जाल में क्यों न उलझा दूँ लोचन? की मुद्रा में थोड़ी देर खड़ा रहने के बात उनसे मुखातिब हुआ 'आप...इतनी किताबें..क्या पढ़ रही हैं'। वे अपनी किताबें सँभालने में ही मसरूफ़ थीं, बोलीं-'आप इस वक़्त?' उस वक़्त शायद ग्यारह बजे थे और कक्षा दोपहर बाद शुरू होती थी। मैं वैसे भी एम. लिट्. छोड़ चुका था। कारण यह था कि जिन लोगों की एम. ए. में प्रथम श्रेणी थी, उन्हें सीधे पीएॅच.डी में दाखिले की व्यवस्था की घोषणा हो चुकी थी। फिर मैंने तो प्रथम श्रेणी प्रथम में एम. ए. पास की थी। और दूसरा कारण यह भी था कि मुझे बहुत जल्दी ही दिल्ली कॉलिज (अब ज़ाकिर हुसैन कालिज) में नौकरी मिल चुकी थी।'एक प्याला कॉफ़ी पीने चलेंगी?' मैंने कहा और उन्होंने अपनी सारी किताबें काउंटर पर लौटाते हुए कहा-'ठीक है'। दरअसल मेरे एक गुरु और मित्र संस्कृत एम. ए. की क्लास लेने गए थे और मुझे अपना वक़्त गुज़ारना था। सोचा कॉफ़ी और शशि के साथ समय आराम से कट जाएगा। तभी मेरे वे मित्र भी आते दिखाई दिए और हम तीनों कैफेटेरिया में चले गए। वहीं कॉफ़ी के प्याले के साथ गप्पें और कुछ पारिवारिक बातें। शशि बहुत मुँहफट थीं। हाज़िर जवाब भी कह सकते हैं। मेरे मित्र होम्योपैथी में भी दखल रखते थे और शशि के परिवार में शेष तीन लोग किसी न किसी व्याधि से ग्रस्त थे। पिता दृष्टिहीन हो चुके थे, माँ की कमर, पीठ और कुछ और तकलीफें थीं और एक भाई मानसिक रूप से अबाध था। उसका अपेक्षित शारीरिक विकास भी नहीं हुआ था। उस दिन मिलने के बाद मेरे मित्र ने ही कहा कि लड़की तुम्हें पसंद करती है, लेकिन मुझे ऐसा कुछ दिखाई नहीं दिया या मैं देखना नहीं चाहता था। यह तो मुझे बाद में पता चला कि शशि ने अपनी सहेलियों में यह डींग हाँक रखी थी कि वह उसी लड़के को फँसाएगी, जो टॉप करेगा। मैं भोला जीव न यह बात जानता था और न मुझे यह बात समझ आई।

दो-तीन मुलाकातों के बात मैं और मेरा मित्र शशि के घर पहुँचे। एजेंडा था होम्योपैथी में इलाज। आवभगत हुई, तब भी बात मेरी समझ में नहीं आई। मुझे यह सब सामान्य लग रहा था; लेकिन बाद में मेरे मित्र ने बताया कि मामला गंभीर है गुरु। वे थे तो मेरे गुरु लेकिन उनकी कई बातों को प्रश्नांकित करने के कारण प्यार से मुझे ही गुरु कहते थे। उस दिन मैंने भी सोचना शुरू किया। यह भी मुझे बाद में पता चला कि वास्तव में घर बुलाने के पीछे एक कारण माँ और पिता से मेरे बारे में सहमति लेना था और सहमति मिल भी गई थी लेकिन मैं तो अनभिज्ञ था। शशि ने अपने व्यवहार से मेरे अंदर प्रवेश कर ही लिया था और अब एक दिन मैंने एक फिल्म देखने का प्रस्ताव किया। यह किस्सा मज़ेदार है। उन दिनों प्लाज़ा सिनेमा पर एक इंग्लिश फिल्म 'ब्लो हाट ब्लो कोल्ड' चल रही थी और मैंने उसी फिल्म के दो टिकेट अग्रिम बुक करवा लिये थे। मैंने ही प्रस्ताव किया-'प्लाज़ा पर ब्लो हाट ब्लो कोल्ड' चल रही है, देखने चलोगी?' शशि ने छूटते ही पूछा-'और कौन होगा?' यानी कोई और साथ तो नहीं होगा न! 'बस मैं और तुम'. शशि ने हामी भर दी और अगले ही दिन हम लोग प्लाज़ा के पास मिले। अभी शो शुरू होने में कुछ समय था और हम वेंगर्स में कॉफ़ी पीने चले गए। यही वह पल था जब हमने विवाह करने का फैसला किया। शशि की चिंता थी कि वे सिर्फ़ घूमने-फिरने के लिए मेरे साथ नहीं चल सकतीं, अगर ज़िंदगी साथ-साथ गुज़ारने की बात हो, तो आगे बढ़ा जाए, वर्ना उस दिन की मुलाक़ात को अंतिम मुलाक़ात ही माना जाए। तब तक शशि मेरे अंदर बहुत गहरे तक उतर चुकी थी। दूसरी ओर मेरे घर में भी मेरी छोटी बहन थी, जिसका विवाह मुझसे पहले करने की बात चल रही थी यानी मामला थोड़ा गंभीर था और थोड़ा उलझा हुआ भी। मैंने भी अपनी सारी बात शशि के सामने

रखी और दोनों ने मिलकर हल भी निकाल लिया। जब मैंने घर बात की तो विरोध होना ही था और हुआ भी। लेकिन समझाने के बाद सब लोग मान गए और फ़िर हमारा कोर्टशिप समय शुरू हो गया। तो मित्रवर! न तो मैं रोमियो की तरह से अपनी जूलियट के कदमों पर झुका और ना शशि लैला या शीरीं बनीं, यह दो प्रबुद्ध जनों का मिलन था, दोनों ने ही सोच-समझकर विवाह किया और आज तक बहुत अच्छा जीवन जिया।

प्रेम जनमेजय : मन तो कर रहा है कि रसोई में व्यस्त शशि से सवाल पूछ लूँ कि तुमने एम. ए. में टॉप करने वाले प्रताप को अपना प्रेम शिकार बनाने की ठानी अथवा गोद में किताबों को लादे शशि से प्रताप ने कॉफ़ी पीने का प्रस्ताव किया तो प्यार उमड़ आया।

प्रताप सहगल: वैसे तो यह सवाल तुम्हें तब पूछना चाहिए जब शशि से बातचीत कर रहे होओ, लेकिन तुम्हारी ओर से मैंने ही पूछ लिया। शशि उवाच- 'यह सब मज़ाक मज़ाक में हो गया। एम. ए. में पढ़ रही कुछ सहेलियों का हमारा भी ग्रुप था और हम लड़कों की बातें भी करते थे। सब अपने-अपने मन की हाँकती तो एक दिन मैंने भी कह दिया कि मैं तो उस लड़के पर हाथ मारूँगी, जो टॉप करेगा। प्रताप को पहली बार मैंने एम. लिट्. की कक्षा में ही देखा था। मुँडा हुआ सिर, बढ़ी हुई दाढ़ी, छरहरा बदन, हाथ में लटकता हुआ एक बैग, टखनों से ऊँची पैंट, रंग गुलाबी था फ़िर भी यह मेरे सपनों का लड़का तो बिलकुल नहीं था। फ़िर भी जब उसने मुझे कॉफ़ी पीने के लिए साथ जाने के लिए कहा तो मन में यह सोचकर मैंने हाँ कर दी कि देखूँ यह टॉप करने वाला लड़का बातें कैसी करता है! बस यहीं मैं मार खा गई। बातें अच्छी लगीं और बातें करने का अंदाज़ भी। सेन्स ऑफ ह्यूमर भी मन को भाया। फ़िर मिलने का मन भी हुआ। अगली मुलाकातों में शेष बातें पीछे छूट गईं और प्रताप का मानसिक स्तर अपने आसपास के सभी लड़कों से अलग लगा...कुछ अलग तरह से सोचता था वह। मुझे इसी चीज़ की खोज थी और फिर सिलसिला आगे बढ़ चला। अब शेष तो सब इतिहास की बातें हैं।'

प्रेम जनमेजय: इसके साथ ही जुड़ता हुआ सवाल है? शशि आपकी साहित्यिक यात्रा की संगिनी हैं और जीवन यात्रा की भी। वो आपके साहित्यिक परिवार की सहभागी बनी हैं तो एक आत्मीय परिवार का सुख देने में भी सहभागी बनी हैं। अपने इस परिवार के बारे में कुछ बताएँ ? कुछ ऐसा भी कि कहाँ आप जीवन के फूल-पत्तों की सेज पर रहे तो काँटों की किन

सेजों पर कष्ट झेलते हुए साथ रहे? कभी ऐसा भी क्षण या ऐसे भी क्षण आए; जहाँ एक दूसरे से बिछड़ जाने की आशंका ने दुर्बल कर दिया, भयभीत कर दिया। और क्या कभी आप दोनों भविष्य की किसी आशंका से भयभीत होते हैं?

प्रताप सहगल: विवाह से पूर्व आप कल्पना नहीं कर सकते कि विवाह के बाद आपको क्या-क्या पारिवारिक परेशानियाँ आने वालीं हैं। मेरे परिवार में माता-पिता के साथ-साथ मेरे तीन भाई और तीन बहनें थीं। अभी भी हैं मेरा सबसे छोटा भाई सुरेन्द्र प्रताप ही सबसे पहले हमसे बिछुड़ चुका है। विवाह के बाद दस महीनों तक हम लोग सभी साथ थे; लेकिन दस महीनों के बाद हमने अपना आशियाना बना लिया। परिवार में हर व्यक्ति केवल एक व्यक्ति ही नहीं अपने आप में एक चरित्र भी होता है। हर चरित्र की अपनी-अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ और अपेक्षाएँ होती हैं। स्थितियाँ कुछ इस तरह से उलझ जाती हैं कि आपको अपनी राह अपनी तरह से बनानी होती हैं। ऐसा हमारे साथ भी हुआ है। विस्तार में जाऊँगा तो समझ लीजिए एक उपन्यास लिख रहा होऊँगा। जीवन की राह नहीं है आसाँ, बस इतना ही समझ लीजै, एक द्वंद्व का दरिया है और डूब के जाना है। मेरी साहित्यिक यात्रा में शशि मुझे लिखने के लिए कौंचती तो रहती ही हैं, वे मेरी पहली पाठक और सबसे बड़ी आलोचक भी हैं। इसी तरह से मैं भी उनके लेखन का पहला पाठक होता हूँ। बहुत से लेखक मित्र हमारे साझा मित्र हैं। और बहुत से शशि के मित्र भी मेरे मित्र बन चुके हैं।

हाँ, जीवन में एक बार ऐसा वक़्त आया था; जब हमें लगा कि कुछ समय के लिए हमें अलग हो जाना चाहिए, लेकिन वह टल गया। आज अकेला होने से डर लगता है, लेकिन जो होना होगा, वह तो होगा ही, फ़िर भविष्य के डर से अपना वर्तमान खराब क्यों करें। इसलिए हम अधिक से अधिक साथ रहते हैं, साथ-साथ घूमते हैं, हमें एक-दूसरे की भयंकर रूप से आदत पड़ चुकी है। अलग या अकेला होने की बात सोचते ही नहीं और कभी सोचते हैं तो एक-दूसरे से खुलकर साझा करते हैं। आपस में खुलकर बात करने की आदत ने ही हमें बचाए रखा है।

प्रेम जनमेजय : एक और व्यक्तिगत जीवन से जुड़ा सवाल और उसके बाद साहित्यिक सवालों पर आते हैं। आप दोनों के जीवन में दोस्तों का बहुत महत्त्व है। दोस्ती के आपके मापदंड कैसे हैं? दोस्ती के नाम पर छलनाओं को आप किस तरह से निबटाते हैं ? क्या उनसे आहत होते हैं? क्या आप में साहस है कि कुछ छलनाओं के ज़िक्र कर सकें और उन चेहरों को सामने ला सकें?

प्रताप सहगल: दोस्तों से ज़िंदगी में बहार रहती है। अगर मैं किसी दोस्त से खफ़ा होता हूँ तो ज़रा व्यवस्थित मन से विचार करता हूँ कि आख़िर मैं खफ़ा क्यों हूँ? ज़्यादातर हम अपने दोस्तों से इसलिए खफ़ा होते हैं कि वे हमारी अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरते, तब दुःख होता है, लेकिन दुःख का कारण तो मेरी उम्मीद ही होती है न! फ़िर यह भी सोचता हूँ कि दोस्तों से भी उम्मीद न करूँ तो किससे करूँ। कुछ बातों का ध्यान करता हूँ। पहले अपने हर दोस्त में सकारात्मक देखूँ, नकारात्मक बातें तो सबमें होती ही हैं, मुझमें भी होंगी, जो शायद मुझे नज़र न आती हों। दोस्तों से ईर्ष्या भी होती है। मुझे एक बात याद आ रही 'दि गिवर थिंक्स दैट ही इज़ गिविंग मोर दैन दि टेकर डिज़र्वस एंड दि टेकर थिंक्स ही इज़ गेटिंग लैस दैन ही डिजर्वस'। दूसरी बात है निंदा रस। अब निंदा दोस्तों की नहीं करेगे तो किसकी करोगे। जो दोस्त अनुपस्थित हो, उसकी निंदा करो और खूब करो लेकिन एक शर्त के साथ कि उपस्थित मित्र निंदा का एक भी शब्द निन्दित मित्र तक नहीं पहुँचाएँगे। यह आज़माया हुआ नुस्खा है। इससे आपकी भड़ास भी निकल जाती है और दोस्ती भी बनी रहती है। बस इतना ध्यान रहे कि आपकी निंदा से दोस्त को कोई नुकसान न पहुँचे।

किन्हीं दोस्तों के नाम लेकर छल आदि की बात करना गंदे कपड़ों को सरे-बाज़ार में धोने जैसा है। जिस भी दोस्त से मुझे कोई शिकायत होगी तो सीधे उसी से बात करूँगा न! इसमें साहस या कायरता जैसी क्या बात हुई? सोचने का अपना अपना तरीका है। आख़िर हर इंसान अपनी जीवन शैली से ही जीवन जीना चाहता है। और एक बात जोड़ दूँ कि हम दोनों मिलकर उस तथाकथित मित्र की मित्रता के बखिए पूरी तरह उधेड़ लेते हैं...इतना ही। अब जाने भी दो यारो...

प्रेम जनमेजय: साहित्य आलोचना या अपनी आलोचना के लिए आप दोस्तियाँ निभाते हैं ? यह मत कहिएगा कि आप ईश्वर की तरह शुद्ध प्रबुद्ध आत्मा हैं और मानवीय कमज़ोरियों से विहीन हैं। सोदाहरण इस प्रश्न का उत्तर दे सकें तो इस ढीठ एवं मुँहफट प्रश्नकर्ता पर कृपा होगी।

प्रताप सहगल: अभी तक आपके सवालों के मेरे जवाबों से आपको अनुमान हो गया होगा कि बंदा बहुत साधारण व्यक्ति है और मानवीय कमज़ोरियों से लबालब। ऐसा कोई उदाहरण तो मुझे याद नहीं आ रहा, लेकिन मन में अपेक्षा ज़रूर होती है कि मेरी रचना के बारे में मित्र बात करें, कहीं लिखें तो और भी अच्छा लगता है, लेकिन यह दोस्ती निभाने की कोई अनिवार्य शर्त नहीं है।

प्रेम जनमेजय: मैं यह नहीं पूछूँगा कि कविता, कहानी, नाटक आदि आपके लिए क्या हैं, मैं जानना चाहूँगा कि लेखक प्रताप सहगल के लिए साहित्य लेखन क्या है? उसके क्या साहित्यिक सरोकार हैं? उसकी वैचारिक प्रतिबद्धता क्या है? क्या वह वैचारिक प्रतिबद्धता को मानता है? प्रताप सहगल लिखता क्यों है?

प्रताप सहगल: साहित्य पढ़ना और लिखना दोनों रूपों में मेरे लिए एक अनिवार्यता है। हवा, पानी, खाना, सेक्स आदि यह जवाब सब पुराने हो चुके हैं। यह जानते हुए भी कि वस्तुतः लेखन एक टार्चर है, मैं लिखने से बाज़ नहीं आता। लिखकर आनंद आता है। लेखन के लिए 'आनंद' एक ऐसा पुरस्कार है, जिसके सामने सब बेमानी हैं। अपने अनुभवों को शब्द के माध्यम से विस्तार देता हूँ। चाहता हूँ कि मेरा सिरदर्द आपका भी सिरदर्द बने। वैचारिक प्रतिबद्धता और विचारधारा की प्रतिबद्धता को अलग-अलग रूपों में देखता हूँ। विचारधारा एक जीवन-दृष्टि देती है लेकिन कोई भी विचारधारा आत्यन्तिक नहीं है, हो ही नहीं सकती। ऐसा होता तो नई-नई विचारधाराएँ जन्म न लेतीं। जीवन किसी भी विचारधारा से बड़ा है। लेखन में विचार अपनी सापेक्षता के साथ ही उपस्थित रहता है। एक ही विचार किन्हीं परिस्थितियों में सुखकर या कल्याणकारी हो सकता है तो वही विचार किन्हीं दूसरी परिस्थितियों में दुःखकर भी हो सकता है। भारतीय परंपरा और दर्शन में अनेक विचार मनुष्य विरोधी हैं। मनुष्य विरोधी विचार मुझे आकर्षित नहीं करते। वर्ण व्यवस्था या जातीय भेदभाव के पीछे जो विचार हैं, वे मनुष्य विरोधी ही हैं। कर्म-फल का सिद्धांत यथास्थितिवाद का समर्थक है। (इस सम्बन्ध में विस्तार से जानने के लिए मेरी पुस्तक 'समय के सवाल' में संकलित आलेख 'कर्मवाद के बहानें' पढ़ें) मैं स्वयं को वाम विचारधारा के निकट पाता हूँ, लेकिन वैश्विक इतिहास गवाह है कि प्रजातान्त्रिक मूल्यों के अभाव में यह विचारधारा भी कई बार मनुष्य विरोधी हो जाती है। वाम के साथ फ्रायड और डार्विन को भी जोड़ लें। बुद्ध की ओर भी निगाह डाल लें तो दृष्टि का विस्तार तो होगा ही, गहनता भी आएगी। सृजनात्मक लेखन के पार्श्व में ही रहें विचार या विचारधाराएँ, भोंपू न बनें, इसलिए लेखकीय विवेक काम करते रहना चाहिए।

प्रेम जनमेजय: प्रताप सहगल विविध विधाओं में ट्रैवल करता है ? क्यों? उसे क्यों लगता है कि इस विषय पर नाटक लिखा जा सकता है, कविता, कहानी या उपन्यास नहीं? और व्यंग्य तो बिल्कुल नहीं ? क्या कभी ऐसा हुआ कि एक रचना किसी एक विधा में लिखी पर मन ने कहा कि जमी नहीं और प्रताप सहगल किसी अन्य विधा की शरण में गए और रचना जम गई ?

प्रताप सहगल: मैंने पहले भी कहा है कि विधाएँ मेरी वस्तु का चुनाव करती हैं। 'प्रियकांत' पर नाटक लिखना चाहता था, लेकिन नहीं लिख सका। पहले एक लंबी कहानी लिखी। कुछ मित्रों को सुनाई और जो फीड बैक मिला, उससे मुझे लगा कि इस पर काम करना चाहिए। काम किया और वह लंबी कहानी एक उपन्यास बन गई। और मुझे अभी भी लगता है कि इस पर फिल्म के लिए एक अच्छी स्क्रिप्ट लिखी जा सकती है। कई रचनाएँ विभिन्न विधाओं में घुली-मिली चली आती हैं। 'एक कहानी' मेरी एक व्यंग्य कविता है। सोचता रहा तो उसने एक दिन एक बाल नाटक का रूप ले लिया 'आओ खेलें एक कहानी'। एक ही रचना एक से अधिक विधाओं में भी लिखी जा सकती है...और कई थीम दिमाग में घूमते हुए अपने लिए विधा की तलाश में आज भी भटक रहे हैं। एक ही विधा में बंधे रहना मेरे स्वभाव में नहीं है।

प्रेम जनमेजय: आज के समय में हिंदी नाटकों की स्थिति के बारे में क्या कहेंगें ? मुझे लगता है कि व्यंग्य नाटक का क्षेत्र सूखे से ग्रस्त है और कुछ नाटकीय क्षेत्र ओला वृष्टि से भी ग्रसित हैं। इस स्थिति पर आपकी विस्तृत टिप्पणी चाहूँगा। और यह भी बताएँ कि तमाम टीवी चैनलों के विकास और धारावाहिकों की बाढ़ के बावजूद दर्शक आज जो रंगमंच की ओर लौट रहा है और उसे अपनी उपस्थिति से सम्पन्न कर रहा है, उसके पीछे कारण क्या है?

प्रताप सहगल: आज लिखे जा रहे हिंदी नाटकों की तुलना पिछली सदी के अंतिम तीन दशकों से करूँ तो आज स्थिति बहुत बेहतर है। हिंदी नाटकों को लेकर एक मिथ गढ़ा गया कि हिंदी में मंचन योग्य मौलिक नाटक हैं ही नहीं। मौलिक नाटकों के कम उत्पादन की स्थिति सिर्फ़ हिंदी की ही नहीं अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं की भी है। आज जिन नाटककारों को हम बड़ा नाटककार मानते हैं, उन्होंने मंच से जुड़कर लिखा है। कुछेक की अपनी रंग-मंडलियाँ थीं। मिसाल के तौर पर भारतेंदु, शेक्सपीयर, ब्रेष्ट या ओ नील। रंगकर्म में सक्रियता के अभाव में अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक कम ही लिखे जाते हैं और व्यंग्य नाटक तो बहुत ही कम। इसके कई कारण हैं। पहला यह कि पाठक यह मानकर नाटक कम पढ़ता है कि नाटक तो देखने की चीज़ है, इसलिए प्रकाशक भी उपन्यास आदि तो खुशी से छापता है लेकिन नाटक छापते हुए सोचने लगता है। दूसरी बात यह कि हिंदी लेखक का नाटक के प्रति उसी तरह का व्यवहार रहता है, जैसा कि अन्य विधाओं के प्रति। मेरा मानना है कि नाटक केवल खेला नहीं जाता, पढ़ा भी जाता है और पढ़ते हुए पाठक अपने मन में एक मंच तैयार करता चलता है। तीसरी बात यह कि हिंदी का रंगमंच नाट्यलेखन की अपेक्षा अधिक विकसित हो चुका है और हिंदी के अधिकाँश लेखकों के पास रंगमंच के अनुकूल शब्द के माध्यम से दृश्य-निर्माण की क्षमता नहीं है। वह अभी भी पाठ्य और वाच्य भाषा में अंतर नहीं कर पाता। चरित्रों के अनुरूप अपनी भाषा बदलता नहीं है। नाटक का शब्द ऐसा हो कि वह नाटक को नाट्य बनने की यात्रा में सहायता करे। गतिहीन, दृश्य-संरचना में अक्षम शब्द नाटक का शब्द नहीं हो सकता।

नाटक एक ऐसी विधा है जिसे आप घर बैठकर नहीं साध सकते। उसके लिए लेखक को नाट्य के कार्य-क्षेत्र में उतरना ही होगा। मैं देखता हूँ कि बहुत ही कम हिंदी लेखक हैं, जो नियमित रूप से रंग-कर्म देखते हैं और उससे जुड़ी बहसों में हिस्सा लेते हैं। और जो लेखक रंगकर्म से सक्रिय रूप से जुड़े ही नहीं हैं तो वे जब नाटक लिखेंगे तो नाटक न सिर्फ़ गतिहीन होंगे, उनमें अपेक्षित दृश्य-निर्माण की क्षमता भी नहीं होगी।

पिछले दिनों मुझे लगभग डेढ़ सौ नए नाट्यालेख पढ़ने का अवसर मिला और कह सकता हूँ कि नए नाटककार अब पूरी तैयारी के साथ नए-नए विषयों को

लेकर नाट्यलेखन में सक्रिय हुए हैं। पन्द्रह-बीस ऐसे नाटक सामने आए, जो रंगकर्म के अनुकूल हैं। यह एक शुभ लक्षण है। अब बात रही टी वी चैनलों के विकास और धारावाहिकों की बाढ़ की। प्रेम भाई, टी वी का दर्शक कैप्टिव दर्शक होता है, जो भी परोसा जाता है, उसे देखता रहता है। लेकिन मंच पर घटित होता नाटक लाइव तार की तरह से है। मंच के माध्यम से विचार अपेक्षाकृत अधिक सार्थक और तीखा आ रहा है। यह विचार सामाजिक विमर्श को जन्म देते हैं। खासतौर पर मैं युवा वर्ग को नाटक की ओर अधिक आकर्षित होते देख रहा हूँ। टिकेट के साथ या टिकेट के बिना हो रहे नाटकों के प्रेक्षागृह भरे रहते हैं। इससे टी वी को कोई खतरा नहीं, इसी तरह से टी वी के धारावाहिकों से भी इन मूल्यवान नाटकों को कोई खतरा नहीं। मैं तो यह भी मानता हूँ कि टी वी दर्शक भी अच्छे नाटकों को देखने के लिए तैयार हो रहा है, जैसे देवकीनंदन खत्री ने प्रेमचंद के लिए हिंदी का एक बड़ा पाठक-वर्ग तैयार कर दिया था, ठीक उसी तरह से यह टी वी भी सार्थक नाटकों के लिए दर्शक वर्ग तैयार कर रहा है। जब व्यक्ति का मानसिक स्तर ऊपर उठता है तो वह अपने लिए बेहतर विकल्पों की तलाश करता ही है और जिन्होंने जीवन भर ठस्स ही बने रहना है, उनके बारे में किम बहुना?

प्रेम जनमेजय: आपने नाटक चर्चा की, तो कुछ इस व्यंग्यकार से व्यंग्य चर्चा भी करें, व्यंग्य नाटकों के बारे में भी कुछ कहें?

प्रताप सहगल: व्यंग्य पर तुमसे अच्छी चर्चा और कौन कर सकता है। मुझे खुशी होती है कि साहित्य में हाशिए पर पड़े हुए व्यंग्य को प्रेम जनमेजय और व्यंग्य यात्रा ने साहित्यिक बहसों के केन्द्र में ला दिया है। हरिशंकर परसाई, शरद जोशी और रवीन्द्रनाथ त्यागी आदि ने व्यंग्य को हास्य से अलगाने का को काम शुरू किया था, उसे आपकी पीढ़ी ने पूरी तरह से प्रतिष्ठित कर दिया है। व्यंग्य आलेख तो बहुत लिखे जा रहे हैं, और व्यंग्यात्मक टिप्पणियाँ भी लेकिन व्यंग्य उपन्यास, व्यंग्य कहानी या व्यंग्य कविताएँ अभी भी अल्प मात्रा में ही हैं और व्यंग्य नाटकों का तो जैसे पूरी तरह अकाल है। शरद जोशी के दो व्यंग्य नाटकों के बाद अजय शुक्ल का 'ताजमहल का टेंडर' सामने आया। अब उनका नया व्यंग्य नाटक 'ताजमहल का उद्घाटन' सामने आया है। हिंदी के अनेक नाटकों में व्यंग्य तो है, लेकिन व्यंग्य नाटक नहीं हैं। इस सम्बन्ध में मैंने तुम्हारे ही दो नाटकों 'सीता अपहरण केस' और 'सोते रहो' के संदर्भ में विस्तार से बात की है। उसे ही देख लो न। सब वही कहूँगा तो दोहराव होगा। इधर मेरा एक व्यंग्य नाटक 'यूँ बनी महाभारत' भी तुमने व्यंग्य-यात्रा में प्रकाशित किया था, जो अब किताबघर प्रकाशन से स्वतन्त्र रूप में प्रकाशित हो चुका है। हिंदी नाटक लेखन के क्षेत्र में अभी बहुत स्पेस है और उससे कहीं ज़्यादा स्पेस व्यंग्य नाटकों को लिए है। तुम जैसे व्यंग्यकारों को यह स्पेस भरना चाहिए। यही हाल हिंदी व्यंग्य कविता का भी है। इस पर अभी काम होना शेष है। हिंदी व्यंग्य कविता पर कभी पूरी तैयारी के साथ बात करूँगा।

प्रेम जनमेजय: संस्मरण, मुख्यतः यात्रा-संस्मरण दुर्लभ वस्तु से होते जा रहे हैं, पर प्रताप सहगल ने इन्हें सुलभ बनाया है। आप यात्राएँ बहुत करते हैं और संभवतः इसलिए अपनी किताब को भी नाम दे डाला 'हर बार मुसाफिर होता हूँ।' इस मुसाफिर की सहयात्री शशि होती हैं ? वे कैसी सहयात्री हैं? किस किस आयोजन में साथ देती हैं? आप दोनों का खान-पान क्या रहता है? आप संस्मरण लिखने के लिए यात्रा करते हैं अथवा यात्राएँ आपको संस्मरण लिखने को विवश करती हैं? यात्राएँ शशि को संस्मरण लिखने को क्यों नहीं विवश करतीं? आप दोनों किस प्रकार की यात्राएँ पसंद करते हो? जब बिना यात्रा के काफी समय बीत जाए तो आपको कैसा लगता है?

प्रताप सहगल: एक ही सवाल में कई सवाल। ऐसा नहीं कि यात्रा-संस्मरण लिखे ही नहीं जा रहे। अभी कुछ वक़्त पहले ही ओम थानवी और श्याम विमल के बहुत अच्छे यात्रा-संस्मरण प्रकाशित हुए हैं। और लोग भी लिख रहे हैं। हाँ, कविता, कहानी, उपन्यास की अपेक्षा ज़रूर कम लिखे जाते हैं। इनके लिए भी तो घर से बाहर निकल कर इधर-उधर भटकना पड़ता है। चारों ओर चौकस रहकर ही कुछ बात बनती है। यात्रा-संस्मरण लिखने के लिए ही मैं यात्राएँ नहीं करता। जितनी यात्राएँ मैंने की हैं, उसका दशांश ही लिखा होगा। जो छूट गया सो छूट गया। संभव है वह स्मृति के किसी गह्वर में समाया हो और कभी लिखने के लिए विवश कर दे। यात्राओं में एक ओर तो ऊर्जा बहुत जाती है तो दूसरी ओर व्यक्ति ऊर्जस्वित भी होता जाता है। यह डबल ट्रैक मामला है। शाम ढलती है तो कई बार उस दिन की यात्रा उसी दिन शब्दों में बाँध लेता हूँ। ऐसे में दो गिलास बीयर या विहस्की तो चाहिए भाई। खाने-पीने के हम दोनों शौक़ीन हैं। जमकर घूमते हैं और ठोककर खाते-पीते हैं। वैसे भी शशि खाने-पीने, जीने-मरने और लड़ने-झगड़ने में पूरा साथ देती हैं। इस तरह वे एक आदर्श सहयात्री हैं। शशि ने यात्रा-संस्मरण क्यों नहीं लिखे, इसका जवाब तो वही दे सकती हैं, मैं नहीं। दिल्ली से बाहर निकले बहुत दिन हो जाएँ तो जीवन व्यर्थ लगने लगता है और फिर हम किसी यात्रा पर किसी दिशा में निकल पड़ते हैं। वहाँ भी, जहाँ हम पहले कई बार जा चुके हों।

प्रेम जनमेजय: आज के बाज़ारवाद को आप किस दृष्टि से देखते हैं? आज के समय में साहित्य की क्या भूमिका है? क्या आलोचना, सम्मान/पुरस्कार वितरण में भी बाज़ारवाद है?

प्रताप सहगल: बाज़ार आज एक अनिवार्यता है, बाज़ारवाद एक जाल है। मेरी एक कविता है 'बाज़ार से हम बच नहीं सकते'। बाज़ार और अपनी परम्परा के बीच एक संतुलन तो साधना होता है। हम लोग बाज़ार से परेशान न हों। मैं तो नहीं हूँ। हाँ, जब अपने किसी प्रोडक्ट को बाज़ार में ठेलने के लिए विश्व-सुन्दरियाँ भारत में ही पैदा की जाने लगती हैं, तो यह बाज़ारवाद है। अपनी ज़रूरत की वस्तुओं और व्यर्थ वस्तुओं के बीच पहचान करना/करवाना ज़रूरी है। विज्ञापनों का जाल बाज़ारवाद के जाल को फैलाने का माध्यम है और अनाप-शनाप वस्तुओं का संग्रह और अनाप शनाप लाभ की लालसा ही बाज़ारवाद की जड़ है. बाज़ार केवल वस्तुएँ नहीं लाता, सांस्कृतिक उपादान भी परोसता है, हमारे मूल्यों पर भी असर डालता है। सामाजिक ताने-बाने में भी प्रवेश करता है। यह सच है कि इस बदली हुई दुनिया में आज कोई भी देश अपनी झोंपड़ी अलग बना कर नहीं रह सकता। यह समय आदान-प्रदान का समय है। इतिहास के हर काल-खंड में ज्ञान और वस्तुओं का आदान-प्रदान होता रहा है। हम केवल प्रभावित हो नहीं रहे, प्रभावित कर भी रहे हैं। हमारी आत्म-विसंगति यह है कि हम दूसरों को प्रभावित करना तो चाहते हैं, लेकिन होना नहीं चाहते। और एक दूसरा भारतीय संसार वह है, जो पश्चिम की हर बात, मूल्य, वस्तु को भारत में प्रदत्त मूल्यों, वस्तुओं या बातों से श्रेष्ठ ही मानता है, यह गलत है। इससे बचने की ज़रूरत है। घुलने-मिलने की प्रक्रिया वैश्विक स्तर पर चल रही है। इससे डरना क्या, बस सावधान रहकर चुनाव करने की ज़रूरत है। बाज़ारवाद का असर पुरस्कारों पर न हो, ऐसा कैसे संभव है! उनकी भी अपनी राजनीति और अपना तर्कजाल है और यह कोई नई बात नहीं है।

❐

प्रश्न-कुंडली

गीताश्री

पत्रकार एवं कथाकार गीताश्री की विभिन्न विषयों, स्त्री विमर्श, सिनेमा पर केंद्रित अब तक 10 पुस्तकें प्रकाशित। पिछले 22 वर्षों से पत्रकारिता में सक्रिय। दो कहानी संग्रह हैं-'प्रार्थना के बाहर और अन्य कहानियाँ' और 'स्वप्न, साजिश और स्त्री'। वर्ष 2008-09 में पत्रकारिता का सर्वोच्च पुरस्कार रामनाथ गोयनका, बेस्ट हिंदी जर्नलिस्ट ऑफ द इयर समेत अनेक पुरस्कार प्राप्त गीताश्री ने राष्ट्रीय स्तर के पाँच मीडिया फैलोशिप और उसके तहत विभिन्न सामाजिक सांस्कृतिक विषयों पर गहन शोध किया। कई बड़े मीडिया संस्थानों में सक्रिय पत्रकारिता करने के बाद फिलहाल लाइव इंडिया चैनल की एडीटर-ऑनलाइन पद पर !

संप्रतिः संपादक-ऑनलाइन, लाइव इंडिया

मोबाइलः9818246059,

Email-geetashri31@gmail.com

D-1142, Gaur Green Avenue, Abhay Khand-2, Indirapuram, Ghaziabad.

प्रेम, खौफ़, धोखा, दुनिया, रचना, सपना, आकांक्षा, डर, प्रकृति, पानी, बारिश, धूप, बादल, आकाश, पृथ्वी, सौंदर्य, शोख, चंचल, दिल, कविता, लय, गीत, मंदिर, देवता, आशा...

वह कागज़ पर लिखती चली जा रही थी...

'बस, बस, मात्र पच्चीस शब्द लिखने हैं आपको, अपनी पसंद के। जो शब्द मन में रहे हैं इस वक्त, उन्हें आप लिखते चले जाइए।''

'आशा...' तक आते आते वह रुक गई।

'हो गया...' उसकी आवाज़ भर्राई हुई थी।

'ओके...आप पेपर मुझे दे दीजिए।' उसने शिवांगी के हाथ से वह पेपर ले लिया। पेपर लेते हुए शहर की सबसे बड़ी टैरो कार्ड रीडर ने महसूस किया कि कागज़ नम था। चेहरा सर्द पड़ा हुआ। दिन भर बहुत लोग आते हैं उसके पास। सबसे ज़्यादा औरतें आती हैं। कुछ परिवार भी आते हैं। पति-पत्नी का जोड़ा साथ कभी नहीं आया। आज पहली बार कोई स्त्री पति के साथ आई है अपने बारे में, अपने संबंधो के बारे में जानने के लिए। टैरो कार्ड रीडर स्मिता दुर्गनी ने उसके पति को बाहर बिठा दिया था। वह अकेले में इस स्त्री से बात करना चाहती थी। पति के चेहरे से लगा कि वह भी यही चाहता था। वह बाहर अपने मोबाइल पर गेम खेलने में मशगूल हो गया। स्मिता ने स्त्री के जवान चेहरे को देखा, चेहरे पर सन्नाटा छाया हुआ था। भीतर किसी तूफ़ान का साया या उसका वेग होगा, जिसे वह रोके हुए होगी। रोज़-रोज़ ऐसे क्लाइंट को देखते समझते स्मिता आदि हो चुकी है। शिवांगी के लिए यह पहला मौका है, जब वह तीनों काल पढ़ने वाली किसी समवयस्क दूसरी स्त्री के सामने बैठी है। अब तक अख़बारों में तस्वीरें ही देखती आई है। सामने बैठी स्त्री का वह कमरा अगरबत्ती की खुशबू से महक रहा था और एक कोने में खुशबू वाला कैंडल धीमे-धीमे जल रहा था। स्मिता के माथे पर लंबी बिंदी और आँखों में मोटे-मोटे काजल और घुँघराले बाल उसे बाकी स्त्रियों से अलग लुक दे रहे थे। शिवांगी को वहाँ का माहौल जादुई लग

रहा था। बाहर से कोई शोर नहीं। अपने भीतर का शोर भी शांत हो गया था। वह अपनी बात साफ़-साफ़ सुन पा रही थी। उसके भीतर बहुत से सवाल थे, जो अब साफ़ सुनाई दे रहे थे। उसे यहाँ भला लगा। सबसे अधिक तो स्मिता की मुस्कान थी, जो अबूझ पहेली की तरह उसे लगी।

स्मिता ने ताश से कुछ लंबे चौड़े रंग बिरंगे कार्ड उसके सामने धर दिए। पहले ताश की तरह उसे फेंटा फिर सामने रखते हुए उसमें से एक कार्ड उठाने को कहा। शिवांगी ने एक कार्ड उठाया और अलग रख दिया। फिर कार्ड फेंटा और उसमें से एक उठाने को कहा गया। यह क्रम दस बार चला। दस चुने हुए कार्ड को एक साथ अपनी हथेलियों में लिया और गौर से उन्हें देखने लगी। एक-एक कर कार्ड देखती जाती, रखती जाती, फिर दूसरा, तीसरा........ जैसे-जैसे कार्ड देखती जाती स्मिता का चेहरा जलता बुझता। कभी गंभीर होती तो कभी चिंतित दिखाई देती। शिवांगी गौर कर रही थी। उसके चेहरे के बदलते रंगों को देख कर भीतर में भय की लकीर खिंच गई। नसो में कुछ चुभा। स्मिता ने कार्ड से चेहरा उठाया। उसकी आँखें बदल-सी गई थीं। उनमें इतना तेज था कि शिवांगी ने आँखें झुका लीं।

'मैं जो कहने जा रही हूँ, हो सके तो आप कहीं नोट कर लें। शायद कुछ आप भूल जाएँ और वो आपके काम की बातें हों। सो नोटबुक लाईं हों तो नोट कर लेना बेहतर होगा।'

शिवांगी के पर्स में पेन तो है, नोटबुक नहीं। स्मिता ने उसे सादा कागज़ पकड़ाया और उसे ज़रूरी पॉइंट्स नोट करने को कहा।

कुछ भी कहने से पहले स्मिता भूमिका बाँध रही थी। उसने पानी का गिलास शिवांगी की तरफ बढ़ाया।

'जो पूछूँगी, सच-सच बताइएगा...छिपाएँगी तो मेरे लिए उपाय बताना मुश्किल हो जाएगा।'

शिवांगी ने ना में सिर हिलाया..उसकी धड़कन बढ़ गई थी। क्या पूछने वाली है। लगता है, सबकुछ जान गई है। पंडित, ज्योतिषी और टैरो कार्ड रीडरों से कुछ छिप नहीं सकता। पहली बार टैरो वाली से पाला पड़ा है। उम्र में ज़्यादा बड़ी नहीं दिखाई देती। बस हाव-भाव, वेशभूषा तिलिस्मी बना रखा है कि कोई भी उलझ जाए इस मायाजाल में।

'क्या आपके जीवन में कोई और है..?'

'क्या..?'

'आप किसी और से प्यार करती हैं...?'

'बताइए...चुप मत रहिए...चुप रहेंगी तो कभी

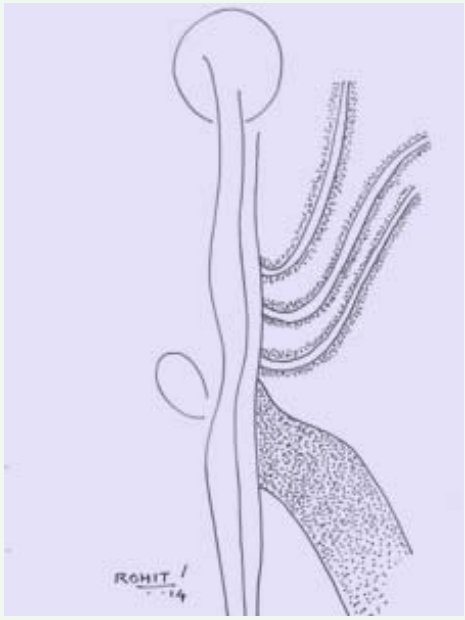

समस्या का निदान नहीं मिलेगा..बताइए..मैं किसी से नहीं कहूँगी..मुझ पर भरोसा करिए। ये मेरा पेशा है, मुझसे किसी का राज नहीं छिपता। हम किसी की बात किसी से बताते नहीं। यही हमारे धंधे की मोरालिटी है। बोलिए...फिर मैं आपको सारी बातें बताती हूँ...मैं आसानी से जड़ तक पहुँच पाऊँगी।'

'मैं तो कुछ और जानना चाहती हूँ। मेरे करियर और दांपत्य जीवन के बारे में बताइए। बहुत समस्याएँ झेल रही हूँ। मैंने सोचा पहले आप बताएँगी फिर मैं अपने बारे में बताऊँगी, लेकिन आप तो मुझसे ही पूछ रही हैं...आपको इन कार्डो से कुछ पता नहीं चला क्या....?'

'आपकी ज़िंदगी बहुत डिस्टर्ब चल रही हैं। ये कार्ड मुझे सब कुछ बता रहे हैं आपके बारे में, बस मैं आपसे पूछती जाऊँ, आप 'हाँ' 'ना' करेंगी तो ट्रीटमेंट में आसानी होगी मुझे ..।'

शिवांगी चुप लगा गई। ये सब कुछ मुझी से क्यों कहलवाना चाहती है। बड़ी पंडिताइन बनती है, खुद बताए ना कि मुझे क्या समस्या है। सब कुछ मैं ही बता दूँगी तो ये अपनी तरफ से क्या बताएँगी।

मन ही मन उधेड़बुन में थी कि स्मिता की गंभीर आवाज़ गूँजने लगी।

'आपने जितने कार्ड्स चुनें, वे सब आपकी स्थिति की भयावहता की ओर इंगित कर रहे हैं। मैं एक-एक करके आपकी ज़िंदगी की समस्याओं का खुलासा करती जाती हूँ। बीच-बीच में आपको जो काम का लगे, नोट कर लेना। ये रहा आपका पहला कार्ड.. 'आँधी चल रही है, जंगल टूट रहे हैं, एक स्त्री तेज़ हवाओं से घिरी भाग रही है...' ये तस्वीर बता रही है कि आप चौतरफ़ा मुसीबतों से घिर चुकी हैं। अकेली हैं आप और इनसे मुकाबले का साहस नहीं बटोर पा रही हैं...।'

शिवांगी ब्याह कर ससुराल आ गई है। पहला कदम रखा ही था कि कोई कोकिल कंठी कूकी-

'बउआ जी, क्या लाए हैं मेरे लिए ? आज तो सब लुटाना ही पड़ेगा। बिना चुकाए गुज़ारा नहीं...और वह कंठ गा पड़ी...माई गे सुनए छलिअई, सत्यम बाबू बरा धनिक छतिन, हमर सब के नेग चुकइतिन कहिया, आज ना चुकएतन, चुकएतन कहिया...'

यह गाना उसे इतना भाया कि लगा घूँघट के भीतर से ही गा उठे। नई दुल्हिन का वेश धरे, कुछ तो लोक लिहाज निबाहना था। ज़्यादा दिन नहीं, कुछ ही दिन की तो बात है। सत्यम की आवाज़ निकली–'बस बस..अब अंदर तो जाने दो...भाभी, आपके लिए दाई लाया हूँ। सेवा करेगी आपकी...।'

'जाइए..बड़े आए...सहर की लरकी को हम कहाँ दाई बना पाएँगे जी, हम ही न बन जाएँगे... चलिए नेग निकालिए...।'

इस छेड़छाड़ के बीच शिवांगी का दिल धक से रह गया। दाई...यह पत्थर सीधे मर्म पर जाकर लगा। हूँह...दाई हूँ मैं...। ये भाभी क्या बला है। सत्यम कुछ भी बोल सकते थे, दाई क्यों बोले। यह शूल तब जो चुभा, वह आज तक नहीं निकला। वह

गँवई माहौल से जल्दी निकल कर जमशेदपुर और अब दिल्ली पहुँच गई। वो तो भला हो उसकी पढ़ाई-लिखाई का जिसने दाई बनने से बचा लिया। नहीं तो उस बड़े परिवार में भाभी जैसे कितनी बहुएँ बूढ़ी सासों को तेल मलते-मलते खुद ही बुढ़ा रही थीं। उन दिनों को, उस माहौल को अब वह याद भी नहीं करना चाहती। उसे अपने अतीत से नफ़रत होती है।

'ये आपका दूसरा कार्ड...एक स्त्री नदी किनारे खड़ी है...नाव दूर दिखाई दे रही है...उसे उस नाव की ज़रूरत है, उस पार जाना चाहती हैं, उसकी पुकार नाविक तक नहीं पहुँच रही है..।'

शिवांगी को गँवई ससुराल से मायके वापस जाना है। सत्यम पटना लौट गया है। कुछ दिनों की बात कहके। बूढ़ी गंडक का पानी गाँव में घुस आया है। आँगन तक में पानी भर गया है। छत पर सबको शरण लेनी पड़ी है। मुख्य सड़क तक जाने का रास्ता डूब गया है। सारे संचार माध्यम ठप्प और कभी-कभार आने वाली बिजली भी गायब। उसके मोबाइल का सिगनल

गायब, बैट्री खत्म। इतनी असहाय तो कभी नहीं हुई थी। वह पानी हेलते हुए ही गाँव से भाग जाना चाहती है, पैदल। सब मज़ेमें हैं, छत पर बैठ कर नज़ारा ले रहे हैं। रेडियों पर संगीत का आनंद लिया जा रहा है। वह किससे बात करे, किससे फ़रियाद करे..उसके और घरवालों के बीच अजीब-सी संवादहीनता है।

'ये तीसरा कार्ड...जंगली जानवरों से घिरी एक झोंपड़ी...इसके अंदर....।'

'प्लीज़...बस करिए...अब मुझे नहीं सुनना। आप मुझे लगातार डरा रही हैं। मैं यह सब सुन कर दहशत से मर जाऊँगी। मुझे मत बताइए ये सब...प्लीज़...।'

शिवांगी खिन्न हो उठी थी।

'आप बस मेरे कुछ सवालों के जवाब दीजिए। समस्या नहीं सुनना चाहती। तस्वीरें देख कर तो मैं भी इसकी व्याख्या कर सकती हूँ...।'

'लेकिन ये कार्ड तो आपने चुने हैं, ये कार्ड आपके सारे हालात बयाँ कर रहे हैं...।'

'छोड़िए ये सब...आप मेरी प्रश्न कुंडली बनाइए...प्लीज़...ज़्यादा नहीं...तीन सवाल हैं मेरे..बस। उनके जवाब मिल जाएँ, यही काफी है। आप प्रश्न कुंडली बनाने में माहिर हैं...मेरे सवाल सुनिए..।'

'इतने से घबरा गईं आप! अभी तो जो आपने कागज़ पर 25 शब्द लिखें हैं, उन सबकी व्याख्या बाकी है। ये कार्ड्स आपके अतीत और वर्तमान के बारे में बता रहे हैं और ये शब्द जो आपने अपने मन से लिखें हैं, वे आपका भविष्य बता रहे हैं। फिर भी आप नहीं सुनना चाहती तो चलिए...पूछिए...।'

'मेरा दांपत्य जीवन चलेगा या नहीं। बहुत तरह के इश्यूज़ हैं हमारे बीच। जो कभी सॉट ऑउट नहीं हो सकते। मेरी भी कुछ विवशताएँ हैं, उनकी भी कुछ परेशानियाँ, डिमांड।....हम बहुत उलझ गए हैं..हम जानते हैं कि हम एक दूसरे के साथ नहीं रह सकते, फिर भी रहते हैं। हम दो तरह के लोग, गलत तार एक साथ जुड़ गए हैं। हम एक दूसरे से प्यार करते हैं, पर एक दूसरे को बर्दाश्त नहीं कर पा रहे हैं। आप हमारी टैरो कुंडली बना कर देखिए। इस रिश्ते का क्या भविष्य दिखता है ?'

'मैडम...मैं यहीं तक तो पहुँचने वाली थी, आपके कार्ड्स रीडिंग के थ्रू...पर आपमें धैर्य नहीं...मैंने आपसे पहले ही कहा था, थोड़ा वक्त लेकर आइएगा। हमें जड़ों में जाकर निदान ढूँढ़ना पड़ता है।' स्मिता मुस्कुराई।

'प्लीज़ ...' शिवांगी गिड़गिड़ाई। मोबाइल साइलेंट मोड पर था। बार-बार उसकी निगाहें स्क्रीन पर जा रही थीं।

वहाँ लगातार कुछ नोटिफिकेशन आ रहे थे। शिवांगी को उन्हें देखने की बेचैनी भी हो रही थी। यहाँ से जल्दी मुक्त हो तो देखे। अपने भविष्य को लेकर चिंतित भी थी और यहाँ से भागने की आतुरता भी थी।

उसने सोचा था कि फटाफट सवाल पूछेगी, सवाल के आधार पर प्रश्नकुंडली बनाकर जवाब देंगी। यहाँ तो ग्रंथ लिखवाने लगी बाबा...।

'पहले आपको आपके लिखे शब्दों के मायने जल्दी से बता देती हूँ...यहीं से आपको जवाब मिलेंगे...ध्यान से सुनें..'

-प्रेम-

आपका पहला शब्द है प्रेम। आप मूलत प्रेमिल इंसान हैं। प्रेम करना जानती हैं पर आपको उसी वेग से प्रेम मिलता नहीं। आपकी अपेक्षाएँ उतनी ही चाहत पाने की है। आप छटपटाती हैं, प्रेम दिए जाती हैं......वापसी की उम्मीद में...नहीं मिलता तो तुरत वहाँ से विद-ड्रा करना चाहती हैं। पर आप लौट नहीं पाती हैं। आप खुद को ही टुकड़ो में बाँट लेती हैं। प्रेम आपके लिए देने पाने का बराबरी वाला काम है। उसी मात्रा में, उसी बेचैनी के साथ मिलना चाहिए। न मिले तो आप हिंसक भी हो जाती हैं।

उपाय–मेडीटेशन करिये और कमरे में खुशबू वाला कैंडिल जलाइए। अपेक्षाएँ कम कर दें।

हाँ, उसने पति से प्रेम ही तो करना चाहा था। प्रेम हो जाता तो ठीक रहता। यहाँ करना पड़ेगा। शायद हो भी जाता लेकिन पहली बार कदम धरते ही जो चुहलबाज़ियाँ सुनने को मिलीं, प्रेम होने की संभावना खत्म सी हो गई। प्रेम करने की ओर ध्यान ज़रूर गया।

कुछ कानाफूसी सुनी और चौकन्नी हो गई। बबुआ जी कहाँ करना चाहते थे ये सादी...वो तो फुलवरिया वाली चाची जी पीछे पड़ गईं लड़की पढ़ी-लिखी है, कर ले रे..ज़रूरत पड़ने पर कमा भी सकती है। बड़की भाभी के कुछ और सपने थे, जो चूर-चूर। जब तक शिवांगी वहाँ रहीं, कोई मौका नहीं छोड़ा उन्होंने उससे काम करवाने और उसके पढ़े-लिखे होने का गुरूर तोड़ने में। शाम की ड्यूटी लगा दी कि तसली धोओ, मिट्टी का लेवा लगाओ, मिट्टी का चूल्हा लिपाई करके आग जलाओ। गैस का चूल्हा सिर्फ सुबह जलेगा; क्योंकि सबको जल्दी होती है। ससुर जी को अठ बजिया ट्रेन पकड़ कर हाजीपुर भागना पड़ता है। सुबह ही भात दाल भरपेट खा के निकलते हैं।

सुबह भाभी सँभाल लेती थीं और शाम को मज़े से छत पर रेडियों और गप्पे। वह भूल नहीं सकती कि उसने भाभी की पाबंदी के बाद भी एक शाम गैस चूल्हा जला लिया। झपटती हुई छत से भाभी उतरी और फटाक से नॉब बंद कर दिया।

'हटो तुम.., गैस फ्री नहीं आता, मुश्किल से एक सिलिंडर का इंतज़ाम हो पाता है, तुम उसके पीछे पड़ा गई हो। खाना नहीं बनाना तो बता दो। हम कर लेंगे। अब तक तो हम कर ही रहे थे... तुम कुछ ही दिन तो हेल्प करोगी, करना तो हमें ही हैं...हम तो चूल्हे में ही खप गए......जब से इस घर में आए हैं, चूल्हेभाड़ में ही लगे हैं...हमको कहाँ सुख कि शहर में जाकर रहें। तुम्हारी तरह पढ़े-लिखे नहीं है न..।'

लगभग दहाड़ते हुए भाभी ने चौके से उसे निकाल ही दिया। माँ जी आईं, देखा और खिसक गईं अपने कमरे में फफक-फफक कर रोते हुए उसने सोचा कि पति को बताएगी भाभी ने कैसे बदतमीजी की और मुझे यहाँ एक पल भी नहीं रहना। इनसे कोई रिश्ता नहीं रखना। हम यहाँ से दूर चले जाएँगे। तुम्हारे कहने पर कुछ महीने रह लिये। अब हमें चलना चाहिए। वैसे भी मैं गाँव के लिए नहीं बनी हूँ।

यह प्रेम करने की पहली सीढ़ी थी; जिसे उसके पति को पार करनी होगी।

पति उसे लेने तो आए, पूरा वृत्तांत सुना और पहली सीढ़ी क्या पार करते, पूरी सीढ़ी ही खींच ली। सड़ा-सा मुँह बना कर बोला-'सब जानता हूँ। देखो..ये मेरी फैमिली है। तुम आज मेरे साथ इन्हीं लोगों की वजह से हो। तुम्हारी वजह से मैं इन्हें नहीं छोड़ सकता...चाहो तो तुम...।'

बोलते-बोलते बेड पर पड़े मोबाइल को उठाया, दीवार पर दे मारा। पति का यह रौद्र रूप देखकर वह दंग रह गई। मोबाइल कई भागों में बंट कर फैल गया था। कमरे से बाहर आवाज़ गई होगी, कुछ कदम दरवाज़े तक आती जाती रहीं..। उसके दिल को पहली और गहरी चोट लगी। भीतर कुछ चटकने की आवाज़ आई थी। तन से कोई लौ बाहर निकली। कुछ खाली-खाली सा अहसास हुआ। भय की अनजानी लहर देह में दौड़ गई।

-खौफ-

'आप ऊपर से निडर दिखने की कोशिश करती हैं, पर आप भीतर से निहायत ही कमज़ोर और डरपोक हैं।'

'डर का सामना करिए और जो काम करने में किसी से डर लगता हो, किसी अपने से छिपाने की

नौबत आए, वो काम मत करिये।'

डरपोक न होती तो क्या चुपचाप यूँ किसी अजनबी से शादी कर लेती। उसने मोबाइल के दौर में प्यार किया था और फेल हो गई थी। वो तो शुक्र था कि सिर्फ मैसेजों के आदान-प्रदान हुए थे। ख़त लिखे होते तो वापस कैसे लेती। मैसेज डिलीट किए और सिम कार्ड बदल दिया। बस कसक बची रह गई थी। सोचा था जो मिलेगा, उसी से प्यार करेंगे। जैसे उसकी माँ ने उसके पिता से किया होगा। भाभियों ने भाइयों से..दीदियों ने जीजाओं से।

-धोखा-

'आप किसी मामले में धोखा खा सकती हैं। बेहतर हो सजग रहें, लोगों को पहचानना सीखें और...।'

'क्या आप इस धोखे को स्पष्ट कर सकती हैं...?'

शिवांगी ने बीच में टोका। भीतर-भीतर वह सिहर गई। धोखा देने के नाम पर नहीं, धोखा खाने के नाम पर। कितनी बार धोखा खाएगी।

'शिवांगी जी...!!'

स्मिता की गंभीर आवाज़ उस खूशबू वाले कमरे में गूँजी।

'ये तो आप बेहतर जानती होंगी। मुझे बस धोखा दिखाई दे रहा है, ये आपके चुने शब्द हैं; जो धीरे-धीरे आपकी ज़िदगी के पन्ने एक-एक कर खोल रहे हैं...।'

शिवांगी के चेहरे पर उलझन की रेखाएँ उभरी। उसने तो जो शब्द ध्यान में आते गए, बिना सोचे समझे लिख दिया। उन शब्दों से उसके जीवन के पन्ने खुलेंगे, कहाँ सोचा था।

'ये कार्ड देख रही हैं न आप..दी क्वीन्स आफ कप्स..आपकी राशि का कार्ड है, मकर राशि है आपकी..।'

'मकर राशि के जातक खुद को प्यार करना तथा स्वीकार करना सीखें। आर्थिक रूप से मज़बूत किसी व्यक्ति से मुलाकात होगी। बेशक आप अपनी भावनाएँ व्यक्त नहीं कर पाएँगी पर रोमांस और सकारात्मकता के लिए यही उचित वक्त है...।'

स्मिता ने अचानक शब्दों की व्याख्या बंद करके राशि के कार्ड पढ़ने लगी थी। शायद शिवांगी की ऊब की वजह से बीच में परिवर्तन ज़रूरी लगा होगा। शिवांगी के भीतर रोमांस शब्द अटक गया था।

कितना सही प्रेडिक्शन है...रोमांस...पर कहाँ...हवा में..... तारों में.....मोबाइल में...कहाँ है...उसे ही ढूँढ़ रही है अब तक।

स्मिता की आवाज़ आ रही है...।'आप सफलता के करीब हैं...कोई परंपरा विरोधी काम करना चाहती हैं...कठिन मेहनत का उत्तम फल मिलेगा..जीवन साथी की समस्याओं को लेकर परेशान रहेंगी। अपने आत्मविश्वास को कम न होने दे...बहुत उथल-पुथल दिखाई दे रही है। आपका लिखा, बस एक आख़िरी शब्द है...आशा...। इसका दामन कभी न छोड़िएगा। आप विपरीत परिस्थितियों में भी उम्मीद का सिरा नहीं छोड़ती...यह बहुत पोजिटिव बात है आपमें। आपके लिखे शब्द आपकी मनोदशा जाहिर कर रहे हैं...।'

'खुद को संयत करके कुछ उपाय करें, कहीं लिख लें..उपाय ताकि याद रहे...।'

'मेरे सवालों का जवाब नहीं मिला मुझे...आप सीधे मेरी प्रश्न कुंडली बना दें। मुझे कुछ सवालों के जवाब दे सकें तो बेहतर...बहुत बेचैन मनोदशा में आई हूँ।कुछ समझ नहीं आ रहा, ज़िदगी किधर ले जा रही है। बस मैं सैलाब में बहती चली जा रही हूँ। मैं बहुत संदिग्ध हो गई हूँ।अपने ही घर में, अपनी ही नज़र में।'

'आपको मेरे पास नहीं, किसी मैरिज काउंसिलर के पास जाना चाहिए...।'

सारे कार्ड समेटते हुए वह मुस्कुराई। कमरे में अगरबत्ती की महक कुछ कम हो गई थी। सामने वाले टेबल पर अगरबत्ती की दो समानांतर रेखाएँ जो उसके राख से बनीं थीं, दिखी। बीच-बीच में लाइन टूटी हुई सी थी। दोनों की नज़रें उधर एक साथ गईं और लौटीं भी साथ। दोनों आँखों से राख की अदृश्य परतें झर रही थीं...।

'क्या आपके पास मेरे सवालों के सीधे जवाब नहीं ? फिर मुझे अर्चना ने आपके पास क्यों भेजा ? आप तो रिलेशनशिप एक्सपर्ट मानी जाती हैं। कुछ तो जवाब होगा आपके पास..?

'आप समझीं नहीं, हमारे कहने का एक तरीका होता है। हमने बता दिया। समझदार को इशारा काफ़ी है। अगर आप धैर्य रखती तो सारे शब्दों के अर्थ बताती जिससे आपकी ज़िदगी ज़्यादा स्पष्ट हो सकती थी। मैंने उपाय भी बताए आपको...।'

'मेरा दांपत्य जीवन...??? वह खतरे में है..मेरे पति को मुझसे बहुत प्रोब्लम...मैं कहीं नहीं जाती..कुछ नहीं करती..फिर भी..हर समय मुझ पर संदेह की दृष्टि गड़ी रहती है। जैसे दो आँखें हमेशा मेरी निगरानी कर रही हों..मुझे अपनी साँसों का भी हिसाब देना पड़ता है...।'

शिवांगी के सवाल जैसे बैताल की तरह लटके हुए थे उस सुगंधित कमरे में।

स्मिता उसे बोलने देना चाहती थी। अब वह टैरो कार्ड रीडर से एक सामान्य स्त्री में बदल चुकी थी, जो ध्यान से दूसरी स्त्री का दर्द सुन और बाँट लेना चाहती हो। सामने वाली स्त्री अब उसके लिए क्लाइंट नहीं रह गई थी, जिससे उसे मोटी फीस वसूलना था। वह सचमुच द्रवित हो रही थी। इसे लगा, इस स्त्री को सहारे की ज़रूरत है, जो अपने ही संस्कारों से जूझ रही है और बाहर निकलने के लिए छटपटा रही है। संस्कारों की कैद से मुक्ति आसान नहीं होती, स्त्रियों के लिए कई बार उम्रकैद साबित होती है।

उसे भी तो उन संस्कारों से निकलने में बहुत वक्त लगा। जैसे कभी वह अपनी पहली कैद में छटपटाया करती थी। कितना हंगामा मचा था, जब उसने सोमेश से कहा था-'मैं एन जी ओ सेक्टर ज्वाइन करना चाहती हूँ।'

जैसे उस पांरपरिक घर में बम फूटा हो। सोमेश ठाकुर समेत सबका चेहरा ऐसे बना जैसे इंडिया गेट पर कैंडल मार्च में हिस्सा लेने आए हों। सासू माँ ने कहा-कोई और नौकरी कर लो, टीचिंग जॉब सबसे सेफ रहती है, ये गली-गली मोहल्ले में घूमने वाली नौकरी होती है क्या कोई। सोमेश चुप रहा। स्मिता ने मौन स्वीकृति समझ कर कदम उठा लिये। आए दिन, बेतरतीब से कुछ झोला छाप लोगों का घर आना-जाना शुरु हुआ और कलह भी साथ ही शुरु हुई। तमाशा तो तब हुआ जब उसे किसी सेमिनार में प्रेजेंटेशन देने के लिए बंगलोर का इनविटेशन आया। चहकती-फहकती घर पहुँची। वही हुआ जिसका डर था। टूर को लेकर बहस शुरु। सोमेश की अपनी दलीलें थी। स्मिता की

अपनी। तभी उसका कुलीग सुकेश टपक पड़ा। पूरे मुद्दे की पीपीटी फ़ाइल बना कर पेन ड्राइव में ले आया था। गद्गद स्मिता ड्राइंग रूम में सुकेश से लहराती हुई मिली। सोमेश वहीं आकर बजर गया। और उसका विद्रोही मन भड़क उठा और बिना आगे पीछे सोचे, सुकेश का हाथ थाम कर घर से निकल पड़ी।

यह सब भूल बैठी थी। फिर कोई उसकी छाया-सी स्त्री सामने बैठ कर जख्म हरे कर रही है। भीतर में कहीं दर्द चिलक उठा। यह दर्द सोचने का वक्त नहीं, उसके सामने एक केस है, जिसे उसको हल करना है। किसी अँधेरी गहरी गुफा से बाहर आई।

बहुत बेदम सी आवाज़ में आई-जैसे गुफा की पथरीली भुजाओं ने जकड़ रखा हो।

'ऐसी नौबत क्यों आई ? पाँच साल ही तो हुए हैं आपकी शादी को।इतनी जल्दी रिश्ता कॉम्प्लिकेटेड कैसे हो गया? खुल कर बताइए तो शायद मैं कुछ समझा पाऊँ आपको।

'स्मिता जी...'

वह फफक पड़ी।

'अरे..रे रे..आप रोइए मत...सब ठीक हो जाएगा...सब आपको हाथ में हैं..सच में..मैं आपके लिए प्रे करूँगी, कुछ उपाय बताऊँगी, आप घर जाकर करना और सबसे बड़ी बात कि आप इस रिश्ते को जरा टैक्टफुल्ली हैंडल करो...।'

पति से टकरा कर घर में आप कुछ हासिल नहीं कर सकतीं...उन्हें या तो प्यार से बस में करें या मूर्ख बनाएँ...आपको रास्ता चुनना है?'

स्मिता के भीतर से कोई और चतुर स्त्री है जो समझा रही है।

उसने शिवांगी की हथेली थाम ली। गरम-गरम आँसू उस पर टपकते रहे। आँसू नहीं, घुटन के कतरे थे, जो टूट-टूट कर गिर रहे थे। बूँदों की गरमाई से दर्द की तीव्रता का पता चलता है कई बार। स्मिता ने कितनी ही स्त्रियों के आस सँभाले हैं अपनी हथेलियों पर। उसकी ज़्यादातर क्लाइंट स्त्रियाँ ही हैं। अकेली आती हैं और घरेलू समस्याओं के लिए उपाय पूछ कर जाती हैं। उसके पास आने वाली स्त्रियों में ज़्यादातर प्रौढ़ होती हैं, पैंतीस पार जिनकी सिर से शादी का हैंगओवर खत्म होने लगता है और रिश्तों में टकराव शुरू। सबके सब चाहती हैं या तो पति उनके वश में हो जाए या उनकी हर बात माने। कुछ पति के विवाहेतर संबंधों को लेकर तबाह रहती हैं कि कैसे वापस उन्हें अपनी तरफ मोड़ लें। बेवफ़ा पतियों को अपनी तरफ मोड़ने की इच्छुक स्त्रियों की अच्छी खासी तादाद होती है। यह स्त्री तो सबसे अलग दिख रही है और उम्र भी ज़्यादा नहीं दिख रही है। वह उसे बोलने देना चाहती है ताकि मवाद फूट कर बह निकले।

यह भी एक किस्म की थेरेपी है, जिससे खुद स्मिता को बड़ी राहत मिलती है। पर क्या स्मिता कहीं और रोने जाती है..... नहीं..उसकी देह क्षण भर को तनी।

शिवांगी की समस्या कुछ पल के लिए फिर ओझल हुई और अपनी ज़िंदगी फ्रेम दर फ्रेम घूमने लगी। नहीं..वह रोने-धोने में यकीन नहीं करती। टैरो विधा जानते हुए भी उसकी ज़िंदगी में क्या हुआ। खुद अपने लिए कुछ उपाय कर पाई क्या...

'स्मिता जी...आप कहाँ खो गईं...?'

शिवांगी चुप हो चुकी थी। वह हैरान सी स्मिता के चेहरे पर तनाव के रेखाओं को बनते मिटते देख रही थी। नसें फूल उठी थीं। लगभग तमतमा उठा था पूरे चेहरा।

'हाँ...आं...ओह...सौरी. आयम सो सौरी...कहीं खो गई थी...नथिंग टू वरी..यूँ हीं..कुछ खयाल आ गया..एक गाना है न...हुई शाम उनका खयाल आ गया..।'

'वही ज़िंदगी का सवाल आ गया...' शिवांगी ने दूसरी लाइन पूरी की और दोनों हँसे..फीकी और बदरंग हँसी।

दोनों में से कोई न सवाल पूछने लायक बचा न जवाब देने लायक। अजीब मोड़ पर वह पल ठिठक-सा गया। स्मिता उठी, फिर से अगरबत्ती जलाई। जासमीन की खूशबू फिर से फिज़ां में तैरने लगी। स्मिता संजीदा दिख रही थी और शिवांगी सामान्य हो रही थी धीरे-धीरे।

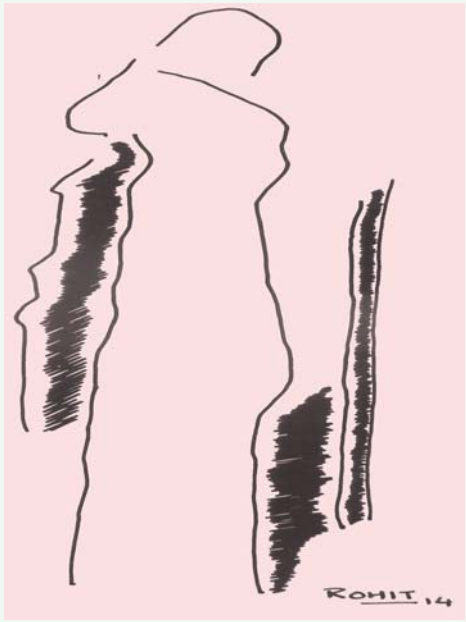

'आप कोई फैसला क्यों नहीं ले लेती...आपके पास वक्त है, उम्र है, पढ़ी-लिखीं हैं, क्यों सहती हैं ये सब..आपके सवालों के जवाब हमारी विधा में नहीं, आपके पास ही है। सब कुछ आपके हाथ में। फैसला आपको लेना है, या तो इस पार या उस पार।'

वह चुप रही।

'आप उन्हें लेकर किसी मैरिज काउंसलर के पास जाइए...शायद सब लाइन पर आ जाए। हो सकता है उन्हें आप पर शक हो, गलतफहमी हो, दूर हो जाएगी।'

आप दोनों में बात होती है न ?

'नहीं, संवादहीनता की स्थिति है...जब भी बात होती है, लगता है काट खाएगा..मैंने फिर बातचीत कम कर दी है..गाली उसकी ज़बान पर रहती है..तोड़-फोड़ रोज़ की बात..कितनी बार मेरा मोबाइल तोड़ चुका है..कई बार मोबाइल छुपा कर साथ ले जाता है..पता नहीं क्या चेक करता है..? दो-दो दिन तक मेरा मोबाइल लिये फिरता है..उनकी वजह से मैंने फ़ेसबुक अकाउंट तक डी-एक्टिवेट कर दिया है। अब ले दे के दुनिया से जुड़ने का एक ही माध्यम बचा है मोबाइल...वह भी हमेशा संकट में रहता है..।'

'घर आता है तो काँप उठती हूँ..डर से मोबाइल छूती नहीं..पता नहीं कब रिएक्शन हो और उसे तोड़ दे..।'

'मारपीट भी करते हैं क्या..?'

'नहीं, मुझ पर कभी हाथ नहीं उठाया, पर चीज़ों को तोड़ते समय चेहरे पर जो भाव रहता है वह मैं समझती हूँ..हर चोट मुझ पर पड़ती है, वह मेरे लिए होती है।'

'आपकी सेक्स लाइफ कैसी हैं ?'

सीधे पूछे गए इस प्रश्न से वह थोड़ी सकपकाई। जवाब दे या न दे, कुछ पल ठिठकी। स्मिता ने टोका- 'कोई जल्दी नहीं, सोच कर जवाब दें, ज़रूरी है, तभी किसी नतीजे तक हम पहुँच सकते हैं..।'

'बिल्कुल न के बराबर..वह हाथ नहीं लगाता। मैं छूती हूँ तो कहता है, मूड नहीं है, थका हुआ हूँ..सो जाओ..फालतू तंग मत करो.. रात को इतनी गहरी नींद सोता है कि पता ही नहीं चलता बगल में उसकी पत्नी किस दुःख में कराह रही है। सारी सारी रात नींद नहीं आती..हज़ारों सुइयाँ चुभती हैं रात भर..प्रेम का फाहा ही रख देता तो दैहिक ताप से मुक्ति मिल जाती। देह से ज़्यादा ज़रूरी मन का जुड़ना है, वही नहीं जुड़ पाया कभी..साथ-साथ सोते हुए मीलों की दूरी दिखाई देती

है। चाहूँ भी तो मेरे हाथ वहाँ तक नहीं पहुँच सकते।

उसके घरवाले मुझसे दस सवाल पूछते हैं..बच्चा क्यों नहीं करते ? क्या बताऊँ कि तेरा बेटा...तेरे बेटे के पास टाइम नहीं..बहुत बिजी है..पूरी साफ्टवेयर कंपनी उसी के दम पर चलती है...नींद में भी वही बड़बड़ाता है...नींद में कभी मुझे छूता है जैसे लैपटाप का की-बोर्ड छू रहा हो।''

शिवांगी सब कुछ उगल रही थी, दाँत किटकिटाते हुए। गाल पर इंद्रधनुषी रेखाओ की परछाइयाँ उभर कर लोप हो गई थीं।

'अच्छा.. !! फिर कैसे चलता है घर ? दो ही लोग हैं आप लोग...कैसे रहते हैं उस घर में ? आपको बताऊँ ? मैं भी गुज़री हूँ इस सिचुएशन से..मैंने लाँघ दी चहारदीवारी..पिता की पसंद को ठुकरा आई, दूसरा आप्शन मैंने खुद चुना, वहाँ भी फेल हुई, उसे भी छोड़ आई, अब मैंने थर्ड आप्शन के साथ हूँ...इसे मैंने थाम रखा है मज़बूती से..इसके बाद मुझमें फैसले लेने का दम नहीं..भगवान की दया से अब सब ठीक चल रहा है..टचवुड।' उसने लकड़ी की मेज़ छू ली और राहत की साँस ली।

'आपने तीन शादियाँ की ?' उसकी आँखें फैल गईं

स्मिता मुस्कुराई। सवाल पूछते हुए कितनी मासूम सी यह स्त्री चौंक रही है जैसे इसने कभी किस्से-कहानियों में ना पढ़ा हो इतनी शादियों के बारे में। शायद एलिजाबेथ टेलर का नाम नहीं सुना होगा। अधिकतम शादी का रिकार्ड बनाने वाली स्त्री...।

'ओ गौड...।'

कुछ पल के लिए वह भूल गई कि क्या-क्या बके जा रही थी उस अजनबी स्त्री के सामने। हालाँकि बकने के बाद खुद को कुछ हल्का ज़रूर महसूस कर रही थी। अब हैरान होने की बारी उसकी थी।

बड़े शहरों में कितनी आसानी से औरतें तीन शादियाँ कर डालती हैं...हमारे हाजीपुर में तो कोई लड़की सोच भी नहीं सकती। जब तक कि पति उसे तलाक ना दे दे या वह विधवा ना हो जाए। पुनर्विवाह इन्हीं दो स्थितियों में संभव। कपड़े की तरह पति बदलने का खयाल ही बड़ा डरावना लगा उसे। गुड्डे-गुड़िया का खेल नहीं कि मामूली सी लड़ाई पर दोनों को अलग कर दिया करते थे। बचपन में यह खेल खूब खेला तब कहाँ सोचा था कि ज़िंदगी उसे इस मोड़ पर ले आएगी। यहाँ तो शादी बचाने की चुनौती जान को लगी है। उसे फेल नहीं होना है। बिस्तर पर पड़ी, असहाय, बूढ़ी माँ की आख़िरी ख्वाहिश उसके सपनों में भी दीमक की तरह लग गई है। वह नोंचना चाहती है पर दो बूढ़ी आँखें...गड्डे में फँसी हुई पुतलियाँ फड़फड़ाने लगती हैं...जैसे बुरी खबर सुनते ही शांत हो जाएँगी हमेशा-हमेशा के लिए। उन आँखों के लिए वह अपना शेष जीवन होम कर देगी। क्या कभी गुड़िया की तरह अलग कर पाएगी खुद को।

नहीं....बार-बार शादी नहीं..फिर-फिर पति नहीं...फिर से गृहस्थी नहीं...फिर कोई नया मर्द, नया बिस्तर, नए तरह से फिर खुद को किसी के सामने नंगा करना...क्या वही पहली कोमलता दे पाएगी कभी...वह तो सूख गई है। कहाँ से लाएगी वह द्रव जो रिश्तों को तरल बनाए रखता है। नहीं..अब नहीं। जुआ नहीं खेलना..अगर इसके ठीक होने की कोई संभावना बची है तो उम्मीद बाँध कर बुरा वक्त निकाल देगी। नहीं तो.?

सवालों की सूली पर बार बार अटक जाती है।

मैं कभी अपनी ज़िंदगी को एक्सपेरिमेंटल नहीं बनाऊँगी। मैं इतनी मजबूत हूँ कि अकेली राह चुन सकती हूँ। उन बूढी आँखों को भरोसे में लेकर...उनकी रौशनी में...। मुझे तीन पुरुषों की ज़रूरत नहीं स्मिता...तुम तो अभी भी घर, पति जैसे भ्रामक शब्दों में उलझी हो...तुम बिना पुरुष के रह सकती थी...क्यों तुमने इतने प्रयोग किए...क्या पुरुष के बिना तुम्हारी ज़िंदगी नहीं चलती..., आह...

मुँह से कराह निकली। वह तो उपाय पूछने आई थी, शायद टोना-टोटका से काम बन जाता। पूनम ने तो यही समझाया था कि स्मिता बहुत अच्छी टैरो रीडर है, भविष्य भी बता देगी और उपाय भी। बता तो रही हैं, संकेत भी दे रही हैं, जो उसकी सोच और चाहत के ठीक उल्टा है। वह तो बस इतना चाहती थी कि पता चले, ग्रह दशा कब साथ देंगे और दांपत्य जीवन की दशा दिशा बदलेगी या भी नहीं।

स्मिता ने उसके हाथ से उसका मोबाइल लिया और उसमें से कुछ ऐप डिलीट करने लगी।

'क्या कर रही हैं आप..? मत करना...प्लीज़..'

उसने अपना मोबाइल झपट लिया और उठ खड़ी हुई।

'देखना आपकी आधी समस्या खत्म हो जाएगी। थोड़ा उन पर कंशंट्रेट करिए...जब आपको लेकर यहाँ तक आ सकता है, इतनी देर तक बैठ सकता है तो कुछ भी कर सकता है..वो मर्द क्या जिसे आप जैसी हसीन औरत कंट्रोल न कर सके...अपनी खोल से बाहर निकलो यार..या बी रेडी फौर सेकेंड आप्शन..।'

'मैं आपकी तरह अपना सुख विकल्पों में नहीं तलाशूँगी...मुझे बार-बार मर्द बदलने की ज़रूरत नहीं...मुझे ऐसी सलाह की ज़रूरत भी नहीं। मैं खुद को सहेज सँभाल सकती हूँ। जब मैं आपके पास आई थी तब टूटी हुई, बिखरी हुई ज़रूर थी पर लौटते हुए वैसी नहीं रही। हम सारा सुख एक ही जगह तलाशते रहते हैं, उम्मीद का सारा बोझ एक रिश्ते पर डाल देते हैं...हम उसे अपने हिसाब से ढालना चाहते हैं, नियंत्रित करना और होना चाहते हैं...हम ज़िंदगी को उसकी विराटता में देख ही नहीं पाते..मैं तलाश करूँगी उसकी..।''

'और हाँ..आप जो ऊपर प्रेम और धोखे की बात कर रही थीं...यह परस्पर होता है। दोनों जुड़े हैं, आपस में...धोखा खाने वाले, धोखा देते जाते हैं...प्रेम पाने वाले, प्रेम करते नहीं, प्रेम देने वाले, प्रेम पाते नहीं...। यहाँ डुएट परफार्मेंस नहीं होता..ज़िंदगी बेसुरे संगीत में बदल कर रह जाती है। अब विवाह बचाने या गंवाने में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं रही...मैं इस गुलाम मंडी में अपने लिए कोई जगह नहीं देखती हूँ। जिन्हें आप्शन की तलाश हो, वे करें। उनकी हिम्मत की दाद देती हूँ...वे नहीं जानती कि चाहे जितनी बार आप्शन चुनो, विवाह उन्हें 'वस्तु' में बदल देता है...वस्तु में...इससे ज़्यादा कोई हैसियत नहीं, एक बार वस्तु बन कर जी रही हूँ...मुक्ति का मार्ग खुद ही तलाशना होगा। मैं खुद को आगे इस आतंक से बचाए रखने की हिमायती हूँ...शुक्रिया..आपका..।'

स्मिता हतप्रभ। ये अचानक रोती बिसुरती हुई स्त्री को क्या हो गया है। यह तो कोई और है। चेहरा दिपदिपा रहा है। तमतमाए हुए गालो पर ललछौंही आभा। ऐसी ललछौंही आभा चेहरे पर तब उभरती है, जब हम भीतर-भीतर कुछ तय कर लेते हैं। दृढ़ निश्चयात्मक आभा..निश्छल, निष्कलुष और निष्पाप।

स्मिता ने प्रवेश द्वार पर टँकी तस्वीर को देखा और उसका चेहरा फक्क पड़ गया। उसे लगा मानो अब तक ध्यानस्थ साध्वी की आँखें खुल गई हैं...

शिवांगी ने उसके फक्क पड़े चेहरे को गहरी निगाह से देखा। जैसे एक पागल दूसरे पागल को गहरी निगाह से देखता है। शिवांगी ने कंधे झटके, अपना मोबाइल ऑन किया और फिर से व्हाट्सअप और फेसबुक मैसेंजर डाउनलोड करने लगी, जिसे स्मिता ने डिलीट कर दिया था। ऐसा करते हुए उसके चेहरे पर अदम्य शांति थी, जो दूसरों की जीवन-कुंडली पढ़ने वाली स्मिता के लिए अबूझ थी।

❒

काँच की दीवार

नीलम मलकानिया

नीलम मलकानिया रेडियो जापान की अंतरराष्ट्रीय सेवा में कार्यरत हैं। पंजाब में जन्म व आरम्भिक पढ़ाई लेकिन मूल रूप से उत्तर प्रदेश राज्य से हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य व रंगमंच में स्नात्कोत्तर तथा इग्नू से रेडियो लेखन की पढ़ाई की। हिन्दी, पंजाबी, उर्दू, मराठी और अंग्रेज़ी में voice over तथा dubbing का अनुभव। पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो और टेलिविज़न के लिए स्वतन्त्र लेखन। FM Gold में presenter रहने के बाद 2007 में ऑल इण्डिया रेडियो के विदेश प्रसारण प्रभाग के लिए चयन हुआ और वर्तमान समय में रेडियो जापान की अंतरराष्ट्रीय प्रसारण सेवा में कार्यरत। समसामयिक विषयों पर लेख, कविताएँ व कहानियाँ लिखने में रुचि है।
ईमेलः siddhimalkania@gmail.com

गाड़ी से उतरते ही जिंगल ने अपना चश्मा और स्कार्फ सही किया और जल्दी से उस अनजान इलाक़े के पुराने रेस्त्रां में दाख़िल हुई। भीतर के बासी से माहौल पर एक नज़र डाली ही थी कि ठीक पीछे बाएँ कान के पास एक जानी-पहचानी आवाज़ हवा का सिरा पकड़े उसके कानों से होती हुई दिल के उसी काई लगे कोने में उतर गई जहाँ कुछ साल पहले उसे दफ़्न किया था।.....उफ़्फ़ आवाज़ें कभी नहीं मरतीं..।

'मिट्ठू.. अ..मालती...सॉरी....जिंगल! ऊपर काफ़ी स्पेस है और भीड़ भी नहीं है..आओ।'

गहरी साँस छोड़कर सीने का बोझ हल्का करते हुए वो सुहास को देखे बिना घूमी और उसकी परछाईं सी पहली मज़िल पर चली गई। ऊपर काले शीशे वाली बड़ी सी खिड़की के पास सलीक़े से दो कुर्सियाँ लगी थीं और मेज़ पर रखे फूल भी ताज़ा थे। जिंगल समझ गई कि सुहास ने रेस्तराँ मालिक के एकाधिकार में सेंधमारी की थी और जिंगल के लिए थोड़ा ख़ास इंतज़ाम करवाया था। सुहास ने अब उसकी उपस्थिति में जगह का सरसरी तौर पर नए सिरे से मुआयना किया। ऊपर कुल चार टेबल ही थीं, जिनमें से दो पर ही लोग बैठे थे और अदरक की महक वाली देसी चाय सुड़क रहे थे.. वो दोनों बैठे ही थे कि पास की टेबल पर फुसफुसाहट कुछ तेज़ हुई और उनकी ओर कुछ शब्द उछाले गए।

'अरे भाई! या तो वोई मैडुम है ना, टी वी वाली, 'मन की आवाज' शो वाली, जिंगल परधान?'

'हाँ भाई..राम-राम मैडुम जी! बड़े भाग म्हारे, जो तम म्हारे गाँव पधारे।'

जिंगल ने उन्हें देखा और होंठों के सिरे को एक ओर खींचकर मुँह दूसरी तरफ घुमा लिया और फिर से अपनी

अलग दुनिया में खो गई। सुहास इस मुस्कान का मतलब जानता था.. इस नहीं बल्कि वो तो जिंगल की हर मुस्कान का मतलब जानता था.. उसने अनमने मन से पूछा..

'कहीं ओर चलें क्या?'

'नहीं ज़्यादा समय नहीं है, कैमरा युनिट बस कुछ सीन लेने के लिए रुकी है पास में...।'

'हम्म.. कब जा रही हो?'

'अगले महीने..28 को'

'..थैक्स'

'किस लिए'

'मिलने के लिए..पहले तो यकीं हीं नहीं हुआ था कि तुमने ख़ुद फ़ोन किया... कितने सालों के लिए जा रही हो'?

'दो साल..'

बातचीत उथली ही थी कि किसी ने बिन मगाँए ही चाय और समोसे भेज दिए थे। सुहास को थोड़ी उलझन हुई और ग़ुस्सा भी आया पर जिंगल को इन सब की आदत हो चुकी थी।..उनके बीच एक लम्बी चुप्पी फिर से बहने लगी।

'कब तक चुप रहोगी...।'

'.....'

'जब पहली बार तुम्हें रश्मि की पार्टी में देखा था, तब भी तुम इसी तरह बैठी हुई थीं, एक ख़ामोश मुस्कान ओढ़े। शक हुआ था मुझे कि जो लड़की कहानियाँ रचती है वो इतनी ख़ामोश कैसे हो सकती है! फिर लगा था कि शायद सबकी अटेन्शन पाने के लिए चुप है.. ..पर तुम्हारी आँखों में कितना कुछ था..पढ़ता रहा...। उसी दिन से तुम्हारी ख़ामोशी की पहेलियाँ मुझे बेचैन करने लगीं थी।..तुम वो पहली लड़की थी जिसकी प्रेज़ेन्स एक तिलिस्म सा गढ़ देती थी मेरे चारों तरफ।..शुरुआत में तुम जब भी मिलती थीं तो जानबूझ कर मिसबिहेव ही करतीं और इसी से मेरा विश्वास गाढ़ा होता चला गया कि कहीं कुछ तो घट रहा है। तुम्हारे उस सो कोल्ड लॉ ऑफ़ अट्रैक्शन में मुझे भी यकीं होने लगा था। धीरे-धीरे जाना कि बचपन से ही इस दुनिया से नाराज़ है ये लड़की....

'.....'

'अब कुछ तो रिएक्शन दो ना यार! प्लीज़।'

'हम्म. क्या बोलूँ।'

'हाहाहाहा....तुम्हारे फ़ेवरेट शब्द..क्या बोलूँ'। कुछ पता भी है! कितना परेशान किया है तुम्हारे इन शब्दों ने... जब कभी किसी बात पर बहस होती थी तब कह

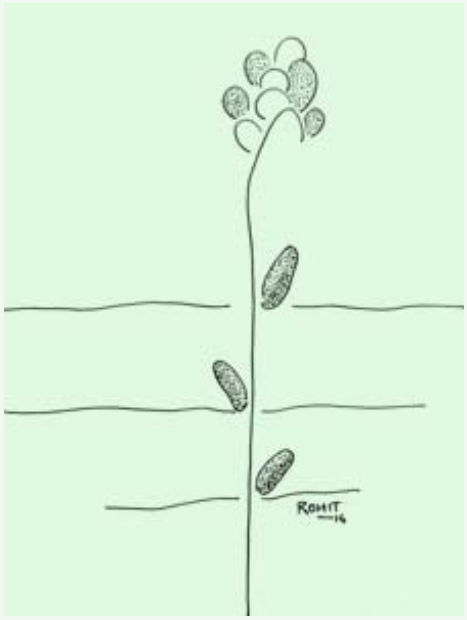

दिया आँखें दूसरी तरफ घुमा कर 'क्या बोलूँ', जब मेरी किसी बात पर ग़ुस्सा आता था तब नाक फुला कर कह दिया 'क्या बोलूँ', ज़रा तुम्हें प्यार से देखा नहीं कि नज़रे झुका कर कहना 'क्या बोलूँ', आई लव यू के जवाब में भी धीरे से फिर वही 'क्या बोलूँ'..उसके बाद तो मुझे तुम्हारे इस 'क्या बोलूँ' से ही प्यार हो गया था..'

सुहास बीती घड़ियाँ फिर से जी रहा था और लगातार बोलता ही जा रहा था।

'आई हैव बिन सो लकी कि मेरे पास आकर तुम्हारी फ़ीलिंग्स शब्दों के खोल से बाहर निकलती थी, उसे आवाज़ मिलती थी.. कितना बोलती रहती थीं ना तुम! और मैं बस चुपचाप सुनता रहता था।'

'और फिर चुप करवा देते थे बोर होकर'

'सच कहूँ, बोर नहीं होता था कभी। पर जब तुम पर बहुत प्यार आने लगता था ना, तो ख़ुद को कंट्रोल करने के बहाने तलाशने लगता था....सुनो, क्या अब भी तुम रातों में सहमकर जाग जाती हो?''

'.....'

'कितने साल हो गए तुम्हारी हँसी की खनक सुने.बस टी.वी. पर देखता रहता हूँ तुम्हें। काँच की दीवार होती है हमारे बीच में।.....सच कहूँ तो स्क्रीन पर बस मेकअप, कैमरे और माइक का एक समीकरण भर लगती हो, तुम्हारा तुम कहीं खो सा गया है मिट्ठू'।

इससे पहले कि सुहास का दिया नाम 'मिट्ठू' जिंगल के आस-पास की हवा में मिठास घोलता, उसने तपाक से रूखे और चुभते अंदाज़ में कहा..

'शादी कर लो तुम..'

सुहास को जैसे एक ठंडी लहर ने कचोट दिया...'तीन साल पहले यही कहकर तुम मुझे कंगाल करके चली गई थीं.. मिलते ही फिर वही...वैसे..दुबली हो गई हो..तुम.जर्मनी में कैसे रहोगी अकेली?....तुम्हारी तैयारी हो गई सब?....अच्छा, आज भी भूख लगते ही ग़ुस्सा आने लगता है क्या तुम्हें?'

'सुहास तुम पहले सोच लो कि बोलना क्या है और पूछना क्या है...बार-बार पुरानी बातें दोहरा रहे हो, बेसिर पैर के इतने सारे सवाल।'

'सच कहूँ तो कुछ भी नहीं पूछना मुझे..तुम्हें सामने देखकर..दिमाग़ अपनी रफ़्तार से दौड़ रहा है और दिल अपनी रफ़्तार से.. कुछ भी समझ नहीं आ रहा है.. बस नज़र भर देखना है तुम्हें।'

नज़र भर देखना है तुम्हें...इस एक लाइन ने दोनों को फिर से उस अँधेरी और काली रात में पहुँचा दिया था, जिसने उन दोनों के रिश्ते के जुगनू छिपा दिए थे।..

चार साल पहले दोनों मिले थे। सुहास बहुत ही संयम और सहजता से मालती के उस अंदरूनी सर्कल में आ गया था, जहाँ वो अपनी रुह से बात करती थी..गिने-चुने ही दोस्त थे उसके..धीरे-धीरे अपनी संवेदनशीलता से सुहास ने एक ख़ास जगह बना ली थी मालती की दुनिया में।...उस शाम उसे एक ज़रूरी मीटिंग में जाना था। उसके दूसरे कहानी संग्रह को एक पुरस्कार के लिए चुना गया था। उभरती कथाकार...सबसे कम उम्र की विजेता। बहुत ख़ुश थी मालती। मीटिंग उसके घर से काफ़ी दूर थी।.. रात गहराती जा रही थी और उसकी झालर वाली जालीदार ब्लैक ड्रेस ने उसे और भी रंगत दे दी थी। निखरा सा कालापन था माहौल में।... सुहास पूरी तरह मुस्तैद और मालती का रक्षक बना हुआ था। पर वो ख़ुद ख़ुशी से झूमती अपने ही आप से बातें किए जा रही थी।...अपनी ही धुन में उड़ती और सपने बुनती मालती को जब सुहास ने घर पहुँचाया तो बाहर तेज़ आँधी के साथ बारिश शुरु हुई और लाइट गुल हो गई थी। ओह! दिल्ली अचानक एक गाँव-सी हो गई थी। लाइट जाते ही और उस पर मैट्रो का कंस्ट्रक्शन.... रास्ते बदले हुए थे और गड्ढे भरे भी.. मालती ने सुहास को ये कह कर रोक लिया था कि 1 तो बज ही गया है, तो सुबह ही जाना। आनंदविहार से कहाँ नांगलोई तक जाओगे भीगते हुए। आंटी थोड़ी नाराज़ तो होंगी पर क्या कर सकते हैं..पी.जी. के नियमों पर मजबूरियों की सीनाज़ोरी कभी-कभार तो चल ही सकती है ना।

एक कॉफ़ी और ख़ूब बातें...मालती की अठखेलियाँ.. गुनगुनाना और अपनी किताब को लेकर

प्लानिंग करना...किसी ज़रूरी लेख का फ़ाइनल ड्राफ़्ट भी तैयार कर रही थी साथ-साथ। सीली हवा में लिपटे कमरे में दाख़िल होते फुहारों के छींटे, खुली खिड़की, बैटरी की धीमी लौ में होठों के बीच पेन दबाए कुछ सोचती मालती और उसके लिए सुहास के दिल में बेपनाह धड़कता कुछ... दिमाग़ पर दिल हावी होने लगा..मन के अथाह सागर से कुछ निकलकर शरीर के भूगोल मे क़ैद होने लगा था, सुहास के बदन की तरंगे गाढ़ी होने लगीं और साँसों में एक पूरी रात भरकर सुहास ने मालती को खींचकर सीने से लगाते हुए कहा था 'पास आओ, नज़र भर देखना है तुम्हें'। जैसे ही सुरुर भरा एक मुलायम अहसास होश पर हावी हुआ..तड़ाक..

मालती का ज़ोरदार झापड़, फड़कते हुए होंठ और गुस्से में काँपता शरीर सुहास की समझ में नहीं आया.. ये क्या हुआ अचानक?.. क्या उसने जल्दबाज़ी की?..नहीं तो?.. क्या उनके बीच ये स्वाभाविक नहीं?.. तो फिर क्या वजह है..?

मालती उसके लिए पहेली तो थी ही पर अब रहस्य भी बन गई थी..उस रात के बाद कितनी मनुहार के बाद तैयार हुई थी उससे मिलने के लिए और वो भी पूरे 15 दिन बाद...

'मेरी ग़लती क्या है मिट्ठू, क्यों ऐसे रिएक्ट कर रही हो, प्लीज़ कुछ तो बताओ, कुछ तो बोलो, ऐसे तो मैं अपने ही सवालों में उलझ कर पागल हो जाऊँगा।....डोंट डू दिस विद मी, प्लीज़।'

बहुत मिन्नतों के बाद नुकीली यादों की उस बंद कोठरी के किवाड़ मालती ने पहली बार खोले थे किसी के लिए.... सात साल की उम्र में सड़क दुर्घटना में माँ-बाप गवाँ देने वाली बच्ची को उसके चाचा हिसार से अपने साथ पानीपत के एक गाँवनुमा क़स्बे में ले आए और चाची की झोली में डाल दिया था। वो किसी तरह पलने लगी और जंगली बेल-सी बढ़ने भी लगी थी। चाची ने कोई दुश्मनी नहीं निभाई तो ख़ास दोस्ती भी नहीं रखी।

दिन अपनी रफ़्तार से गुज़रने लगे... मालती रातों को नींद से जागकर रोने लगती। चाचा का अनुभव कुछ इस रूप में काम आया कि अनाथ को माँ-बाप की याद सताती होगी शायद। मालती एक गोले में खोई रहती, बस एक ख़ाली गोला, जिसके बाहर-भीतर कुछ भी नहीं था। वो गोला कहीं भी उसकी आँखों के सामने आ जाता, स्कूल में, घर में, खाना खाते समय, सोते समय.. और फिर आँसू अपना काम करते रहते और वो अपना। चाची का सामान्य ज्ञान कुछ झाड़ फूँक के रूप में सामने आया था और रिश्तेदारों का मनोरोगी के ठप्पे के साथ।

पीड़ा के साल बढ़ते गए और मालती का संघर्ष भी। छटपटाहट ने हाथ में कुछ रंग थमा दिए थे। एक दिन एक चित्र बनाया और उस पर ख़ूब आँसू बरसाए। फिर चित्र किताबों में से कहीं ग़ायब हो गया था। अचानक चाची के चाँटे..'बेशर्म! बारह बरस की हुई नहीं और ये सब। कहाँ देखा ये सब! बोल...क्या बनाया है ये..बोल...यही करना है तो निकल जा घर से। मेरी भी बेटियाँ है। उन्हें बिगाड़ना नहीं है मुझे... अरे, देखो जी क्या गुल खिला रही है तुम्हारी ये सीधी और भोली लड़की.. ब्याहता औरत के कान काटे ये तो.. छी.छी.छी..कोई देखेगा तो क्या कहेगा'?

चाचा जब कभी मालती के सिर पर हाथ रखते थे तो उसकी आँखों की दहशत को देखकर हैरान रह जाते थे। उस दिन कुछ उबला था मालती के मन में जो काग़ज़ पर उतर आया था। वो चाचा की सामाजिक समझ थी या ख़ून की पुकार या फिर दो बेटियों का बाप होने की संवेदनशीलता। चाचा ने तुरंत ही बिखरे हुए बहुत से सूत्र जोड़ लिए थे आपस में। चित्र से चिपकी हुई आँसुओं की सूखी बूंदें, मालती का रातों में काँपते हुए जाग जाना, सबसे दूर-दूर रहना और हर समय चेहरे पर एक दहशत लिये फिरना। मुस्कुराना भूल चुकी मालती की दुनिया सिर्फ़ किताबें बन गई थीं। चाचा ने तुरन्त उसकी मोटी सी डायरी भी पढ़ी, जिसमें वो अपने अधकचरे छोटे-छोटे भाव दर्ज करती रहती थीं। इसके बाद तो चाचा की बची हुई शंका भी उड़नछू हो गई।

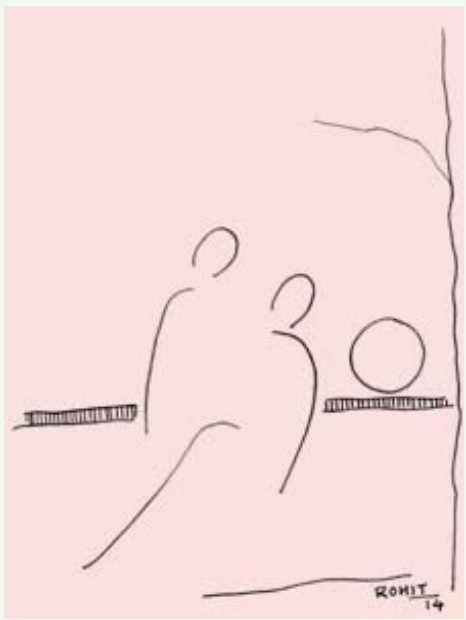

बारह साल की कच्ची पैंसिल ने उस चित्र में औरत-मर्द के रिश्ते को काग़ज़ पर उतारा था..कैसे और क्यों?

पता चला कि समय ने चुपके से मालती के साथ एक और मज़ाक कर दिया था। उस अनाथ बच्ची को चाची का जवान भाई गुड़िया देकर शरीर का विज्ञान समझाना शुरू कर चुका था, सपने में भी उसके रेंगते हाथ मालती को दबोच लेते थे। वो मालती को न जाने कब से समझा रहा था कि 'चाचा, मामा, अंकल, मौसा...सब आदमी ही हैं और सब यही करते हैं, बस बताते नहीं, अगर तुमने किसी से कुछ कहा तो जीजी घर से निकाल देंगी। सड़क पर रहना पड़ेगा और हर कोई यही करेगा। ये यानी गंदी बात, जिसे वो गंदी बात कहती है असल में वो अच्छी बात होती है और अच्छे बच्चे चुपचाप अंकल की बात मानते हैं, किसी से कुछ नहीं कहते।'

चाचा ने अपनी सरकारी नौकरी और उस छोटे से क़स्बे में अपनी बड़ी सी इज़्ज़त की ख़ातिर पुलिस केस नहीं बनने दिया था। अपना घर भी बचाना था तो चाची के सामने कुछ नहीं बोला और चाची उसे कुलटा, बदचलन और मुँहजली न जाने क्या-क्या बकती रहतीं। उस दिन के बाद तो बस किसी न्यूज़ चैनल ने ब्रेकिंग न्यूज़ कहकर मालती की कहानी लूप में नहीं चलाई थी, लेकिन मोहल्ले की औरतें कम्यूनिटी रेडियो की तरह हर किसी को बता रही थीं।

'अरी जिज्जी! या छोरी किसी के साथ... हाय बेसरम'

'अरी सुन, किसी आदमी का इस छोरी के साथ.हे हे हे।'

'अरी पता ना किस-किससे हिली है..लो जी और सुणो..'

चाची का भाई तो रफ़ूचक्कर हो चुका था पर मालती अब मनोरंजन का साधन थी। उसकी पीड़ा उसके मन से तो न निकली पर शायद चाची के माध्यम से उसकी एकतरफ़ा कहानी जैसे हर गली-नुक्कड़ पर पहुँच गई थी। घर से स्कूल आते-जाते उसके शरीर का आँखों से ही मैडिकल जाँच कर लेते लोग। बहुत से मनचले अपनी छाती तक आती मालती से पूछने लगे थे...

''क्या-क्या जाणे है री तू?''

''अरी सुण! बहुत मन करे है क्या तेरा?''

मालती सोचती रहती ...इन सब बातों का क्या मतलब है? क्यों मुझे लोग ऐसे देखते हैं?चाचा ने बिन बोले ही उसके सवालों को समझा और हर परेशानी का

एक हल निकालते हुए उसे रिश्ते की एक मौसी के घर भेज दिया था और उसकी पढ़ाई का सारा ख़र्च उठाने का भी वादा किया था। ये भी समझाया था कि जो हुआ उसे भूल जाए। आने वाले कल पर उस गुज़रे कल का बोझ ना पड़ने पाए। यही उसके लिए अच्छा है।

उस मौसी ने मालती को सहेजा। कोमल कच्चे घड़े को फिर से नया आकार दिया, तराशा। जवान विधवा मौसी ने अपने हक़ की लड़ाई ख़ुद लड़ी थी, तो मालती को नई चुनौती के रूप में पूरे दिल से स्वीकार किया और भरपूर प्यार दिया। बारहवीं करने तक स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में विभिन्न मुद्दों पर लेख, कविताएँ और कहानियाँ लिखकर मालती ने जिंगल नाम से एक छोटा सा शब्द संसार रच डाला था। बिन माँ-बाप की बच्ची ने दुनिया का भयंकर रूप बचपन में ही देख लिया था तो उसके कसैले स्वाद ने एकांतप्रिय बना दिया था। पर कुछ बातें रात भर उसकी नींदों को कड़वा कर जाती थीं। कुछ शब्द गूँजते रहते थे--'सब ऐसा ही करते हैं'.. रेंगते हाथ बड़ी मालती को भी नहीं छोड़ते थे और सपनों में आकर उसे दबोच लेते थे। बारहवीं के बाद हरियाणा से दिल्ली आकर ग्रेजुएशन करने का मौक़ा मिला तो मौसी ने तुरन्त हामी भर दी और कहा कि अपने आकाश के कोने थोड़े से खोल दो। बड़ा करो अपना आसमान, जाओ पंख पसारो...।

सुहास ने मालती के मुँह से जब उसका बीता कल सुना था तो एक पल को ऐसा लगा था जैसे किसी ने उसके ही शरीर को भरे बाज़ार उघाड़ दिया हो। पहली बार उसकी मिट्ठू की पीड़ा, उसकी तुनकमिजाज़ी और उसकी ख़ामोशी पनीली हो सुहास के सामने बही थी। अब उसे मिट्ठू की बहुत सी आदतों का मर्म समझ में आया, क्यों वो किसी से हाथ मिलाना पसंद नहीं करती थी, क्यों उसे भीड़ में जाना पसंद नहीं था, क्यों वो शादी के नाम से ही भागती थी, क्यों उसके मन में किसी की छुअन की चाह नहीं थी, क्यों उसने उन दोनों के प्यार को एक रुहानी अंदाज़ दिया हुआ था बस... यही उनकी आख़िरी मुलाक़ात थी। उसके बाद सुहास की बहुत कोशिशों के बाद भी मालती ने मिलना नहीं चाहा और सुहास को लगा कि ज़्यादा ज़बरदस्ती से बात और बिगड़ जाएगी। उनके बीच गुज़रे हुए दिन अपना अधिकार मज़बूत करते रहे और आज तीन साल के बाद दोनों आमने-सामने थे।

मोबाइल की घंटी ने दोनों को पिछली मुलाक़ात से बाहर निकाल फिर उसी रेस्तराँ में ला पटका।

'मुझे जाना है। मेरी यूनिट का काम ख़त्म हो गया है शायद।'

'मैं दिल्ली आ सकता हूँ तुमसे मिलने?'

'नई-नई पोस्टिंग है यहाँ तुम्हारी। काम पर ध्यान दो। ऑफ़िसर ही नदारद रहेगा तो स्टाफ़ क्या काम करेगा। जाने से पहले एक बार साफ़-साफ़ कहना चाहती थी कि मुझ पर अपना टाइम वेस्ट मत करो, मेरा इंतज़ार करना बंद करो और आगे बढ़ो।'

पर सुहास के लिए आगे बढ़ने का मतलब अकेले बढ़ना नहीं था शायद।

'तुम्हारा शो इतना हिट है मालती, कितने लोगों के मन की बात जानती हो तुम...पर..तुम ख़ुद कब अपनी घुटन से बाहर निकलोगी।'

'मुझे कोई बात नहीं करनी इस बारे में..।'

'पर मुझे तो करनी है, .प्लीज़ यार, तुम दोहरा जीवन जी रही हो। अपने आस-पास यूँ दीवारें खड़ी मत करो, भूल जाओ न वो सब। लोग तुम्हें बहुत मज़बूत लड़की मानते हैं और तुम हो भी। कितने ही लोगों की काली करतूत तुम सबके सामने लाई हो और उन्हें सज़ा दिलवाई। अब यूनीसेफ ने चुना है तुम्हें जर्मनी में अपने नए प्रोजेक्ट के लिए।'

'जाना है मुझे..' मालती के शब्द फिर से सख्त हो गए।

'मैं अपनी बातों से तुम्हें दुःख नहीं पहुँचाना चाहता मालती, पर ये भी सच है कि मैं तुम्हें खोना भी नहीं चाहता..।' सुहास की आवाज़ भीग गई अचानक।

कार की स्पीड के साथ मालती सुहास से दूर जा रही थी। उनके बीच का रास्ता लंबा होता जा रहा था और कार का आकार छोटा। मालती के सामने फिर से एक गोला आ गया था। सुहास समझ नहीं पा रहा था कि जिस बच्ची ने बचपन जिया ही नहीं, उसे वो भविष्य के सुनहरे सपने कैसे दिखाए! क्या मालती कमज़ोर है या दोग़ली या फिर असंतुलित? नहीं! शायद उसके लिए कोई शब्द नहीं है सुहास के पास, क्योंकि उसकी पीड़ा और परिस्थितियाँ सुहास ने नहीं जी हैं।

गाड़ी अपनी रफ़्तार पकड़ रही थी पर समय ठहर सा गया था और उसी एक बड़े से गोले में समाता जा रहा था, जिसका ओर-छोर ना तो मालती के पास था और ना ही सुहास के पास। वो तड़पकर रह गया। मालती कितने लोगों की लड़ाई लड़ती है, कोई क्यों नहीं सोचता कि इन सबमें उसे क्या मिलता है! क्यों करती रहती है इतनी भाग-दौड़....मन की आवाज़ शो की हर स्टोरी में किसी का दर्द उजागर करना और दोषी को सामने लाना, यही करती है न वो।...पर..पर. उसके दोषी को तो चुपचाप बचा लिया गया था, कोई नहीं लड़ा था उसकी तरफ़ से और शायद यही है वो नासूर, जो उसे चैन से सोने नहीं देता। किसी की करतूत को मालती ने पता नहीं किस-किस रूप में भोगा है। मज़ाक़ वो बनी, उँगलियाँ उस पर उठाई गईं, दवाइयों का सहारा उसे लेना पड़ा, कोई भी शिक़ायत करने से पहले दूसरे के अहसानों के बारे में सोचना पड़ा और वो आदमी जिसने उसके बचपन पर डाका डाला, वो तो कहीं नीतिकथाएँ सुना रहा होगा दूसरों को। भूल जाओ वो सब, कह देने से शायद वो दर्द और भी नया हो जाता है मालती के लिए और उसका ग़ुस्सा अंदर ही अंदर उसे खाने लगता है। नहीं, मालती का मन कुछ भी भूलने को तैयार नहीं है, पर इस तरह तो वो ख़ुद को सज़ा दे रही है।

सुहास के मन में अचानक कुछ कौंधा...सज़ा?....हाँ सज़ा..यही एक रास्ता है शायद... कुछ दर्द ऐसे होते हैं जो कभी पुराने नहीं होते तो फिर कोई अपराध कैसे पुराना हो सकता है? सुहास ने ख़ूब सोचा कि चाचा के अहसानों का बदला मालती के मजबूर बचपन ने तो चुकाया है पर अब सुहास का भविष्य नहीं चुकाएगा। ये सिर्फ़ उस आदमी से लड़ाई नहीं है बल्कि उस सोच के प्रति भी लड़ाई है; जहाँ एक ही दिलासा है कि भूल जाओ सब। उस आदमी को पर्दे से बाहर तो लाना ही होगा, जिसने मालती को इतनी जटिल बना दिया है कि सब कुछ होते हुए भी वो अपनी दुनिया में किसी पुरुष की उपस्थिति नहीं चाहती।

सुहास ने तय किया कि मालती अपने साथ जर्मनी तक कोई बोझ लेकर नहीं जाएगी। अगले महीने 'मन की आवाज़' शो का आख़िरी एपिसोड है। इस अंतिम एपिसोड में जिंगल की अपनी कहानी होगी और वो सब लोग उसके साथ होंगे; जिनकी लड़ाई जिंगल प्रधान ने लड़ी है। सज़ा और अपराध के आपसी अनुपात से परे ये सबसे पहले उसके बचपन का सम्मान होगा।

सुहास चाहता था कि जिंगल मीठी नींद सोए, एक दम बेख़बर और बिना किसी दहशत के। वो जिंगल का इंतज़ार करता रहा है, हारा नहीं है, आगे भी करेगा। ऑफ़िस पहुँचते ही जिंगल को पाने कोशिश में एक बड़ा फ़ैसला करके सुहास ई-मेल लिखने लगा...जिंगल के चैनल हैड के नाम।

❐

केस नम्बर पाँच सौ सोलह

माधव नागदा

माधव नागदा की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं तथा सौ से अधिक संकलनों में कहानियाँ, लघुकथाएँ व अन्य रचनाएँ प्रकाशित। उसका दर्द, शापमुक्ति, अकाल और खुशबू, परिणति तथा अन्य कहानियाँ (हिंदी कहानी संग्रह), फिर कभी बतलाएँगे (हिंदी डायरी), उजास(राजस्थानी कहानी संग्रह), सोनेरी पांखां वाली तितलियाँ (राजस्थानी डायरी)। आग, अपना-अपना आकाश, पहचान (सम्पादित लघुकथा संग्रह), 'आग' 'शाप मुक्ति' तथा 'अकाल और खुशबू' पुस्तकों का मराठी में अनुवाद प्रकाशित। 'आग' अँग्रेज़ी में भी अनूदित। 'उसका दर्द' राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा सुमनेश जोशी पुरस्कार से पुरस्कृत। कई सम्मानों से सम्मानित माधव नागदा स्वतंत्र लेखक हैं।
स्थाई पताःगां.पो.-लालमादड़ी,वाया-नाथद्वारा,जि.राजसमंद(राज.)-313301
मोब.09829588494
Email:madhav123nagda@gmail.com

मैं इन दिनों मन ही मन एक ताज़ा केस से कुछ परेशान था, बल्कि सच पूछा जाए तो मैं इस केस के चलते अपने एक पुराने केस को लेकर उद्वेलित हो गया था। मुझे बार-बार लगता कि लगभग इसी मानसिकता का एक मरीज़ मेरे पास पहले भी आ चुका है। मगर कौन सा ? मैंने याद करने की भरपूर कोशिश की। दिमाग में एक रील तो घूमी किन्तु किसी नेगेटिव की तरह। पहचानना मुश्किल हो रहा था। मुझे शक हुआ कहीं मेरी स्मरण शक्ति तो धीरे-धीरे दगा नहीं दे रही है? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। यदि ऐसा होता तो मुझे सैकड़ों दवाओं के मुश्किल लेटिन नाम और उनके लक्षण कैसे याद रहते ? हाँ, यह सही है कि याद रखना अलग बात है और समय पर याद आना अलग बात है। इसलिए मैंने अपनी परेशानी समय को सौंप दी और खुद को बोरिक, एलन और हेनीमेन के मटेरिया मेडिका में डुबो दिया।

इस समय संतोष न जाने कितने चक्कर काट गई मुझे कुछ भान नहीं।

''अजी डॉक्टर साहब, यह चौथी बार चाय गर्म करके लाई हूँ, अब तो पी लीजिये।''

उसके पास दो प्याले थे। मैं समझ गया, दूसरा उसी के लिए है। उसे पेट का अल्सर हो चुका था, जो लम्बी चिकित्सा और कठोर परहेज़ के बाद ठीक हुआ था। इसलिए मैंने उसे चाय के लिए मना कर रखा था ताकि उसे दुबारा यंत्रणा से न गुज़रना पड़े। मैंने उसकी तरफ तनिक रोष से देखा।

''ऐसे क्यों देख रहे हो ? अब कुछ नहीं होगा मुझे। मैंने अखबार में पढ़ा है कि चाय से कैंसर जैसे असाध्य रोग भी ठीक हो जाते है।''

मेरे सम्मुख मानो अमावस की रात में बिजली सी चमक उठी हो। पलक झपकते सब कुछ स्पष्ट हो गया। वह मरीज भी प्रायः हर दस मिनिट में यही कहता था, मैंने अखबार में पढ़ा है कि.....।

मैंने झट से गत वर्ष का रजिस्टर खोला और तेज़ी से उँगली फिराने लगा। केस नम्बर पाँच सौ सोलह। नाम देवी प्रसाद। उम्र साठ वर्ष.....। सारी केस हिस्ट्री मेरे सामने साकार हो गई। इस केस से जुड़ी सारी घटनाएँ भी।

एक दिन फ़ोन की घण्टी बजती है और मैं पता नोट करके सीधा देवी प्रसाद के यहाँ जा पहुँचता हूँ। वे पलंग पर बैठे हुए थे। पास ही तीन चार दैनिक तह किए रखे थे। उनके कमरे में ज़्यादा सामान नहीं था। मगर जो भी था सलीके से जमा हुआ था। मुझे देखते ही किसी परिचित की तरह बिना किसी औपचारिकता के बोले-''आओ डॉक्टर, बैठो। मैंने अखबार में पढ़ा है कि तुम्हारी पैथी मानव मन की गहराइयों में पैठकर इलाज करने में सक्षम है। यह कैसे संभव हैं?''

मुझे रोगी की इस सैद्धान्तिक किस्म की जिज्ञासा पर आश्चर्य होता है। हम होम्योपैथी के दर्शन पर कुछ देर बहस करते हैं। मैं कुछ चीज़ों का खुलासा करता हूँ। देवी प्रसाद बताते हैं कि उन्होंने एलोपैथी कभी की छोड़ दी। एक दवा लो, नई बीमारी तैयार। फिर आयुर्वेदिक चिकित्सा आरम्भ की। थोड़े दिन पहले यह आश्चर्यप्रद लेख पढ़ा कि आयुर्वेदिक भस्में, काढ़े, आसव भी रिएक्शन करते हैं। अब होम्योपैथी।

मैं कुछ भ्रम में पड़ गया। समझ में नहीं आया कि देवीप्रसाद ने चिकित्सा करते हुए पैथियाँ बदली हैं या चिकित्सा लेते हुए। फिर भी मैंने असली मुद्दे पर आते हुए पूछा-''आपको तकलीफ़ क्या है?''

''तकलीफ ही तो पता नहीं चल रही है।'' उन्होंने उत्तर दिया। उसी समय पास के कमरे से म्यूज़िकल सिस्टम पर किसी गायक की गलाफाड़ आवाज़ आने लगी, फिर आर्केस्ट्रा से एक के बाद एक उभरती संगीत ध्वनियाँ और बाद में नाचने के

प्रयास में पैरों की धम-धम।

''मेरा सुपुत्र है। कालेज में पढ़ता है। साथ में उसके दोस्त हैं।'' उनके चेहरे की झुर्रियों में कुछ खिंचाव सा आ गया।

''घर में और कई नज़र नहीं आ रहा है ?'' मैंने जिज्ञासावश पूछा। उन्होंने बताया कि एक लड़की है, जो ससुराल रहती है। पिछले वर्ष उसकी शादी करवा दी थी। वह क्या गई सारी चहल-पहल अपने साथ ले गई। पत्नी सर्विस में है। एक ब्यूटी पार्लर को पार्ट टाइम सेवाएँ प्रदान करती है। अपने राम रिटायर्ड। टायर्ड तो थे ही अब रिटायर्ड।

उन्होंने ठहाका लगाया, थका हुआ सा। मुझे उनके भीतर की उलझन तक पहुँचने की राह नज़र आने लगी। कई दवाएँ मेरे मानस पटल पर उभरीं। किन्तु अभी भी काफी धुँधलका था। इस धुँधलके से उन्हें बाहर निकालने के लिए मैंने उनकी जीभ पर चार-पाँच गोलियाँ रखी।

''क्या है ?''

''दवा। चूसिये इसे।'' उनका मंतव्य समझते हुए भी मैनें जान-बूझ कर दवा का नाम टाल दिया।

ठीक सात दिन पश्चात मैं आपसे फिर मिलूँगा। मैंने विदा लेते हुए कहा।

जब मैं दुबारा उनके घर गया तो एकबारगी लगा सब कुछ वही है। वही म्यूज़िक सिस्टम। वही बेसुरी आवाज़। वही ढम-ढम और धम-धम। वही देवी प्रसाद का एकाकीपन।

मैंने कुर्सी पर बैठते हुए मुस्कराकर पूछा ''कैसे हैं ?''

उन्होंने मुझे घूर कर देखा। उनके दोनों हाथ पंलग पर टिके थे। साँसें अपेक्षाकृत तेज़। पेशानी पर बल पड़े हुए। अखबार पंलग पर इधर-उधर बेतरतीब।

''डाक्टर, लगता है अब मरने के दिन आ गये हैं।''

वे बहुत परेशान लग रहे थे। उनकी बेचैन नज़रें बार-बार इखरे-बिखरे अखबारों का मुआयना कर रही थी और मेरी नज़रें उनका। उन्होनें बिस्तर की सलवटें ठीक की। अखबार समेटकर करीने से जमाये। फर्श पर शायद कोई तिनका दिख गया था।

उठकर बाहर फेंका। एक घूँट पानी पीकर वापस बैठे मगर पलंग की बजाये कुर्सी पर। इतने से प्रयास में वे हाँफने लग गए। साँस फूल गई। मैंने तत्काल अपने मन में निश्चय कर एक पर्ची बनाई।

''शायद तुमने आर्सेनिक एलबम लिखा है।''

मैं चौंका और निगाहें उठाकर अपने मरीज़ के चेहरे पर जमा दी। वहाँ हल्की मुस्कान थी। मैंने सचमुच आर्सेनिक ही लिखा था। मैं पूछूँ उसके पहले ही उन्होंने खुलासा किया-''मैने कल-परसों अखबार में पढ़ा था, एक स्थायी स्तम्भ में। मेरे लक्षण आर्सेनिक से मिलते है। एक अन्तहीत बेचैनी और उत्तरोत्तर घेरती जा रही कमज़ोरी।''

मैंने पर्ची उन्हें थमा दी और उनके द्वारा बार-बार-''तुम'' कहा जाना पचा गया। उम्रभेद को देखते हुए इसमें कोई अनुचित बात नहीं थी।

''अरे, एकदम एम शक्ति।'' इस बार उन्होंने आश्चर्य किया।

''क्योंकि दो सौ तो आप ले चुके हैं।'' मैंने अनुमान से कहा। अखबार पढ़कर निश्चय ही उन्होंने पहला प्रयोग कर डाला होगा।

देवी प्रसाद ने मुझ पर प्रशंसापूर्ण दृष्टि डालकर बेटे को आवाज दी-बबलू। तीन आवाज़ों के पश्चात् म्यूज़िक सिस्टम धीमा हो गया, परन्तु देवी प्रसाद का पारा ऊँचा चढ़ गया। चौथी आवाज़ उन्होंने पूरे दम के साथ लगाई और जोड़ा, ''देश के लोग ज़िंदा जल रहे हैं और बाबूजी को नाच-गान से फुरसत नहीं है।'' उनकी नज़रें तह किये हुए एक राष्ट्रीय अखबार के मुख पृष्ठ पर मोटे अक्षरों में छपी हेडलाइन पर टिक गईं

''ओ हो, कौन जल गया है ?'' कहता हुआ बबलू कमरे में प्रकट हुआ। कुछ देर तक देवीप्रसाद उसे शब्द घुट्टी पिलाते रहे। सारे-सारे दिन मौज-शौक और सैर-सपाटे में ही मशगूल मत रहा करो। थोड़ी-बहुत दीन-दुनिया की जानकारी भी रखो। हमारा देश किस कदर रसातल में जा रहा है इसकी फिक्र तुम जैसे नौजवान नहीं करेंगे तो कौन करेगा ? आदि-आदि। इस दौरान बबलू कभी अपने बाईं तो कभी दाईं भुजा निरखता रहा। दो तीन बार कुल्हे मटकाये मानो डिस्को करने को उतावला हो रहा हो। फिर एड़ी के बल चक्करघिन्नी खाते हुए बोला-''डाक्टर कहते हैं फिक्र करने से हेल्थ डाउन होती है, है न अंकल ?'' पिता की ही तरह दुबले-पतले बबलू ने अपने सम्पूर्ण शरीर को निरखते हुए मुझसे मदद चाही। बबलू की अस्थिरता और सींकियापन देखकर मन में अनायास ही एक नाम उभरा-टेरेन्टुला हिस्पेनिका।

अपने उपदेश को यूँ धुएँ में उड़ता देख देवीप्रसाद बुझे स्वर में बोले-''जा ये दवा पास की दुकान से ले आ।''

बबलू ने पर्ची पढ़कर अपनी टीप जड़ी, ''ओ हो, फिर वही शक्कर की गोलियाँ। दुनिया इक्कसीवीं सदी में जा रही है और हमारे बुज़ुर्गवार महात्मा हेनीमेन के ज़माने में ही बसर करना चाहते हैं।''

मुझे उसकी टिप्पणी अच्छी नहीं लगी, परन्तु उसका लहजा और शब्द चयन काबिले तारीफ थे। लड़का प्रतिभाशाली है, मुझे लगा।

''ग्रेजुएशन के बाद क्या करने का इरादा है, बेटा ?'' मैंने प्यार से उसकी पीठ सहलाते हुए पूछा।

''मॉडलिंग। दवा की गोलियों के साथ काँच की एक शीशी मुफ्त। टरनटन।'' बबलू पुनः उसी लापरवाह अन्दाज़ में बोला। फिर ड्रेस बदली। कमीज़ पेन्ट में खोंसकर आईने के सम्मुख चारों ओर घूमकर अपने को आगे-पीछे से निरखा, बाल थपथपाये और मोटरसाइकल निकालकर दवा लाने चल पड़ा।

''हूँ। दो मिनट का रास्ता भी नहीं है और बाबू साब सज-धज कर गाड़ी पर निकले हैं।'' देवीप्रसाद बड़बढ़ाए, फिर अपने को संयत करते हुए बोले, ''जेनरेशन गेप की अच्छी मिसाल है। इस गेप को पाटने की कोई दवा नहीं है, डाक्टर तुम्हारे पास?''

मैंने समझा कि मेरे मरीज़ ने मज़ाक किया है। मगर जब मैंने उनका चेहरा देखा तो वहाँ सघन पीड़ा विराजमान थी। उनकी तनी हुई झुर्रियों में तरलता व्याप गई, जिसकी आर्द्रता से मैं भी भीग गया।

कुछ देर कमरे में सन्नाटा किसी खूंखार गेंडे की तरह पसरा रहा। मैंने अपनी कलाई घड़ी पर नज़र डाली।

''बैठो डाक्टर, क्या जल्दी है चले जाना। वैसे भी

एक दिन सबको जाना ही है।'' देवीप्रसाद के चेहरे पर वेदना मिश्रित अपनापन उभर आया जिसकी उपेक्षा करके जाना मेरे लिए नामुमकिन था।

''आठ मई को प्रलय जो हो रहा है।'' उन्होंने आगे जोड़ा और एक फीकी सी हँसी हँस दिए।

''अरे कुछ नहीं होगा, सब बकवास है। डरिए नहीं। हर दस साल बाद ज्योतिषी ऐसे ही शगूफे छोड़कर अपने होने का अहसास दिलाते रहते है।'' मैंने दिलासा देना चाहा।

''मैं क्यों डरूं ? यह तो अच्छा ही है। पृथ्वी का भार हल्का हो जायेगा। आदमी अपनी आदमियत से कितना गिर गया है ? देखते नहीं अखबारों के पन्ने रंगे रहते हैं आदमी की नीचताओं से।'' देवीप्रसाद की निरीहता तिरोहित हो गई। अब उनकी आवाज़ में अजीब सा खुरदरापन था। जैसे पगथली पर एक्यूप्रेशर का बेलन दौड़ रहा हो, अपने पूरे दबाव के साथ।

''चलिये थोड़ी देर के लिए यह मान भी लें कि प्रलय से पृथ्वी का भार हल्का होगा, तो भी यह कहाँ का न्याय है कि चन्द बुरे लोगों के साथ कई अच्छे लोग भी मारे जाएँ। निर्दोष और मासूम बच्चे, स्त्रियाँ सब।'' मैं चन्द लम्हों के लिए भूल गया कि डाक्टर हूँ और बहस में उतर पड़ा। मेरी बात सुनकर देवीप्रसाद ज़ोर से हँसे-न्याय ! हा हा हा। मुझे आश्चर्य हुआ कि इस बीमार और बूढ़े व्यक्ति के फेफड़ो में अचानक इतनी ताकत कहाँ से आ गई। फिर उन्हें खांसी उठी, एक इको ध्वनि के साथ। कुछ सहज होने पर वे बोले-डॉक्टर, तुम जिस न्याय की बात कर रहे हो वो कहाँ है ? देख लो आज का अखबार। युगोस्वालिया में कितनी हत्याएँ ? क्या नाटो की बमबारी से मरने वाले सभी अपराधी हैं? और इस भूकम्प में क्या सभी बुरे लोग ही मरे हैं? यह देखो, मासूम बच्ची के साथ बलात्कार। क्या कसूर है इस बेचारी का ? अब यह खबर-पचास रूपये की रिश्वत लेते पटवारी गिरफ्तार। मैं गारंटी के साथ कह सकता हूँ कि यह खबर झूठी है। रिश्वत नहीं लेता होगा इसलिए बेचारे को फँसाया गया है। रिश्वत लेने वाले तो ऐश करते हैं, पूजे जाते हैं।''

देवीप्रसाद रूके। दो चार गहरी-गहरी साँसें ली मानो अपने थके हुए बदन में ऊर्जा भरने की कोशिश कर रहे हों।

''भुक्तभोगी हूँ डॉक्टर। मैंने अपने पूरे सेवाकाल में कभी रिश्वत नहीं ली। इसकी सज़ा भी मिली मुझे।'' वे आहिस्ता-आहिस्ता बोले। मुझे लगा उनके मुँह से शब्द नहीं, दर्द झरा हैं।

मैं इन्तज़ार करता रहा कि देवीप्रसाद अपनी बात जारी रखेंगे, लेकिन वे कहीं खो गए। संभवतः किसी अप्रिय प्रसंग की याद में। उनकी ललाट की सलवटें लगातार फैल और सिकुड़ रही थी।

''क्या सर्विस थी ?'' मैंने ही पूछा, यद्यपि इस किस्म की जिज्ञासा आम डॉक्टर के लिए निरर्थक हो सकती है, परन्तु मेरे लिए अहम बात है। क्या पता इससे रोगी के मन का कोई अज्ञात पहलू हाथ लग जाए। आख़िर हमें मन का ही तो इलाज करना है-तन तो स्वतः ठीक हो जाएगा।

''रेवेन्यू विभाग में जूनियर एकाउन्टेंट था। मेरी ईमानदारी से आतंकित होकर अफ़सरों ने मुझे रिश्वत के केस में फँसाने की कोशिश की, किन्तु असफल रहे। फिर दूर ट्रांसफर कर दिया। उनके अनुसार ''ड्राई एरिया'' में।''

देवीप्रसाद ने दो घूँट पानी पीकर अपना गला तर किया। पुनः बोलने लगे, ''इस नियम विरुद्ध ट्रांसफर के खिलाफ मैं खूब लड़ा। साथियों से मदद माँगी तो उन्होंने दुत्कार दिया। बोले-तू बेवकूफ़ है। यह तो सुविधाशुल्क है। सभी लेते हैं। तू भी ले और मौज कर। अफसर खुश रहेंगे। घर के पास रहेगा। घर में लक्ष्मी आएगी तो घर की लक्ष्मी प्रसन्न रहेगी। परिवार में खुशहाली रहेगी।''

देवीप्रसाद ने एक दीर्घश्वास छोड़ी। ''डॉक्टर, मैंने खुशहाली की बजाय तंगहाली का वरण किया और सबकी नाराज़गी मोल ली। यहाँ तक कि पत्नी की भी। प्रान्त के एकान्त कोने में पड़ा रहता। टेबल पर कोई खास काम नहीं था। अखबारों को अपना साथी बना लिया। तमाम तरह के स्थानीय, राष्ट्रीय अखबार पढ़ना और उनमें प्रतिक्रियाएँ भेजना। उन्होंने मुझे परिवार से काटने की कोशिश की, मैं सारी दुनिया से जुड़ गया।''

मुझे लगा कि देवीप्रसाद बहुत दिनों से किसी से बतियाये नहीं हैं। या शायद किसी ने उन्हें सुनने की कोशिश ही नहीं की है। मैंने उनकी बातें गौर से सुनी और वे लगातार खुलते चले गये। पर्त-दर-पर्त।

इसी समय एक अधेड़ महिला ने मकान में प्रवेश किया। उनके दाएँ हाथ में वेनिटी बेग था, बाएँ में रूमाल। होठों पर चमकदार लिपिस्टिक। बाल आधुनिक स्टाइल में कटे एवं सजे हुए। साड़ी सलीके से किन्तु कुछ कसावट के साथ बँधी हुई। निश्चित ही वे अपनी उम्र से काफी छोटी लग रही थी।

''कैसी तबीयत है ?'' उन्होंने आते ही देवीप्रसाद से पूछा। उनके स्वर में सहानुभूति की अपेक्षा औपचारिकता अधिक थी।

''ठीक ही है। डॉक्टर से बातें करके कुछ राहत महसूस हो रही है।''

देवीप्रसाद ने मेरी हौसला अफ़ज़ाई की। फिर परिचय कराया। वह सम्भ्रांत महिला उनकी धर्मपत्नी थी। महिला ने गर्दन को हल्का सा झुकाकर मेरा अभिवादन किया। वे बैठी नहीं। शायद कहीं जाने की जल्दी में थीं। खड़े-खड़े ही बोलीं-''कोई खास बीमारी नहीं है डॉक्टर इन्हें, बस चिन्ता बहुत करते हैं। चिन्ता भी कैसी, सुनोगे तो हँसोगे। दुनिया भर के अखबार मँगाते हैं और पढ़-पढ़ कर ऊल-जुलूल सोचते रहते हैं। अब आप ही बताओ इनके चिन्ता करने से देश सुधर जाएगा ? मंत्री और अधिकारी ईमानदार हो जाएँगे ? लोग झगड़ना छोड़ देंगे? बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की डकैती रुक जाएगी ? यह तो दुनिया है, ऐसे ही चलेगी। डॉक्टर, कुछ भी करके इनका अखबार पढ़ना छुड़वा दो। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी।''

फिर, 'मुझे मिसेज भावना के यहाँ एक पार्टी में जाना है' यह कहकर उनकी पत्नी ने पास के कमरे में जाकर साड़ी बदली और रवाना हो गई।

देवीप्रसाद के होठों पर विद्रूप मुस्कान उभर आई। मैं उनके उलझनपूर्ण व्यक्तित्व की गुत्थी सुलझाने के प्रयास में खुद ही उलझ गया।

''आजकल भूख बहुत लगती है।'' देवीप्रसाद ने विषयान्तर किया, ''दिन के दस-ग्यारह बजे तो बर्दाश्त के बाहर। पत्नी कुछ रखकर जाती है, लेकिन वह भी कम पड़ता है। उसे भ्रम है कि मुझे बी.पी. है इसलिए तेल, घी सब ताले में, परन्तु मैं भी ऐसे ताले खोलने में माहिर हूँ।'' देवीप्रसाद ने हँसते हुए बताया। फिर दार्शनिक अन्दाज़ में बोले-''लगता है रामकृष्ण परमहंस सा हो गया हूँ। जिस दिन भोजन का यह प्रचण्ड मोह छूटेगा, समझो अपना नाता भी इस धरती से टूट जाएगा।''

मेरे समक्ष फिर से एक दवा मूर्तिमान हो उठी। मैंने पेन निकाला। देवीप्रसाद ने हाथ के इशारे से मना किया, ''तुम जो लिखने जा रहे हो, है मेरे पास।'' उन्होंने नेट्रम मूर की शीशी दिखाते हुए कहा।

मुझे झुँझलाहट सी हुई। फिर भी मैं भरसक संयम बरतते हुए बोला-''जब आपको इस पद्धति का इतना गहरा ज्ञान है तो मुझ नाचीज़ को बुलाने की क्या ज़रूरत थी ?''

इसके पश्चात् दो-तीन बार फ़ोन पर उनका फिर बुलावा आया किन्तु व्यस्तता के कारण मैं जा नहीं

पाया। मैंने उनसे क्लिनिक में ही आ जाने का अनुरोध किया पर वे नहीं आए। एक दिन बबलू बदहवास सा मेरे क्लिनिक में दाखिल हुआ।

''डाक्टर अंकल, फौरन चलिये। पापा की तबीयत बहुत खराब है। और हाँ, उस दिन जो कुछ कहा उसका मुझे अफ़सोस है। जल्दी कीजिये, प्लीज़।'' अपने पिता के प्रति बबलू की चिन्ता को मैं नज़र-अन्दाज़ नहीं कर सका। मैंने अपना बैग उठाया और उसके साथ चल दिया।

मैंने देखा कि देवीप्रसाद की बेचैनी चरम पर है। वे एक पल के लिए लेटते, तो दूसरे ही पल उठ बैठते। सबसे आश्चर्य की बात, उनकी प्रिय चीज़ अर्थात् अखबार टुकड़े-टुकड़े होकर इधर-उधर बिखरे पड़े थे। पास की अलमारी में अंग्रेज़ी दवाओं की बहुत सी शीशियाँ और खाली इन्जेक्शन रखे थे। इसका मतलब बबलू अपने पिता को बचाने की भरसक चेष्टा कर चुका है।

आज उनकी पत्नी पहले से ही मौजूद थी। एकदम सादगीपूर्ण लिबास में। उनके साथ चलने वाला खुशबुओं का रेवड़ इस वक्त नदारद था, उसकी जगह पर थी घरेलूपन की भीनी-भीनी सी महक। आँखों में सूरमे की जगह उदासी घुमड़ रही थी। मैंने उनसे गर्म पानी मंगवाया और एक दवा मिलाकर चम्मच भर पानी देवीप्रसाद को पिलाने की कोशिश की। परन्तु वे साफ़ इन्कार कर गए।

सूँ.....सूँ.... की आवाज के साथ साँस छोड़ते हुए अटकते-अटकते बोले-''कोई फ़ायदा नहीं डॉक्टर दवा तो क्या भोजन से भी मेरा नेह छूट चुका है। मैं ऐसी गंदी और घृणित दुनिया में नहीं जीना चाहता।'' उन्होंने अखबार के टुकड़ों की ओर इशारा किया।

मैंने काँपते हाथों से टुकड़े-टुकड़े जोड़े। पिछले पाँच-छह दिन के अखबार थे। कुछ ख़बरों को अपनी आदत के मुताबिक देवीप्रसाद ने टिक कर रखा था। ये ख़बरें.... ओह।

मैंने इन्हें देवीप्रसाद के नज़रिए से पढ़ने की कोशिश की। अर्थात, कोई पाठक अखबार को समय काटने का साधन न मानकर अपने आस-पास की सच्ची और जीवन्त दुनिया की तरह ले तो किसी का भी दिमाग फिर सकता है।

गला रेतकर निर्दोष स्त्रियों और बच्चों का कत्लेआम। विधवा को निर्वस्त्र कर गलियों में घुमाया। दलितों की दर्जनों झोंपड़ियाँ जल कर राख। बेटे ने बाप की हत्या की। बस में बन्द विदेशी मिशनरी और उसके बेटों को आग में भूना.....।

मेरे मस्तिष्क में मानों नुकीली कीलें ठुकती गईं देर तक हिम्मत नहीं हुई कि देवीप्रसाद की आँखों में आँखे डाल सकूँ। धीरे-धीरे अखबार के जुड़े हुए टुकड़ों से नज़रें हटाकर मैंने मिसेज़ देवीप्रसाद की ओर देखा। उनके हाथ में भी एक टुकड़ा था, जिस पर उस मिशनरी, उसकी पत्नी और उनके मासूम चेहरे वाले छोटे बेटे का फ़ोटो छपा था।

''डॉक्टर, हमारा बबलू भी छुटपन में बिल्कुल ऐसा ही लगता था।'' वे बोलीं। उनका गला भर्रा गया। हमेशा चपल, चंचल रहने वाला बबलू खामोश और अन्तर्मुखी था।

मैंने हौले से देवीप्रसाद का दाहिना हाथ अपनी दोनों हथेलियों में भरा। वे कहने लगे-''डॉक्टर यह कैसी राक्षसी भूख है ? कैसी रक्त पिपासा ? इसका इलाज है तुम्हारे पास ? जब तक यह सब बन्द नहीं होगा तब तक मेरे जैसे बूढ़े तिल-तिल कर अपने को स्वाहा करते रहेंगे। तुम्हारी कोई सी भी पैथी हमें बचाने वाली नहीं है, समझे ?''

आज जब बिल्कुल वैसा ही एक केस मेरे पास विचाराधीन है, देवीप्रसाद के वे अन्तिम शब्द कानों में हथौड़े की तरह बज रहे हैं।

❐

अग्नि परीक्षा

प्रो.शाहिदा शाहीन

एन.डी.आर.के.महाविद्यालय-हासन, में प्राचार्य एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष के पद से सेवा निवृत, कर्नाटक-मैसूर की शाहिदा शाहीन आजकल उर्दू तथा हिन्दी साहित्य को पूरी तरह समर्पित हैं। हिन्दी तथा उर्दू दोनों भाषाओं में लेखन जारी है और देश-विदेश के कई प्रतिष्ठित दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक एवं वार्षिक पत्र, पत्रिकाओं में उर्दू और हिंदी में कहानियाँ प्रकाशित। 'भीगी पलकें' शाहिदा जी का कहानी संग्रह है।

संपर्कः 371, 6th Cross, Udayagiri, Mysore-570019 (KARNATAK)
फ़ोनः 9742345786
shaheenmysore1911@gmail.com

जानकी की प्रसन्नता की सीमा नहीं रही, जब उसे आभास हुआ कि वह माँ बनने वाली है, और उसके पति राघव के तो मारे हर्ष के पाँव ज़मीन पर नहीं पड़ रहे थे।

पिछले महीने उनका विवाह हुआ था। शादी वाली रात ही राघव ने पत्नी पर स्पष्ट कर दिया था कि लड़का हो या लड़की, उसे पापा कहकर पुकारने वाला कोई शीघ्र ही चाहिए। संयोगवश जानकी को भी बच्चों से बहुत प्यार था।

शुभ समाचार पाकर दोनों प्रफुल्लित हो उठे और आने वाले मेहमान के स्वागत की तैयारी इस प्रकार करने लगे जैसे सरकारी दफ़्तर में किसी मंत्री के आगमन की अपेक्षा में आयोजन किया जाता है।

दफ़्तर का समय समाप्त होते ही ठीक शाम चार बजे राघव घर पर उपस्थित रहता। शाम की सैर के बहाने वे किसी क़रीबी मॉल में चले जाते और आने वाले मेहमान के लिए कोई न कोई नई वस्तु अवश्य ले आते। प्रसव के दौरान अपेक्षित सावधानी के विषय पर जितनी भी पत्र पत्रिकाएँ वहाँ उपलब्ध थीं, राघव ने सब की सब ख़रीद डालीं और पहली फ़ुरसत में उन्हें पढ़ लिया, जानकी भी निरंतर रूप से उसका एक-एक शब्द पढ़ चुकी।

दफ़्तर में काम के दौरान उसे केवल जानकी की चिंता लगी रहती.....क्या पता उसने समय पर खाना खाया होगा कि नहीं, या काम में व्यस्त होकर दवाई लेना भूल गई हो ! अवकाश मिलते ही तुरंत फ़ोन पर अपनी शंका का समाधान कर लेता और साथ में ढेर सारे आदेश भी सुना देता।

उसे मासिक जाँच के लिए ले जाने के उद्देश्य से वह हर महीना दफ़्तर से छुट्टी ले लेता था। डॉक्टर द्वारा दिया गया हर एक निर्देश भी उसे अच्छी तरह याद रहता। अतः जानकी का पीछा तब तक न छोड़ता जब तक वह पूर्णरूपेण उस पर कार्यान्वित न हो जाती।

सामान्यतः प्रसव के दौरान महिलाएँ ज़रा सी बात पर भावुक हो जाती हैं और जानकी का तो यह पहला प्रसव था। अपने लिए पति की इस अद्भुत चिंता व सतर्कता पर वह गदगद हो उठती। वैसे भी अपने भैया, बाबा के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष को इतने समीप से भला देखा ही कब था ! उसे लगता मानो सारी दुनिया में पत्नी से सब से ज़्यादा प्रेम करने वाला पति केवल उसका है।

डॉक्टर के अनुसार नौ महीने पूरे होने में अभी नौ दिन शेष थे, उसके बाद किसी भी समय उस अपेक्षित घड़ी के आ जाने की संभावना थी। अतः ज़रा से लक्षण प्रकट होते ही तुरंत अस्पताल चले आने को कहा गया था।

आज राघव की छुट्टी थी। अक्सर ऐसे अवसर पर वे दोनों देर रात गए तक बरामदे में बैठे रहते जिसके सामने वाले आँगन में जानकी ने अपने हाथों एक छोटी सी फुलवारी लगा रखी थी। पौधों पर खिले हुए रंगीन फूलों की मोहक सुगंध से घर आँगन की बगिया महक उठी थी, और अब जीवन की बगिया महकने की बारी थी। पति के कंधे पर सिर रखे, उनींदी आँखों में सपने सँजोए वह कहती-

'ऐसा लगता है मानो हमारा बचपन फिर से आने को है।'

आशायुक्त दड़ष्ट से सुदूर आकाश में देखता हुआ राघव कहता-

'जब हम दोनों के बीच वह आएगा तो हमारा बंधन और मज़बूत हो जाएगा।'

'हाँ, हम दोनों ने मिलजुलकर जो सपना देखा है, उसका सुंदर परिणाम शीघ्र ही आने को है।' जानकी कहती।

भविष्य के सुनहले सपनों में खोए दोनों निद्रा जगत में लीन थे। ना जाने रात का कौन सा पहर रहा होगा कि यकायक जानकी की आँख खुल गई। उसकी कमर में हल्का सा दर्द हो रहा था और गला भी सूख रहा था। राघव की बाहें अपने ऊपर से हटाते हुए आहिस्ता से वह चारपाई से नीचे उतर आई। फ्रिज से ठंडे पानी की बोतल निकाल कर मुँह से लगा ली, फिर गुसलख़ाने की ओर दौड़ गई। अद्भुत पीड़ा थी कि पल-पल बढ़ती ही जा रही थी। विचलित हो उसने राघव को आवाज़ दी। वह हड़बड़ा कर जाग गया और जानकी का बिस्तर ख़ाली पाकर कमरे से बाहर आ गया।

जानकी ज़मीन पर बैठी हुई कराह रही थी, उसकी आँखों में दर्द तथा मुख पर व्याप्त वेदनायुक्त भाव से भलीभांति स्पष्ट था कि वह जिस पीड़ा से गुज़र रही है, उसे शब्दों में प्रकट करने की स्थिति में नहीं है।

अचानक उसे डॉक्टर द्वारा दिया गया निर्देश स्मरण हो आया। अतः लपक कर उसे बाहों में उठा लिया और बाहर लाकर अपनी दोपहिया गाड़ी की पिछली सीट पर बैठा दिया। रात के सन्नाटे में जानकी अपनी आवाज़ दबा कर कराह रही थी। राघव ने दरवाज़े पर ताला लगाया, फिर उसके दोनों बाज़ू अपनी कमर के गिर्द

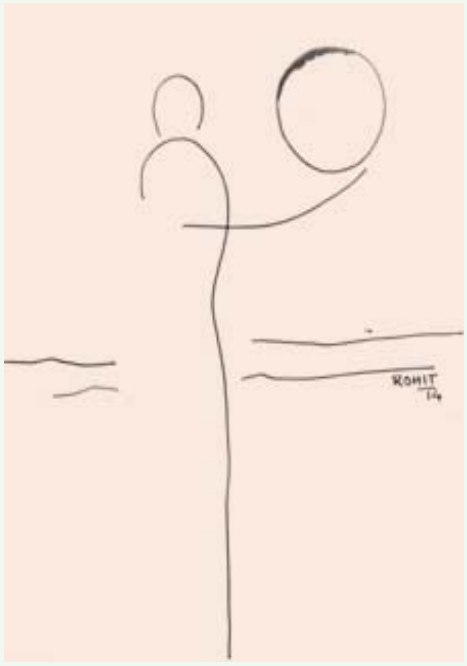

डाल कसकर पकड़े रहने का आग्रह करते हुए गाड़ी दौड़ा दी। अस्पताल उनके घर से ज़्यादा दूर नहीं था परंतु दोनों ने मानो सदियों के फ़ासले तय कर डाले।

अस्पताल के लंबे से कॉरीडोर में वह चिंताग्रस्त स्थिति में टहलता हुआ प्रतीक्षा करता रहा। पीड़ा के मारे जानकी का सफ़ेद पड़ गया चेहरा और उसकी आँखें बार-बार उसके सामने घूम जातीं। दुर्भाग्यवश उन दोनों के माता-पिता जीवित नहीं थे। विपत्ति की इस घड़ी में उसे किसी सगे संबन्धी द्वारा सहानुभूति तथा उचित मार्गदर्शन का अभाव खल रहा था।

अचानक एक नर्स लेबर वार्ड से बाहर निकली। कुछ पूछने से पहले ही तेज़ी से दूसरी ओर चली गई। डॉक्टर, नर्सें अंदर बाहर आते-जाते रहे और वह प्रतीक्षा में बाहर खड़ा रहा। सुदूर आकाश पर लाली छाने लगी थी। एक नई सुबह होने को थी

यक-ब-यक वह चौंक पड़ा। लेबर वार्ड के अंदर से किसी नवजात का रुदन सुनाई पड़ा। कुछ समय पश्चात एक नर्स, शिशु को बाहों में लिए हुए प्रकट हुई और मुसकराती हुई बोली-

'बधाई हो, आपकी पत्नी को लड़का हुआ है। यह कमज़ोर पैदा हुआ है, इसलिए तुरंत इनक्यूबेटर में रखना होगा।' फिर वह बच्चे को लेकर दूसरे कमरे में चली गई।

उसने बच्चे का चेहरा भी नहीं देखा! क्योंकि अनपेक्षित समाचार ने उसे बौखला दिया था। डॉक्टर के कहे अनुसार बच्चे के जन्म में अभी नौ दिन शेष थे!

द्वार फिर खुला और डॉक्टर ने बाहर निकल कर मुस्कराते हुए कहा कि अब वह अपनी पत्नी से मिल सकता है। भौंचक्का होकर वह डॉक्टर को जाते हुए देखता रह गया।

जानकी का कमज़ोर चेहरा मारे प्रसन्नता के दमक रहा था। गर्वित दृष्टि से पति की ओर देख हौले से मुस्करा दी; लेकिन राघव खुल कर मुस्करा भी न सका। उसकी हिचक को जानकी ने अपने लिए उसकी परम चिंता ही जाना।

राघव की दुनिया उलटपलट हो चुकी थी। सामान्यतः उसने सभी मित्रों को विवाह के तक़रीबन दस-ग्यारह महीने या वर्ष भर बाद ही बाप बनते देखा था परंतु उसके विवाह को नौ महीने भी पूरे नहीं हुए कि पत्नी की गोद में एक अदद बच्चा आ गया! यह समाचार सबके सामने किस मुँह से कहे? लोग न जाने क्या-क्या बातें बनाएँगे!

जाने कैसे पड़ोसियों को जानकी के माँ बनने की सुन-गुन मिल गई थी। सब के सब बधाई के साथ-साथ अपनी सेवाएँ भी प्रस्तुत करने आ पहुँचे थे। और तो और, उसके दफ़्तर में भी समाचार पहुँच गया था। बॉस ने बिना अर्ज़ी दिए ही उसके लिए पंद्रह दिन की छुट्टी मंज़ूर कर दी थी। पहली बार अनुभव हुआ कि घर में एक नवजात का आगमन कितना शुभ होता है; लेकिन क्या फ़ायदा, जब सबको असलियत का पता चलेगा तो जिस शर्मिंदगी का सामना करना पड़ेगा, उसकी कल्पना मात्र से ही काँप उठा।

जच्चा-बच्चा घर आ गए। बच्चे के लालन-पालन में जानकी इस क़दर खो गई कि समस्त संसार को भुला बैठी। एक ही छत के नीचे रहते उसे क़तई आभास न हो पाया कि पति के मन में क्या खिचड़ी पक रही है! तथा आने वाला समय अपने दामन में उसके लिए कौन सा बवंडर छुपाए हुए है?

दिन हफ़्ते महीनों में परिवर्तित होने लगे। आख़िरकार एक दिन वह चक्रवात दबे पाँव आकर उसके समक्ष उपस्थित हो गया, जिसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी।

राघव किसी काम के बहाने पिछले दो दिन से घर से ग़ायब था। अचानक डाकिया जानकी के नाम की एक रजिस्ट्री दे गया। उसने लिफ़ाफ़ा खोलकर पढ़ा तो विश्वास नहीं हुआ.....बिना किसी विवरण के कल सुबह उसे अदालत में हाज़िर होने का आदेश दिया गया था। इधर राघव का फ़ोन भी बराबर स्विच ऑफ़ आ रहा था। मारे उद्विग्नता के वह सारी रात सो नहीं पाई। अगली सुबह तक भी न राघव आया और न उसका

कोई फ़ोन कॉल ही आया।

अचानक कॉल बेल बज उठी। राघव के आगमन की आशा में उसने दौड़कर द्वार खोला तो सामने उसके मित्र सलीम को खड़ा पाया। उसने जानकी के चहरे को ग़ौर से देखते हुए अंदर आने की आज्ञा मांगी। वह चुपचाप एक ओर हट गई और मेज़ पर पड़ा हुआ लिफ़ाफ़ा उठाकर उसे दिखाते हुए बोली-

'भैया, यह है क्या! मेरे तो कुछ पल्ले नहीं पड़ रहा, इधर आपके मित्र भी बिना सूचना दिए कहीं चले गए हैं।'

'अब आप से क्या कहूँ भाभी, उधर राघव का भी दिन का चैन और रातों की नींद हराम हो गई है।'

'तो आप उनके संपर्क में हैं! प्लीज़ बताइए न, बात को घुमा फिरा कर मेरी परेशानी मत बढ़ाइये।'

'समझ नहीं आता कि कहाँ से शुरू करूँ, आपके मुन्ने के जन्म से ही राघव एक भारी कशमकश में गिरफ़्तार है। यद्यपि उसने कई बार कोशिश की, परंतु आपके समक्ष कहने का साहस नहीं जुटा पाया। वैसे मैंने भी उसे समझाने का भरसक प्रयास किया, जो व्यर्थ ही सिद्ध हुआ। इस समस्या पर कई विशेषज्ञों से परामर्श भी किया गया। उनका कहना था कि संभवतः कभी-कभी ऐसा हो जाता है; लेकिन उसे विश्वास नहीं हुआ। असल में एक फाँस सी है, जो उसके मन में चुभ कर रह गई है, यदि वह दूर हो जाए तो सब कुछ पहले जैसा हो जाएगा।'

उसके शांत होते ही जानकी ने तुरंत कहा-

'जिस तथ्य को ज़बान पर लाने में भी आपको संकोच होता है, वह न जाने कब से मेरे पति के मन में पल रहा था! अब बता भी दीजिए कि उनकी समस्या है क्या?'

सलीम ने एकबारगी वह सब कुछ कह डाला, जो वह सपने में भी नहीं सोच सकती थी। उसके पैरों तले ज़मीन खिसक गई और सिर घूमने लगा, चकरा कर गिरने ही वाली थी कि सलीम ने लपक कर उसे अपने हाथों पर थाम लिया और आदर सहित काउच पर लिटा दिया।

शक की चिंगारी जब भड़कती है तो उसे शोला बनते देर नहीं लगती। राघव को जानकी की पवित्रता पर केवल इसलिए शक हो गया था कि शादी को पूरे नौ महीने समाप्त होने के पूर्व ही बच्चा दुनिया में आ गया था। और इस निर्मूल शंका के निवारण हेतु उसके द्वारा न केवल अदालत का दरवाज़ा खटखटाया गया था बल्कि डी.एन.ए परीक्षण की भी माँग की गई थी।

जानकी तुरंत उठ बैठी और विस्फ़ारित नेत्रों से उस लिफ़ाफ़े को घूरने लगी। सलीम ने फिर कहा-

'सर्वदा साथ-साथ रहने पर भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि सामने वाले के मन में क्या चल रहा है; क्योंकि हर व्यक्ति की सोच उसके अपने मनोविज्ञान पर आधारित होती है। वैसे भी आपकी तुलना में राघव अत्यंत भावुक एवं जल्दबाज़ व्यक्ति है। आप दिमाग़ पर बोझ मत डालें, इसे इस तरह सोचें.....एक साधारण-सा परीक्षण है बस, हो जाने दीजिए। जिससे उसका संशय भी दूर हो जाएगा। आप दोनों के भले के लिए यही उचित रहेगा कि जिस प्रकार वह चाहता है, ठीक उसी तरह इस बखेड़े का समाधान हो जाए ताकि आप दोनों का जीवन पूर्व स्थिति में लौट आए।'

जानकी ने घायल नज़रों से उसे देखा, जिसकी ताब न लाकर सलीम ने हड़बड़ाते हुए कहा-

'यद्यपि उसे आपकी पवित्रता पर पूरा विश्वास है, पर मामला संतान का ठहरा और वह भी लड़का, तो बेचारा बस अपना इत्मीनान कर लेना चहता है ताकि कल-कलां को पछताना ना पड़े।'

जानकी ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा-

'मेरी समझ में यह नहीं आ रहा कि यह बात निजी तौर पर भी कही जा सकती थी, तो अदालत का द्वार क्यों खटखटाया गया है।'

सलीम ने हाथ मलते हुए जवाब दिया-

'अब आप से क्या छुपाना भाभी, राघव का विचार है कि यदि जाँच का परिणाम सकारात्मक रहा तो सारी दुनिया को वास्तविकता का पता चल जाएगा,

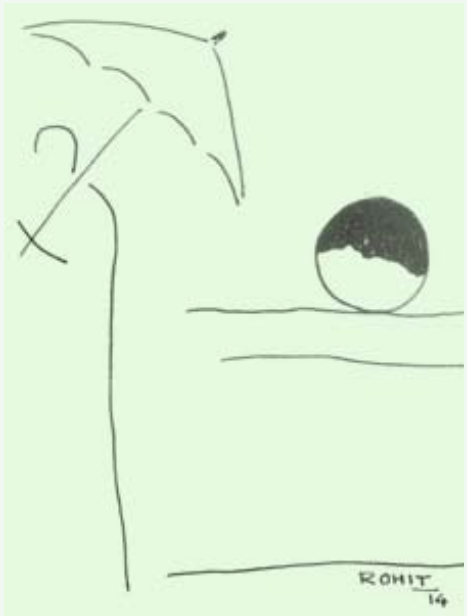

और यदि नकारात्मक परिणाम निकला तो क़ानून के अनुसार तलाक़ के मार्ग में कोई बाधा नहीं आएगी।'

दुर्भाग्यवश, स्त्री के समक्ष अपनी पवित्रता का तत्क्षण प्रमाण उपलब्ध कराने का कोई साधन नहीं होता। सुखी दांपत्य जीवन का आधार केवल आपसी विश्वास के बल पर निर्भर रहता है। वह संबन्ध ही क्या जिसकी बुनियाद किसी के कहने-सुनने के भय से अथवा निर्मूल शंका के कारण डगमगा जाए।

जानकी ने अत्यंत आस्था एवं भक्ति सहित जिसके हाथों अपना सर्वस्व सौंप दिया था, उस व्यक्ति का विश्वास एवं प्रेम इतना अस्थिर सिद्ध हुआ कि क्षण भर में रेत के घरोंदे की भाँति धराशायी हो गया।

शायद राघव का वह अद्भुत प्रेम केवल संतान प्राप्ति हेतु था..... स्वार्थ तथा आडंबरयुक्त! जानकी अपने आपको अत्यंत लाचार व पराधीन अनुभव कर रही थी। जब उसकी अस्मिता के रखवाले को ही उसपर भरोसा नहीं रहा तो बाकी दुनिया उस पर ऐतबार कर ले तो क्या लाभ!

अपने आपको निरपराध सिद्ध करने के लिए हर युग में स्त्री को अनेकानेक अग्नि परीक्षाओं से ही गुज़रना पड़ा है। परंतु इतिहास साक्षी है कि इस प्रकार अनुचित रूप से लांछन लगाने वाले को उसने कभी क्षमा नहीं किया है।

अदालत के आदेशानुसार वह बच्चे को लेकर अस्पताल पहुँच गई। राघव भी वहीं मौजूद था और उससे नज़रें चुरा रहा था। उसके मन मस्तिष्क पर शंका की छाप इतनी गहरी पड़ चुकी कि वह अनुभव ही नहीं कर पाया कि किसी के संग इतना अधिक समय व्यतीत करने तथा उसे समीप से देख और परखने के बावजूद उसपर आरोप लगाना गोया अपने आपको कलंकित करने सदृश है।

अंदर से राघव का नाम पुकारा गया तो वह उठकर जाने लगा। जानकी ने लपक कर उसकी बाह थाम ली और आँखों में आँखें डालकर बोली-

'जाँच तो होती रहेगी, उसका परिणाम आने से पहले मेरा फ़ैसला सुनते जाओ..... जिस व्यक्ति ने समस्त देवी-देवताओं को साक्षी मान कर पवित्र अग्नि के समक्ष मुझे पत्नी स्वीकार किया, फिर एक निर्मूल शंका के आधार पर लांछन लगाते हुए सारी दुनिया के सामने मेरा अनादर किया और मेरे विश्वास को आघात पहुँचाया है, उस व्यक्ति का साथ मुझे इस जन्म में तो क्या अगले सात जन्म तक भी स्वीकार नहीं।'

❐

जब मैं अमरीका गया

सुधाकर अदीब

मित्र ! हिन्दुस्तान में क्या कम खतरे हैं? बाज़ार में आप जा रहे हों.....किसी कार या मोटरसाइकिल से टक्कर हो जाए...रेलवे स्टेशन पर किसी ट्रेन की प्रतीक्षा में हों और प्लेटफार्म पर ही कोई बम फट जाए...किसी सुंदर महिला से गले में प्रशस्ति की माला पहनवाकर बुढ़ापे में पुनः वरमाला का तसव्वुर कर रहे हों और वह औरत ही कम्बख्त किसी मानवबम की तरह धमाका कर दे और जिससे आप ही नहीं, आस-पास के दर्जनों अरातियों-बरातियों के भी चीथड़े उड़ जाएँ। वगैरा....

ऐसे में, एक दिन सरकार ने मुझे संयुक्त राज्य अमरीका की मुफ़्त यात्रा का सुअवसर प्रदान कर दिया। अधर-बुढ़ौती के दिनों में जब आदमी की कुछ कर गुज़रने की क्षमता पर प्रश्नवाचक चिह्न लग जाता है, मुझे भी अपने तीन-दर्जन साथी अधिकारियों के साथ एक विशेष-प्रशिक्षण के लिए चुन लिया गया। भारत का प्रशसन तो खैर मुझ जैसे लोग 'जैक ऑफ़ आल ट्रेड' की भाँति अब तक चलाते आए थे। इसलिए सरकार ने सोचा होगा कि इस 'मास्टर ऑफ़ नन' को अब विदेश भेजकर एक कुशल प्रबंधक बना ही दिया जाए। दो हफ़्ते घूमो बेटा मौज से अमरीका।

हम तो दोस्त। ज़िन्दगी में कभी हवाई जहाज पर भी नहीं बैठे थे। अब बैठे तो सीधे अमरीका के लिए? भई वाह ! एयर इंडिया के जम्बो विमान में चढ़ते समय दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था। पर जब ऊपर विमान में पहुँचे तो थोड़ी तसल्ली हुई। लगा कि दुर्घटना में मरने का चांस एक हज़ार में एकवाँ होता है। यानी के प्वाइंट वन परसेन्ट। परन्तु यदि वह दुर्लभतम क्षण आया भी तो कम-से-कम एक शाही यात्रा का आनंद लेते हुए ही हम मरेंगे। और अगर सही-सलामत वापस लौट आए तो सीधे 'अमरीका रिटर्न' कहलाएँगे। अब यार! 'नेपाल रिटर्न' या भूटान रिटर्न' से तो यह अच्छा ही होगा।

एयर इंडिया का विमान क्या था एक पूरा बारातघर था। सैकड़ों आरामदेह कुर्सियाँ और अंतरराष्ट्रीय मुसाफ़िर। विमान की सीटों की संख्या के आधे ही। हमारी स्वदेशी विमान कम्पनियाँ घाटे में क्यों चलती हैं? यह रहस्य मुझे तभी समझ में आ गया, जब मैंने पहली बार यह अपनी विदेश यात्रा की।

विमान के भीतर देशी परिचारिकाओं के सौंदर्य और सुविधाओं का कोई अभाव न होते हुए भी यात्री संख्या का पचास फ़ीसदी से भी कम होने का लाभ यात्रा कर रहे मुसाफ़िरों को मैंने अच्छी तरह से लेते हुए देखा। दो-दो तीन-तीन सीटों के बीच में घुटना-मोड़े कम्बल-ओढ़े अधिकतर यात्री मीठी नींद का आनंद लेते मुझे दिखे। मैंने

डॉ. सुधाकर अदीब,
निदेशक उ. प्र. हिन्दी संस्थान , लखनऊ।
मोबाइल- 09415039777

भी अपने सेगमेंट में तीन-सीटों के बीच के हत्थे ऊपर खड़े किए और कंबल ओढ़कर विमानयात्रा भय से दो-तीन घंटों के लिए मुक्ति पाई। बीच-बीच में विमान में आँख खुलने पर कल्पनाओं को पंख लग जाते और वह विमान मुझे नाना प्रकार से दुर्घटनाग्रस्त होता प्रतीत होता। अच्छी बात यह थी कि सीटों के पीछे लगी छोटी स्क्रीनों पर टेलीविजन के कई चेनल यात्रियों के मनोरंजन हेतु उपलब्ध थे। रास्ते भर खाते-पीते और सहयात्रियों को सहलाने वाली नज़रों से देखते हुए इस प्रकार पाँच-छः घंटे बीत गए और इंदिरा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा दिल्ली से उड़ा हमारा विमान अंततः लंदन के हीथ्रो हवाई अड्डे पर उतर ही गया।

जब हम एक बस में बैठकर हीथ्रो के मुख्य हवाई अड्डे पर ले जाए गए तो सबसे पहले हमारी कड़ी सुरक्षा जाँच हुई। बस पैंट उतारकर नहीं देखी गई। बाकी कुल करम हो गए। लगेज और पर्सनल बैग की स्क्रीनिंग हुई। इस तरह लंदन से आतंकवाद की अदृश्य लहर का हमें अंदाज़ा होने लगा। हमारे सामानों में कोई भी 'लीक्विड' अर्थात् तरल पदार्थ की शीशियाँ, पानी की बोतल इत्यादि अगले विमान में ले जाने की इजाज़त नहीं दी गई। ये सब कुछ खोज-बीनकर सेक्योरिटी-चेक में ही धर लिया गया तभी हमें आगे जाने दिया गया।

हीथ्रो हवाई अड्डे के भीतर हमने लगभग दो घंटे का समय कॉफी-स्नैक्स खाते और गोरे-चिकने विदेशी नर-नारियों को घूरते हुए बिताया। कुछ महँगी किताबों, शराबों और अन्यान्य विदेशी सामानों की दुकानों पर हम हसरत भरी निगाहों से ताकते कुछ देर टहलते रहे। माँसाहारी रेस्त्राँ के पास से भी गुज़रे, जहाँ भूने जाते माँस-मछली की तेज़ चिराइंध के बीच काले-गोरे विदेशी भाई-बहन हमें निर्विकार भाव से बोलते-खाते दिखाई दिए यद्यपि हवा में फैली उस चिराइंध ने हमें ज़यादा देर उधर टिकने नहीं दिया।

आगे की यात्रा लंदन से वाशिंगटन तक हमें एक अमरीकी विमान में करनी थी, सो हमने की। यह यात्रा भी लगभग छह घंटे की थी। पर इस बार यह विमान हमारे एयर इंडिया के भारतीय विमान की तरह उतना लंबा-चौड़ा नहीं था। सीटें भी तंग थीं, जो देखते-ही-देखते शत प्रतिशत देशी-विदेशी मुसाफ़िरों से भर गईं। सीटों के बीच के हत्थे भारतीय विमान की तरह फ़्लेक्सिबिल नहीं थे। अर्थात् हरामखोरी के साथ किसी को सोने की इजाज़त नहीं थी। अलबत्ता विमान परिचारिकाएँ गौरांग सुंदरियाँ थीं। काले के बजाय भूरे और सुनहरे बालों वाली। उनके द्वारा परोसे जाने वाला भोजन भी 'कॉन्टीनेंटल फूड' था। हम देसी यात्रियों के लिए स्वाद रहित अजीबोगरीब-सा। हम उन विदेशी सहयात्रियों के लिए अजनबी थे और वह हमारे लिए। लेगस्पेस यानी कि घुटना फैलाने की जगह भी इस विमान में तंग थी। अब यहाँ यह भी समझ में आया कि एयर इंडिया के 'महाराजा' को झुककर अभिवादन करते क्यों दिखाया जाता है; क्योंकि वहाँ आपको एक यात्री के रूप में महाराजाधिराज जैसा ट्रीटमेंट जो मिलता है। अमरीकी विमान में सच जानिए हमें अपनी औकात किसी गिरमिटिया मज़दूर से ज़्यादा नहीं लगी। एक अजीब-सी बेचारगी की 'फीलिंग' मुझे उस वायुयान में हुई।

अब जब अमरीका के वाशिंगटन हवाई अड्डे पर हम उतरे तो कतई भिन्न अनुभव हुआ। दिल्ली और लंदन के हवाई अड्डों पर तो विमान से हवाई अड्डे के बीच बस द्वारा आवागमन होता है। वाशिंगटन जब विमान से उतरे तो पता चला विमान की हवाई अड्डे से ही धीरे-धीरे ले जाकर कॉनेक्ट कर दिया गया। जो हवाई जहाज़ की आगे की निकास की सीढ़ी यात्रियों को हवाई पटी पर उतारती-चढ़ाती है, अमरीकी विमान में वही सीढ़ी हथिया-सूंड़ बन गई और वाशिंगटन एयरपोर्ट के एक प्रवेश द्वार से जुड़ गई। उस सुरंग से गुज़रकर हम जब प्रवेशद्वार के अंदर पहुँचे तो सब कुछ एक बड़े इंडोर स्टेडियम जैसे दृश्य में बदल गया। बीच में चलने-फिरने का चौड़ा रास्ता, दोनों तरफ काउंटर्स, कुर्सियाँ, खाने-पीने-खरीददारी के स्टॉल्स। साथ में अलग-अलग निकासी और प्रवेशद्वार भी। ए-बी-सी-डी-ई-एफ के साथ नंबर वाले। पूरी भूल-भुलैया। यहाँ से हमें डरहम के लिए, जहाँ के ड्यूक विश्वविद्यालय में हमें प्रशिक्षण के लिए जाना था, एक लोकल विमान मिलना था। एक घंटे के सफर वाला।

वाशिंटन के हवाई अड्डे के भीतर हमें सेक्योरिटी चेक से गुज़ारकर फिर से हमारी सघन तलाशी हुई। शक होने पर किसी-किसी की तो लगभग नंगा-झोरी भी। बड़ी जलालत महसूस हुई। सेप्टेंबर इलेवन 2001 की आतंकवादी घटना से हिला हुआ अमरीकी खुफ़ियातंत्र अब अपने बाप-चाचा पर भी शक करता है। एशियाई मूल के विदेशी तो उनके लिए हौव्वा जैसे हैं। अगर आप मुस्लिम हैं अथवा आपका नाम कुछ-कुछ मुस्लिमों जैसा है तो समझिए चेंकिंग में आपके साथ और भी ज़्यादा सतर्कता बरती जाएगी।

वर्ष 2008 में मेरे साथ उस अमरीका यात्रा में साथ गए अन्य प्रशासनिक अधिकारी मित्रों में प्रायः सभी भाँति-भाँति के जीव थे। वे विभिन्न भौगोलिक और सामाजिक पृष्ठभूमियों से आए हुए, किंतु भले लोग थे। कुछ तो इतने सीधे थे कि 'टॉयलेट' की तलाश में इधर-उधर घुसने की गलती कर जाते। हम लोग अभी अपने डरहम को जाने वाले विमान की प्रतीक्षा में एक कॉरीडोर में कुर्सियों पर पसरे हुए प्रतीक्षा कर रहे थे कि अचानक हवाई अड्डे के उस भाग में एक खतरे की घंटी ज़ोर-ज़ोर से बज उठी। सारा अमरीकी विमानपत्तन का स्टाफ़ उसी क्षण 'एलर्ट' हो गया। एक-दो स्टाफ़ के लोग हमारे पास भी आए। उन्होंने हमसे पूछा कि क्या आप इन दोनों लोगों को पहचानते हैं? क्या यह आपके ग्रुप के साथ हैं? हमने देखा कि हमारे दो अधिकारी साथी वाशिंगटन एयरपोर्ट के दो अमरीकी कर्मचारियों के साथ सिकुड़े हुए खड़े थे। हमें बताया गया कि यह दोनों सज्जन एक निषिद्ध दरवाज़े से, जिससे बाहर जाना मना था, बाहर जाने का प्रयास कर रहे थे। इसे वहाँ एक बड़ा 'सिक्योरिटी ब्रीच' माना जाता था। हमारे पकड़े गए साथियों ने बताया कि हम तो उधर बस वैसे ही जिज्ञासावश गए थे। हमने अभी उस डोर को ढकेलने का प्रयास किया ही था कि वह पगली-घंटी बज उठी।

इस पर अमरीकी स्टाफ़ ने बताया कि अब कुछ नहीं हो सकता, अब 'सार्जेंट' यहाँ आएँगे और तभी पूछताछ के बाद इन सज्जनों के बारे में फ़ैसला होगा। इसके साथ ही हमारे दोनों नादान साथियों के पासपोर्ट अस्थाई तौर पर जब्त कर लिए गए और उन्हें शांति से एक ओर बैठ जाने की हिदायत दे दी गई।

पंद्रह मिनट में 'सार्जेंट' आया। अमरीकी सुरक्षा पुलिस का एक हट्टा-कट्टा अधिकारी। साथ में एक अन्य सहायक सुरक्षा गार्ड। पूछताछ होने पर हम सभी ने अपना परिचय दिया। हमारे ग्रुप लीडर ने 'सार्जेंट' को समझाया कि यह भाई लोग 'टॉयलेट' की तलाश में उस निषिद्ध दरवाज़े तक चले गए थे। उसने कहा कि इतना बड़ा नो-एंट्री और क्रॉस का निशान क्या उन्हें नहीं दिखा? इस पर गलती कर चुके भाई लोगों ने 'सार्जेंट' से मासूमियत के साथ सॉरी कहा, तब जाकर जान बची और उनके पासपोर्ट उन्हें वापस मिले। वाकई अमरीका में 'सिक्योरिटी' कितनी 'टाइट' है हमें तभी अहसास हो गया।

ध्यान से देखा जाए तो भारतीय समाज की स्थिति भी किसी एक महासागर सरीखी है। महासागर जो ऊपर से नीलवर्ण और प्रायः एक-जैसा दिखाई देता है,

परन्तु जिसके सीने में अनेक सागर विभिन्न सतहों में उमड़ते-घुमड़ते विद्यमान हैं। सागर भीतर सागर। धाराओं के भीतर धाराएँ। करंट के भीतर अंडर करंट्स। भारतीय समाज, हिन्दू समाज, मुस्लिम समाज, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध, दलित, सनातनी, आर्यसमाजी, चार्वाकी, आस्तिक, नास्तिक।

मनुष्य अपने जीवनकाल में इन विभिन्न विचारधाराओं में डूबता-इतराता है। यदि वह कम पढ़ा-लिखा, अनपढ़-मूढ़ रहा, तो इनमें से किसी एक धारा में बहता-तिरता जीवन काट देता है। ज़्यादा समझदार हुआ तो उसके लिए तो सारा जीवन अन्तर्द्वन्द्व, डूबना-उतरना और जीते-जी मृत्यु का घड़ी-घड़ी स्वाद चखने की कवायद भर है। विभिन्न पृष्ठभूमियों से पले-बढ़े व्यक्ति इसीलिए विभिन्न अनुभवों से गुज़रते हैं।

ड्यूक विश्वविद्यालय में हमारी पढ़ाई और प्रशिक्षण जो भी हुआ, वह एक सुखद स्वप्न जैसा था। उस स्वप्न का विस्तृत वर्णन आपसे क्या करें? अमरीका के बाज़ारों, रेस्त्राँ, विभिन्न दर्शनीय स्थलों में हम जो घूमे, उनका वर्णन फिर कभी। वह सब तो अब फ़िल्मों और इंटरनेट के इस युग में देखना-जानना वैसे भी कोई अबूझ पहेली नहीं। परन्तु अमरीका में सुरक्षा का भूत जो दिन-रात मँडराया करता है, वह हमारे साथ भी अदृश्य रूप से पहले दिन से अंत तक फिर बना ही रहा। मेरा मित्र नरेंद्र बहुत प्यारा इन्सान था, इसीलिए वह मेरा और भी प्यारा मित्र था। अमरीका की इस यात्रा में वह मेरे और भी निकट हो गया। सुबह-सुबह हम अपने होटल के कमरों से निकलकर एक-दूसरे के आरामदेह कमरों में जाते और परस्पर नाश्ता शेयर करते। अंडों और दूध इत्यादि का एक्सचेंज करते और खुलकर परस्पर हँसी-मज़ाक करते। नरेंद्र जब हँसता तो हँसते-हँसते एक खास अंदाज में वह अपनी आवाज़ को ऊपर खींचता, तब वह मुझे और भी प्यारा लगता। उस समय ऐसा प्रतीत होता कि यह दुनिया इतनी ज़ालिम नहीं समझी जाती है और वास्तव में वह नरेन्द्र की उस उन्मुक्त हँसी की भाँति निहायत हसीन है।

एक रात्रि मुझे पीने की तलब लगी। सोचा कई दिन बीत गए। जब से अमरीका आए हैं, शराब नहीं पी। क्या बताएँगे स्वदेश जाकर कि विदेश गए और बिना मदिरापान किए लौट आए? बड़े देहाती हो यार! मैंने अपने दिल की बात नरेन्द्र को बताई। वह ठहरा बेचारा 'टी-टोटलर' आदमी। बोला कि फ़िज़ूल में इन सब झंझटों में मत पड़िए। लेकिन मैं ज़िद पकड़ गया। मैने कहा कि मैं तो पीऊँगा और एक बड़ी व्हिस्की की बोतल अभी खरीदकर लाऊँगा। तुम्हें साथ चलना हो तो चलो, अन्यथा मैं अकेला बाहर जा रहा हूँ। मित्र नरेंद्र ने कहा कि ''अच्छा चलिए, मैं आपके साथ चलता हूँ। अब आप नहीं मानेंगे मैं समझ गया हूँ।''

रात का समय था। लगभग साढ़े आठ बज रहे थे। हम दोनों पैदल ही अपने होटल से हल्की ठंड में किसी वाइन-शॉप की तलाश मे निकल पड़े। लाल-हरी बत्ती के एक-दो चौराहों को पार करते सुनसान फुटपाथों पर तेज़ी से चले जा रहे थे। इस चक्कर में हम पैदल ही कई किलोमीटर निकल आए। अमरीका में सड़कें चौड़ी और आबादी कम थी। रात में और भी सन्नाटा था। नरेंद्र पैंट-शर्ट और एक हल्के स्वेटर में था, जबकि मैंनें एक धारीदार लम्बा गर्म पीला कुर्ता-सफ़ेद पाजामा पहन रखा था। मैंने अपने सिर पर एक गोल-गर्म टोपी भी पहन रखी थी। हम दोनों मित्रों को कद लंबा था। नरेन्द्र की भी नाक लम्बी थी और मेरी भी लम्बी थी। मेरी तो कुछ-कुछ शार्प भी थी।

हम जब पास के वॉलमार्ट और अन्य मार्किटों में गए तो वहाँ की अधिकतर दुकानें बंद हो चुकी थीं। लोगों का आवागमन नगण्यप्रायः हो चला था। हम दोनों तेज़-तेज़ डग भरते आख़िरकार एक वाइनशॉप तक पहुँचे, जो बंद होने वाली थी। नौ बजने को था। एक 'जॉनीवाकर रेडलेबल' व्हिस्की मैंने खरीदी। जेब में पड़े डॉलरों के हिसाब से वही सबसे सस्ती लगी मुझे। और भी अनेक अपरिचित नामों की शराबें वहाँ सजी हुई थीं, किन्तु उन्हें खरीदना मुझे अपने सामान्य ज्ञान की तौहीन लगा।

मदिरा की बोतल खरीदकर हम तेज़ी से अपने ठिकाने की ओर लौट पड़े। वातावरण में ठंडक बढ़ गई थी। होटल तक वापसी में आधा घंटा लगना था। रास्ते में मुझे तेज़ लघुशंका का अनुभव हुआ। आस-पास कहीं न तो कोई 'टॉयलेट' दिखा, न तो उसकी गुंजाइश थी। इसलिए मैंने एक आम हिन्दुस्तानी की तरह एक झाड़ी की तरफ का रुख करना चाहा। इस पर नरेन्द्र ने पीछे से मेरा कॉलर पकड़ लिया और वह कहने लगा- ''न-न...यहाँ यह मैं आपको करने नहीं दूँगा। आप भूल गए? यह संयुक्त राज्य अमरीका है। यहाँ हरदम सिक्योरिटी की अदृश्य आँखें हम पर लगी हुई हैं। एक तो आप इस समय अपनी वेशभूषा से एकदम आतंकवादी दिख रहे हैं। ये लम्बा कुर्ता। ये पायजामा। न तो पैंट, न ही शर्ट। ऊपर से आप यह गोल टोपी भी पहन रखी है। एकदम पूरे ओसामा बिन लादेन दिख रहे हैं। अभी जैसे ही आप किसी झाड़ी में बैठेंगे, यहाँ के सिक्योरिटी वाले सायरन बजाते आ धमकेंगे और आपको धर दबोचेंगे। आपके साथ-साथ वह मुझे भी उठा ले जाएँगे। उसके बाद कम्बख्त कीलें चुभो-चुभोकर न जाने क्या-क्या पूछेंगे? आप कहेंगे कि मैं तो झाड़ी में पेशाब करने बैठा था। ये अमरीकन कहेंगे कि नहीं तुम झूठ बोलते हो...तुम वहाँ निश्चय ही कोई बॉम्ब प्लांट कर रहे थे।...''

और यही सब कहता हुआ नरेंद्र मुझे वहाँ से ढकेलता हुआ बिन लघुशंका निवारण के मेरे कमरे तक सुरक्षित वापस ले आया।

मैंने जॉनीवाकर की बोतल बिस्तर पर फेंकी और भागकर बाथरूम में घुस गया। नरेन्द्र अब भी कमरे में बाहर खड़ा हुआ ज़ोर-ज़ोर से बड़बड़ा रहा था 'और सर! शुक्र मनाइए कि इस बार हम बच गए। वर्ना आज तो आपने मरवा ही दिया होता। भविष्य में ध्यान रखिएगा और आइंदा अमरीका की सड़कों पर कम-से-कम यह 'टेरेरिस्ट' वाली पोशाक पहनकर मेरे साथ मत निकलिएगा।'

❐

RBC Dominion Securities

Tel : (905) 764-3582
Fax : (905) 764-7324
1800-268-6959

Professional Wealth Management Since

Hira Joshi, CFP
Vice President & Investment Advisor

RBC Dominion Securities Inc.
260 East Beaver Creek Road
Suite 500
Richmond Hill,Ontario L4B 3M3
Hira.Joshi@rbc.com

लघुकथा

शादी का शगुन

डॉ.राम निवास मानव

गन्दी-सी पोटली उठाकर वह अन्दर तक चला आया, तो एक साथ कई जनों ने उसे दुरदुरा दिया-'कमज़ात, अन्दर कहाँ चला आ रहा है ! चल, बाहर बैठ।'

'इसकी यह मज़ाल कि शादी के मंडप तक चला आए। कमीन है, तो बाहर बैठे। जो सबको मिलेगा, इसको भी मिल जाएगा।' एक ने कहा।

'माँजी ने सिर चढ़ा रखा है इसको। इसकी औरत यहाँ नौकरानी है, तो इसका मतलब यह नहीं कि सरभंग ही हो जाने दें।' क्रुद्ध होते हुए दूसरे ने कहा।

शादी के शुभ अवसर पर मुझे यह आक्रोश अच्छा नहीं लगा। अतः सबको शान्त करते हुए, समझाने के स्वर में, कहा-'अरे अन्दर आ गया है, तो क्या हो गया ! यह क्या कह रहा है, ज़रा सुन तो लो।'

फिर विनम्रता और प्रेम से मैंने उससे पूछा-'क्यों, क्या बात है भाई ? किससे मिलना है ?'

'दादी सा नै।'अपमान से आहत स्वर में उसने कहा।

'वह तो नहीं हैं, बाज़ार गई हैं।' मैंने बताया-'कब तक लौटेंगी, कुछ कहा नहीं जा सकता।'

'फेर थे यो सामान दादी सा नै दे दीज्यो।' अपनी पोटली मेरी ओर बढ़ाते हुए उसने कहा-'कह दीज्यो, रामेसर देर गयो ला, भागवन्ती नै भूवा सा कै खातर भेज्यो ला।'

दूसरों को यह बात बुरी लगी। कमीन को दें या उससे लें ! पर मैंने, उसका मन रखने के लिए, पोटली रखवा ली।

थोड़ी देर बाद माँजी आ गईं, तो पोटली खोली गई। उसमें सौ-डेढ़ सौ रुपयों की एक सूती साड़ी थी, एक पैकेट चूड़ियाँ थीं, 'मेकअप' का कुछ सामान, जो गाँव में मिल सकता था, वह भी था और साथ में थे शगुन के इक्कीस रुपये।

शगुन का सामान देखकर सबको साँप सूँघ गया था।

❐

बीमार आदमी

रणजीत टाडा

पहला आदमी प्रतिदिन बस स्टॉपेज पर स्कूल के लिए बेटी को छोडने आता। दूसरा आदमी भी अपने बेटे को बस स्टॉपेज पर छोडने आता। दूसरा आदमी पहले आदमी को अदब से नमस्ते कहता। अन्य व्यक्ति जो अपने-अपने बच्चों को बस स्टॉपेज पर छोडने आते, वे भी उस व्यक्ति को विशिष्ट आदमी समझ कर नमस्ते करने लग गए। पहला आदमी किसी सरकारी महकमें में अफसर था तथा दूसरा आदमी उसे जानता था। दूसरे आदमी ने अन्य व्यक्तियों को पहले आदमी के बारे में बताया था।

पहला आदमी आता, सब उसे नमस्ते करते और वह विशिष्ट व्यक्तित्व की मुद्रा धारण कर ख़ामोश खड़ा रहता। उसकी बच्ची चुपचाप गुमसुम सी खड़ी दूसरे बच्चों को हसरत भरी नज़रों से देखती रहती। उसके चेहरे से बचपना प्रायः गायब रहता। दूसरे बच्चे आपस में बतीयाते, चुहलबाजी करते रहते।

एक दिन पहला आदमी नहीं आया। अन्य व्यक्तियों में से किसी ने दूसरे आदमी से पूछा, 'आपके वो जनाब नहीं आए आज?' तो दूसरे आदमी ने अनमने भाव से कहा,

'नहीं आए होंगे।'

'ज़्यादा घुलते-मिलते भी नहीं किसी से?' किसी अन्य ने पूछा तो दूसरे आदमी ने फुसफुसाते हुए कहा, 'बस ऐसे ही हैं।'

अगले दिन पहला आदमी आया। सभी व्यक्तियों ने एक दूसरे को निहारा। किसी ने उस व्यक्ति को नमस्ते नहीं की। दूसरे आदमी ने भी नहीं। पहला आदमी शून्य में ताकता रहा, उसका चेहरा अहं और गुस्से से तमतमा गया। दूसरे दिन भी किसी व्यक्ति ने उसे नमस्ते नहीं किया।

अब कई दिनों से पहला आदमी नहीं आ रहा था। बच्ची को उसका दादा छोडने आता।

एक व्यक्ति ने बच्ची के दादा से पूछा, 'गुड़िया के पापा आजकल नहीं आ रहे?'

'वह बीमार है...कई डॉक्टरों से इलाज करवा लिया, कोई सुधार नहीं है।' बुज़ुर्ग ने लम्बा श्वास खींचकर कहा।

'बीमार तो वह पहले ही था।' एक व्यक्ति ने धीरे से कहा।

'उसे किसी मनोचिकित्सक को दिखाया क्या?'' दूसरे आदमी ने पूछा।

'हमें भी लगता है उसे मनोचिकित्सक को दिखाना होगा। वह बहकी-बहकी बातें करता है। कहता रहता है कि मैं सबको देख लूँगा, वो मेरी पावर नहीं जानते।'बुड़बुड़ाते हुए बुज़ुर्ग के चेहरे पर चिंता की लकीरें साफ़ नज़र आ रही थीं। बच्ची की आँखों में अन्य बच्चों से बतियाने की इच्छा झलक रही थी।

❐

ख़ास आप सबके लिए!

अनिता ललित

गर्म-गर्म गुजिया एक सुंदर प्लेट में सजी हुई मेज़ पर रखी हुई थीं। वह अपने मोबाइल से भिन्न-भिन्न एंगल से उस गुजिया से सजी प्लेट का फ़ोटो खींच रही थी-मगर उसके मन का फ़ोटो नहीं आ रहा था। वह बहुत जल्दी में लग रही थी और इसलिए खीझ भी रही थी। मेज़ के दूसरे कोने में उसका लैपटॉप रखा हुआ था, जिसमें वह बीच-बीच में झाँक कर आती थी और उसकी बेचैनी और भी बढ़ जाती थी। मानो वह किसी 'रेस' में भाग ले रही हो। इतने में उसका बेटा चिंटू, खेलकर आया और इतनी सुंदर गुजिया देखकर उससे रहा न गया और 'अहा ! गुजिया ! मम्मा ! बहुत ज़ोरों की भूख लगी है !' कहकर प्लेट पर झपट पड़ा।

'चटाक्' की आवाज़ के साथ एक और आवाज़ गूँजी। 'दो मिनट का सब्र नहीं है ! कोई मैनर्स नाम की चीज़ भी सीखी है? भुक्खड़ की तरह टूट पड़े बस !'

फिर सन्नाटा छा गया। चिंटू प्लेट तक पहुँच भी न पाया। उसे अपना क़सूर भी न समझ आया। बस अपना गाल सहलाता हुआ, सहम कर ठिठक गया।

वह बड़बड़ाती हुई फिर से गुजिया की प्लेट की फ़ोटो लेने लगी। इतने में एक संकोचभरी आवाज़ आई,'बहू ! अगर तुम खाली हो गई हो तो गुजिया ले आना, भगवान को भोग लगा दें?'

'आती हूँ. सबको अपनी ही पड़ी है ! हुँह !'

कहती हुई वह लैपटॉप पर बैठकर कुछ करने लगी। थोड़ी ही देर में उस 'गुजिया की प्लेट' की फ़ोटो फ़ेसबुक पर लगी हुई थी, और उसका शीर्षक था-'ख़ास आप सबके लिए !'

उस पर ढेरों 'लाइक्स' और 'वाह ! वाह ! गृहिणी हो तो आप जैसी !'-कमेंट्स आने लगे और वह गर्व से फूली नहीं समाई !

❐

पगडंडी से पुस्तकालय तक

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल

कुछ ही समय पहले मैंने उन दोनों को देखा था।

उनमें से एक था, जो एक जटाधारी साधु बाबा के सामने नतमस्तक था और दूसरा एक शाहजी के सम्मुख हाथ जोड़े खड़ा था। मैंने दोनों पर एक उचटती-सी नज़र डाली, कुछ सोचा और आगे बढ़ गया।

यह जून का महीना था, जब दिन लंबे और रातें छोटी हो जाती हैं। जब सूर्य का प्रकाश चौबीस घंटों में निरंतर चौदह घंटे धरती को उजाले के जल से स्नान कराता है और अँधेरे की अवधि कम हो जाती है। मैंने नज़र उठाकर दूर तक देखा। आदमी हो, जानवर हो, घर-द्वार हो, घने पेड़-पौधे हों, सभी की परछाइयाँ सिमटकर उनके आकार-तले छिपने का प्रयास कर रही थीं। आकाश के बीचों-बीच चमकते हुए सूरज ने अंधकार को परिमित कर दिया था। कैसा अद्भुत दृश्य था वह! चारों ओर बिखरे हुए उजाले से सहमकर अंधकार का भूत अपने लिए शरण-स्थली ढूँढ़ने पर विवश हो गया था।

वे दोनों शायद अब भी उसी अवस्था में होंगे। एक साधु बाबा के सामने नतमस्तक और दूसरा शाहजी के सामने हाथ जोड़े हुए। ध्यान आया शहर के अंधकार को तो रोशनी की तेज़ किरणें भेदकर पराजित कर देती हैं, परंतु जो आदमी के भीतर हो, उसकी सोच और मस्तिष्क से जुड़ा हो, तो फिर ज्ञान की रोशनी ही उसे अँधेरे की दासता से मुक्त कर सकती है, कोई और व्यक्ति नहीं। लेकिन अंधकार को अंधविश्वास से दूर करने वाले लोग... मैंने क्षण-भर उनके विषय में सोचा और आगे बढ़ आया।

पीछे मुड़कर देखता हूँ तो दूर तक मेरे पीछे सर्प की तरह बल खाई हुई पगडंडी बिछी थी। पगडंडियों पर यात्रियों के पद-चिह्न थे। मार्ग के दोनों ओर हरियाली थी और जून की इस भरी दोपहर में पंछियों ने चहचहाना छोड़कर वृक्षों की टहनियों पर अपना बसेरा कर लिया था।

संपादक
शोध दिशा
16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ.प्र.)

मैं उन दोनों व्यक्तियों को जिस स्थान पर छोड़ आया था, अब उससे काफ़ी दूर हूँ। लेकिन मुझे लगता है कि वे अब भी मेरे साथ-साथ हैं, एक समस्या बने हुए, एक प्रश्न का रूप धारण किए हुए। मैं कल्पना करता हूँ, उस निरीह मानव की, जो ज्ञान और श्रम के बल पर संकट का समाधान न पाते हुए उन तथाकथित चमत्कारों की भेंट चढ़ जाता है, जिन पर वह विश्वास तो करता है, लेकिन जिनके संबंध में वह जानता कुछ भी नहीं है।

अनहोनी चीज़ों पर विश्वास करना शायद उसकी मज़बूरी है। भविष्य के गर्भ में क्या है? वह नहीं जानता। उसके दुःख कैसे दूर होंगे, वह इस बात से परिचित नहीं है। विपत्तियों और संकटों की जिस दलदल में वह धँसा खड़ा है, उससे उभरने की विधि क्या होगी, उसे ज्ञात नहीं है। तब वह क्या करे? कहाँ जाए? किससे अपने दुःख का निवारण कराए? विवेक, श्रम, बुद्धि, कर्म और प्रयास की सारी बैसाखियाँ उसका साथ छोड़ गई हैं।

तब...? तब वह क्या करे?

दोनों व्यक्ति फिर मेरी कल्पना के पट पर उभर आए हैं। मैं उनसे पूछना चाहता हूँ, वे अपने ही जैसे एक अन्य व्यक्ति के सम्मुख यों नतमस्तक क्यों हैं? क्या कुछ मंत्रों का उच्चारण करने वाले सचमुच भविष्य के ज्ञाता हैं, क्या सचमुच वे उन घटनाओं को जानते हैं, जो भविष्य में घटने वाली हैं और क्या वास्तव में इतनी शक्ति उनमें है कि वे उन अभावों की, उन संकटों की बेड़ियाँ तोड़कर फेंक दें, जिन्होंने भाग्य की परिभाषा में स्थापित होकर निरीह मानव को अपनी जकड़ में ले लिया है?

जून की इस भरी दोपहर में मैं अपनी इस यात्रा में अकेला हूँ, लेकिन मुझे लगता है कि वे दोनों भी मेरे साथ-साथ हैं। दाएँ और बाएँ, जो अपने विवेक और बुद्धि को उसी स्थान पर छोड़ आए हैं जहाँ 'बाबाओं' के डेरे थे।

मैं कुछ और आगे बढ़ आया हूँ। नज़र उठाकर दोनों की ओर देखता हूँ। मुझे लगता है, जैसे एक इतिहास इनकी मुखाकृति पर लिखा है। मुझे यह भी लगता है कि जैसे मैं इस इतिहास का एक छोटा-सा पाठक हूँ, और विश्व के उस पहले मानव से वार्ता कर रहा हूँ, जिसने फ़ौलाद की तरह मज़बूत अपनी भुजाओं से पहली बार धरती की छाती चीरी थी तथा दिन-रात ढेरों पसीना बहाकर उस पर खाद्यान्न की फ़सल उगाई थी-वह ख़ुश था कि उसने अपना भविष्य सुरक्षित कर लिया है।

लेकिन...?

लेकिन फ़सल अभी खेत से उसके घर तक नहीं आ पाई थी कि अचानक पूरब की ओर से घनघोर बादल उठा, जिसने चारों ओर से आकाश के असीम फैलाव को ढाँप लिया। भयभीत मानव ने सहमकर आकाश की ओर देखा। उसे क्रोध आया प्रकृति की इस तानाशाही पर।

यह बरसात का मौसम नहीं था। फिर वर्षा क्यों? बादल क्यों, लेकिन इस 'क्यों' का उत्तर देने वाला दूर तक कोई नहीं था। वह सोचता रहा, सोचता रहा...और फिर देखते-ही-देखते बिजलियाँ आसमान के बीच कड़कने लगीं, बादलों ने सूरज को अपने भारी परदों के पीछे छिपा लिया। भरी दोपहर में रात्रि की कालिमा छा गई। गरज के साथ ओले गिरे, इतने की धरती दूर तक बर्फ़ के ढेर में परिवर्तित हो गई। कड़े परिश्रम से फ़सल उगाने वाला मानव ढूँढता रह गया कि उसका खेत कहाँ था, खलिहान कहाँ था।

तब वह झुक गया उन शक्तियों के सामने, जो उसके ज्ञान और उसकी पहुँच के बाहर थीं। उसे लगा कि जैसे धरती के सीने को अपनी ताक़त से खँगाल देने वाले हाथ, विवश हैं उन दैवी प्रकोपों को रोक पाने में, जो न जाने कहाँ और किन परतों में निहित हैं

वह ढूँढ़ने निकला था अपने बचाव का एक रास्ता, अपनी सुरक्षा का एक उपाय। भविष्य और भाग्य के उन ख़तरों से अपने-आपको मुक्त करने का मार्ग, जिनसे वह परिचित नहीं था और जिन तक उसके ज्ञान ने अभी अपनी कमंद (रस्सी की सीढ़ी) नहीं फेंकी थी।

ज्ञान और खोज की यात्रा में शायद यही वह पड़ाव था, जब उसकी भेंट हुई थी, उन 'जटाधारी बाबाओं' से जहाँ अभी-अभी मैं उन दो व्यक्तियों को छोड़ आया हूँ, नतमस्तक और भयभीत!

मैं उस बेमौसम ओलावृष्टि की कल्पना करता हूँ, जिसने ज्ञान के विश्वास को अज्ञानता की भेंट चढ़ाया था। तभी मेरी दृष्टि उस किसान की ओर उठ जाती है, जो खेत में सिर झुकाए बैठा है, बिल्कुल निराश और घबराया हुआ। उसका सिंचाई करने वाला इंजन किसी यांत्रिक ख़राबी के कारण ठप्प हो गया है। पानी के अभाव में खेत मुरझा गया है। ज़बरदस्त सूखा पड़ा है।

ओलावृष्टि से प्रभावित हुए उस पहले किसान और भयंकर सूखे से पीड़ित इस दूसरे किसान के बीच हज़ारों-लाखों साल की दूरी है, लेकिन भाग्य की डोर दोनों के हाथ में है; पर भाग्य के फ़ैसले को चुनौती देने का उनके पास कोई उपाय नहीं है।

बस बाबा हैं और शाहजी हैं।

मैं पिछले दो वर्ष से पड़ रहे भयंकर सूखे के प्रकोप से जूझते हुए दुर्बल किसानों की कल्पना करता हूँ और विचार आता है, उस सत्तातंत्र का, जिसने दैवी प्रकोपों से लड़ने का वैज्ञानिक आधार पैदा नहीं किया है और जो झुक गई है, उनके सामने,

जो तांत्रिक विद्या में दक्ष हैं, जो आंतरिक शक्ति से भविष्य का रूप मोड़ सकते हैं, जो शब्दों के बल पर ऐसे चमत्कार दिखा सकते हैं, जो विज्ञान के बस में नहीं हैं।

यह मथुरा है, यहाँ बहुत बड़े वर्षा-यज्ञ की तैयारी हो रही है, सत्तातंत्र की देखरेख में।

सारा देश 20 वीं शताब्दी के इस भयंकरतम सूखे की त्रासदी से चिंतित है। खेत बंजर-मैदानों में परिवर्तित हो गए हैं। ज़मीन के भीतर पानी का स्तर इतना गिर गया है कि नलकूप अपने कंठों से पानी उगलने में असफल हो रहे हैं। आकाश पर दूर-दूर तक बादल का कोई टुकड़ा नहीं है। धरती सूखे की मार सह-सहकर जगह-जगह से चटख गई है। किसान हाथ-पर-हाथ धरे बैठा है और निराशापूर्ण दृष्टि से आकाश की ओर निहार रहा है। समाचार-पत्र ख़बरें प्रकाशित कर रहे हैं कि गुजरात, राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा अन्य कई स्थानों पर हज़ारों पशु चारे के अभाव में या तो मर गए या उनके स्वामियों ने विवश होकर उन्हें भूखा मरने के लिए अपने खूँटे से खोल दिया। उस समय मेरा मन पीड़ा से भर गया, जब किसी समाचार-पत्र में मैंने पढ़ा कि एक किसान महिला ने अपने अबोध बालक को गिनती के चंद टकों में इसलिए बेच दिया कि पेट की आग बुझाने के लिए उसके पास रोटी नहीं थी और रोटी जुटाने के साधन अकाल का दानव निगल चुका था।

सोचता हूँ, सभ्यता की इतनी लंबी यात्रा के बाद भी मनुष्य का जीवन प्रकृति की दया पर निर्भर है। आदमी जो आकाश से पाताल तक अपनी विजय-पताका फहराता हुआ ज्ञान और विज्ञान के शिखर तक पहुँच रहा है, इतना भी नहीं जानता कि यदि मानसूनी हवाएँ उससे रूठ जाएँ या अपना मार्ग बदल लें तो प्रकृति की इस बड़ी चुनौती का सामना वह कैसे कर सकता है।

विवशता आदमी को किन रास्तों की तरफ़ धकेल देती है, यह सत्ता के सिंहासन पर बैठे उन लोगों से पूछा जाना चाहिए, जो विज्ञान से अधिक भरोसा करते हैं

उस अंधविश्वास पर, जिसकी नागफनी जीवन के मरुस्थल में आदमी की अज्ञानता ने बोयी थी, और जिसकी पकड़ में एक साधारण आदमी ही नहीं, शक्ति-संपन्न शासनतंत्र भी है।

हाँ तो बात मथुरा की थी।

आइए मथुरा चलें-

तंत्रविद्या में दक्ष कुछ विख्यात 'बाबाओं' ने दावा किया है कि वे तांत्रिक शक्ति से उस समय भी वर्षा कराने में सफल हो सकते हैं, जब बरसात का मौसम दूर हो, और देश के अधिकतर भागों में भीषण सूखा पड़ रहा हो।

सरकार के अधीन कार्यरत विज्ञान एवं तकनीकी विभाग इस दावे पर विश्वास ले आया है।

यह मई का अत्यंत गर्म और तपता हुआ महीना है। वर्षा ऋतु आरंभ होने में अभी 25 दिन शेष हैं। दावा किया गया है कि एक विशाल यज्ञ के परिणामस्वरूप 48 से 72 घंटों के भीतर मथुरा के आस-पास कम-से-कम 10 किलोमीटर के क्षेत्र में मूसलाधार वर्षा होगी और धरती पानी से भर जाएगी।

इस कार्यक्रम के लिए विज्ञान एवं तकनीकी विभाग ने अनुदान स्वीकृत किया। शेष धन जनता से दान के रूप में एकत्र किया गया। तंत्रविद्या पर विश्वास करने वाले देश के करोड़ों लोगों की आँखें मथुरा पर लगी हैं। यज्ञ की सारी तैयारियाँ पूर्ण हो चुकी हैं। बीसों क्विंटल लकड़ी, चंदन, शुद्ध घी और हज़ारों रुपये की अन्य सामग्री का भंडार यज्ञस्थल पर इकट्ठा हो गया है।

वेद-मंत्रों के बीच तांत्रिक यज्ञ का शुभारंभ कर चुके हैं। सुगंधित धुआँ आकाश की ओर लपक रहा है। वैज्ञानिक वायुमंडल में संभावित परिवर्तन का अध्ययन करने के लिए अनुसंधान-कक्षों में उपस्थित हैं। उनके हाथ में दूरबीन हैं और वे यंत्र हैं, जिनसे वायुमंडल में होने वाले छोटे-से-छोटे परिवर्तन को भी जाँचा-परखा जा सकता है।

हज़ारों-लाखों लोगों की भीड़ यज्ञ-स्थल के चारों ओर उमड़ पड़ी है। यही वे सब लोग हैं, जिन्हें सूखे के दानव ने तोड़कर रख दिया था। इनकी आँखों में आशा की ज्योति है और तांत्रिकों की आंतरिक शक्ति पर एक ऐसा अटूट विश्वास, जिसका आधार-स्तंभ अज्ञानता की धरती पर टिका होता है।

धुएँ के बादल यज्ञ-कुंड से उठ-उठकर आकाश की ओर लपक रहे हैं। लेकिन अभी तो यह मात्र धुएँ का आवरण है, इनमें मानसूनी हवाओं का जल कब प्रविष्ट होगा? इसकी चिंता सबको है, मुझे भी, वैज्ञानिकों को भी।

पहले चौबीस घंटे बीते, फिर अड़तालीस और अंत में 72 भी, लेकिन यज्ञ का धुआँ बादल नहीं बन सका। धरती प्यासी की प्यासी रही। हज़ारों रुपए की सामग्री और हज़ारों-लाखों लोगों की आशाएँ यज्ञ की आग में जलकर भस्म हो गईं, लेकिन जो चीज़ नहीं जल सकी, वह केवल आस्था और विश्वास का वह लोहा था, जो न मुड़ता है, न गलता है और जो शताब्दियों से निराश और असहाय लोगों का कवच बना हुआ है।

विश्वास की जोत लिये जो लोग मथुरा आए थे, वे सब तंत्रविद्या को नहीं, कलयुग के स्वयंभू एवं पाखंडी तांत्रिकों को दोष देकर वापस घर लौट चुके हैं। आइए हम भी घर चलते हैं।

अब फिर उसी पगडंडी पर अकेला हूँ, जहाँ से कुछ दूर पहले एक स्थान पर मैंने उन दो व्यक्तियों को देखा था, जिनमें से एक जटाधारी साधु बाबा के सामने नतमस्तक था और दूसरा 'शाहजी' के सम्मुख। मुझे लगता है, वे या उनकी परछाइयाँ अब भी मेरे साथ हैं। जी चाहता है, उनसे पूछूँ कि तुम किस दुःख के निवारण-हेतु आए हो? वह कौन-सी पीड़ा है जो तुम्हें इस स्थान पर खींच लाई है जहाँ तर्क नहीं, विश्वास की सत्ता है और विश्वास का सूत्र उन व्यक्तियों के हाथ में है, जिनका ध्येय जनसेवा नहीं, स्वार्थ है, व्यवसाय है। ये वे लोग हैं, जो पिता और परमेश्वर दोनों को एक-साथ बेच देने पर भी लज्जित नहीं होते।

सोचता हूँ, लौट जाऊँ और उन दोनों उत्पीड़ित व्यक्तियों को अपने साथ खींच लाऊँ जो आशा और विश्वास की रोशनी लेकर आए थे, लेकिन भटक जाने वाले हैं, अंधविश्वास की लंबी अँधेरी गलियों में। मुड़कर पीछे देखता हूँ, लेकिन पाँव आगे बढ़ जाते हैं। पगडंडी-पगडंडी चलता हुआ दूर निकल आया हूँ और अब एक ऐसे स्थान हूँ, जहाँ रायपुर (बिहार) के एक गाँव की आबादी अपने पाँच सपूतों के शवों पर आँसू बहा रही है।

मैं खड़ा हूँ एक तंत्र-शिक्षा विद्यालय के सम्मुख। विद्यालय का संचालक और इन पाँच मृत युवकों का गुरु फ़रार है, और पुलिस उसकी खोज में लगी है। दुःख और आश्चर्य से विद्यालय की ओर देखता हूँ, सन्नाटा-ही-सन्नाटा है, श्मशान-जैसा।

कारण जानना चाहता हूँ, तो अख़बार के पन्ने अचानक मेरे स्मृति-पटल पर फैल जाते हैं।

वह जो एक प्राइमरी विद्यालय में अध्यापक था, एक शिक्षा-संस्थान खोलता है तंत्र-विद्या सिखाने के लिए, गाँव के सीधे-सादे युवक उसकी ओर खिंचने लगे हैं।

यह भारत है! जहाँ दीन-धर्म के नाम पर कुछ भी किया जा सकता है। न किसी से अनुमति लेने की आवश्यकता, न किसी क़ानून का भय, न प्रमाण-पत्र की ज़रूरत, न किसी योग्यता की। लोग धर्म के नाम पर विद्यालय खोल सकते हैं, प्रशिक्षण-केंद्र स्थापित कर सकते हैं, सीधी-सादी जनता को मूर्ख बना सकते हैं और तो और रूपकुँवर जैसी मासूम युवतियों को सती की दुहाई देकर आग की भेंट चढ़ा सकते हैं। कुछ भी किया जा सकता है। क़ानून की आँख तो उस वक़्त खुलती है जब घटनाएँ घट चुकी होती हैं और लोग भिन्न-भिन्न प्रकार के अंधविश्वास का शिकार हो चुके होते हैं।

अगर मैं भूलता नहीं हूँ तो शायद उसका नाम अजीत साहू था। अपनी तांत्रिक शक्ति से निर्जीव को जीवित कर देने का दावा करने वाला साहू! गुरु को देवता की तरह पूजने वाले शिष्य आँख मूँदकर विश्वास ले आए उसकी आंतरिक शक्ति पर,

और फिर एक दिन एक युवक ने विषपान किया, अगले दिन दूसरे ने-फिर तीसरे ने...चौथे ने रेलवे लाइन पर कटकर जान दी...पाँचवें ने फाँसी लगाकर अपनी जीवन लीला-समाप्त कर ली।

मृत्यु की पहली तीन घटनाओं को प्रशासन आत्महत्या के साधारण मामले समझता रहा, लेकिन जब यह क्रम पाँच तक पहुँचा, तो प्रशासन के कान खड़े हुए। पुलिस हरकत में आई। जाँच-पड़ताल हुई। तब पाँच के पाँच शव बरामद हुए, जंगल में बनाए गए एक स्थान से शवों के पास मिठाई, नारियल एवं हवन की अन्य सामग्री ज्यों-की-त्यों रखी थी और गुरु फ़रार था। वह अपनी तंत्रविद्या से किसी को भी जीवित नहीं कर सका था।

मेरे भीतर की चीख बार-बार मुझसे पूछती है कि उन अभागे परिवारों के घरों का अंधकार अब कौन दूर करेगा, जिनके दीपक अजीतसाहू ने बुझा दिए? उन रोती-बिलखती माताओं के हृदय कैसे शांत होंगे, जिनकी ममता के अधखिले फूल अंधविश्वास की भेंट चढ़ गए? उन बहनों की आँखों से कौन आँसू पोंछेगा, जिनके सम्मान की रक्षा करने वाले हाथ मौत के दानव ने चबा डाले? हो सकता है क़ानून आत्महत्या के लिए प्रेरित करने वाले साहू को मृत्युदंड दे...

लेकिन यहाँ एक साहू नहीं, हज़ारों-लाखों साहू हैं

और हम विश्वास कर रहे हैं उन पाखंडियों पर, उन निराधार विश्वासों पर, जिनका संबंध सत्य से नहीं, भ्रम और धोखे से है।

मैं रायपुर के निकट स्थित उस गाँव से भी लौट आया हूँ, जहाँ आज भी अपने पाँच लाड़लों की अकाल मृत्यु पर चीत्कार और कोहराम मचा है। जहाँ आज भी माताओं की आँखों में आँसू हैं और पिता निराशा का बोझ लिए सिर झुकाए बैठे हैं। उनकी कमर टूट गई है और भुजाओं को अधरंग मार गया है।

मैं घबराकर इस गाँव से भागता हूँ, भागता ही जाता हूँ, लेकिन नियति मुझे एक ऐसे स्थान पर ले आई है, जो वीरान है, जहाँ क़ब्रों के नाम पर मिट्टी के कुछ ढेर बिखरे पड़े हैं। आँख खोलकर देखता हूँ तो मैं स्वयं को भी एक क़ब्र के किनारे खड़ा पाता हूँ। भूली-बिसरी यादें मस्तिष्क पर हमला करती हैं, अखबार का एक और पन्ना मेरे सम्मुख लहराता है और मुझे याद आती है वह महिला, जो एक 'शाहजी' के बताए टोटके की भेंट चढ़ गई।

वह निःसंतान थी, पर स्तनों में ममता का ज्वार ठाठें मार रहा था। कोई उपाय नहीं था उसके पास। ज्ञान की रोशनी पहुँची नहीं थी उस तक। जो कुछ पहुँचा था उस तक, वह एक आस्था थी, एक विश्वास था उन लोगों के प्रति जिन्होंने उस समाज में अपनी एक सत्ता स्थापित कर ली थी, जिस समाज की आर्थिक सत्ता और व्यवस्था ने पुरुषों और महिलाओं तक सच और ज्ञान के प्रकाश को पहुँचने नहीं दिया था।

आख़िर मातृत्व की आग उसे खींच ले गई शाहजी के चरणों में, जहाँ से वह एक उम्मीद, एक आशा लेकर आई। उसे विश्वास था कि चालीस दिन का व्रत और दुआओं के बोल और 'शाहजी' के आशीर्वाद निःसंदेह उसकी मनोकामना पूरी कर सकते हैं, उसकी गोद हरी हो सकती है।

दसवें दिन ही उसका वज़न इतना घट गया कि वह पलंग से लग गई। रक्त की कमी और दुर्बलता बढ़ती गई, बढ़ती गई और इससे पूर्व कि वह अपने व्रत के अंतिम दिन तक पहुँचती, सुनसान जंगल में स्थित क़ब्रिस्तान के एक गढडे में सुला दी गई।

मैंने दुःख की मुद्रा में कब्र की मिट्टी उठाई। उसे सूँघा। मुझे लगा, जैसे इसमें झूठी आस्था और अज्ञानता की दुर्गंध आ रही हो। मैंने घबराकर वह मिट्टी फेंक दी और फिर उस पगडंडी पर चला आया, जहाँ से कुछ दूर पहले मैंने उन दो व्यक्तियों को छोड़ा था, जिनमें से एक नतमस्तक था किसी जटाधारी साधु बाबा के सामने और दूसरा हाथ जोड़े खड़ा था शाहजी के चरणों में!

सोचता हूँ, इनका अंत क्या होगा? क्या इनके दुःख दूर होंगे, अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर सकेंगे ये? मुझे कोई उत्तर नहीं मिलता। हाँ, विशाल जीवन का एक मंच मेरे सामने है, जहाँ दिन-रात यह नाटक हो रहा है। पात्र नाच रहे हैं, उन्हें नचाया जा रहा है, भ्रमों और अंधविश्वासों के इशारे पर...

मेरा दुःख बढ़ जाता है। मेरी घबराहट बढ़ जाती है...। मैं भाग उठता हूँ उस पगडंडी से; और शरण लेता हूँ उस पुस्तकालय में, जहाँ से मुझे ज्ञान और सत्य की रोशनी मिली थी, जिसने अंधकार से लड़ने के लिए प्रेरित किया था मुझे...

मेरे चारों ओर लेखक हैं, कवि हैं, नाटककार हैं... विचारक हैं, दार्शनिक हैं...मैं उनकी ओर बढ़ता हूँ और सज जाता है फिर एक और मंच...

इस मंच पर भ्रमों और अंधविश्वासों के मारे पात्र तो हैं, जो अपनी-अपनी भूमिकाएँ रोचक ढंग से निभा रहे हैं, लेकिन मंच पर वह रोशनी तेज़ है, वह प्रकाश बहुत तीव्र है, जो अज्ञानता को ज्ञान को ज्ञान में बदलेगा, धोखे को सम्य की शक्ति से पराजित करेगा। मुझे विश्वास है, अटूट और अटल विश्वास।

❐

SAI SEWA CANADA

(A Registered Canadian Charity)

Address: 2750,14th Avenue,Suite 201,Markham,ON ,LEROB6
Phone : (905)944-0370 Fax : (905) 944-0372
Charity Number : 81980 4857 RR0001

Helping To Uplift Economically and Socially Deprived Illiterate Masses Of India

Thank You For You Kind Donation to **Sai Sewa Canada**.Your Generous Contribution Will Help The Needy and the Oppressed to win The Battle Against. Lack of Education And Shelter, Disease Ignorance And Despair.

Your Official Receipt for Income Tax Purposes Is Enclosed
Thank You , Once Again, For Supporting This Noble Cause And For Your Anticipated Continuous Support.

Sincerely Yours,
Narinder Lal
416-391-4545

Service To Humanity

डेनमार्क में हिन्दी व भारतीय संस्कृति का स्वरूप

अर्चना पैन्यूली

डेनमार्क में रह रही अर्चना पेन्यूली के देश-विदेश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में हिन्दी /अंग्रेज़ी में कहानियाँ, लेख, कविताएँ, यात्रा संस्मरण, अनुवाद व साक्षात्कार प्रकाशित हुए हैं और डेनिश लेखिका कारेन ब्लिकशन की रचना का हिन्दी में रूपांतरण, नया ज्ञानोदय में प्रकाशित। परिवर्तन, वेयर डू आई बिलांग दो उपन्यास और कई कहानियाँ अर्चना जी ने लिखी हैं। अनगिनत सम्मानों से सम्मानित संप्रति इंटरनेशनल स्कूल, डेनमार्क में अध्यापिका हैं।
सम्पर्कः Bryggergade 6,2,4,2100
Copenhagen, DENMARK
Phone No:- +45 71334214
Email: apainuly@gmail.com
Website: www.archanap.com

किसी समाज, संस्कृति, परिवेश को समझने व स्रोत सामग्री के अध्ययन के लिये भाषाई दक्षता महत्त्वपूर्ण है। मीडिया, समाज व दुनिया में उच्च व्यापार के लिए क्षेत्रीय अंतदृर्ष्टि का होना अनिवार्य है, जिसमें स्थानीय भाषा की जानकारी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सो विभिन्न क्षेत्रों की भाषाओं में एक विशेषज्ञता हासिल और विकसित करने की हमेशा से मांग रही है। यह अलग-अलग वर्गों वं परिवेश को समझने में और भौगोलिक क्षेत्र की दृष्टी से भी प्रासंगिक है।

हिन्दी क्यों सीखे?

हरेक देश की एक निजी भाषा होती है। ऐसे में कोई भी भाषा चाहे वह कितनी ही विशिष्ट क्यों न हो विदेशी भूमि में बहुत अधिक महत्त्व प्राप्त नहीं कर सकती। फिर हम हिदुस्तानी तो विभिन्न भाषाओं में बँटे हैं। पूरा हिन्दुस्तान भाषाओं के आधार पर विभाजित है। एक बहुभाषीय देश होने के कारण हिन्दी को देश की राजभाषा बनने में भी संघर्ष का सामना करना पड़ा।

फिर विदेशों में जिनका स्थानान्तरण हुआ उनमें पंजाबी, गुजराती बहुतायत में है। वे अपनी भाषा पंजाबी व गुजराती मानते हैं। बंगाल व दक्षिण भारतीयों की अपनी अलग भाषाएँ हैं। यहाँ तक की हिन्दी भाषी भी हिन्दी पर उतने निर्भर नहीं रहते जितने कि चीन, जापान, स्पेन, पुर्तगाल व अरब आदि देशों के नागरिक अपनी भाषाओं पर रहते हैं। यह देखने में आया कि डेनमार्क में अस्पताल जैसे केन्द्रों में मरीज व डाक्टर के मध्य संदेश-संवाद के

लिये चीनी अनुवादक हैं। अरेबिक अनुवादक हैं। यहाँ तक कि पंजाबी व उर्दू अनुवादक हैं। मगर हिन्दी अनुवादक की कोई आवश्यकता नहीं। इमीग्रेशन आदि राजसेवा विभागों में सूचनाएँ विश्व की कई भाषाओं में अनूदित रहती है, हिन्दी को छोड़ कर। जब किसी अंतर्राष्ट्रीय सूचना पट पर विश्व की प्रमुख भाषाओं का जिक्र होता है, वहाँ हिंदी का नाम अक्सर नहीं होता।

क्यों लोग हिन्दी सीखें ? एक मल्टीनेशनल कंपनी के किसी कार्यकर्ता को अगर अपने कार्य के सिलसिले में हिन्दुस्तान जाना है, तो उसे हिन्दी सीखने की क्या आवश्यकता? वहाँ सब नगरीय लोग अंग्रेज़ी जानते हैं। वहाँ सरकारी संस्थानों से संचार-संवाद करने लिए स्थानीय भाषा की कोई आवश्यकता नहीं। अंग्रेज़ी से काम चल जाता है। इन सब तथ्यों ने हिन्दी के उपयोग को सीमित किया है। विश्व में इतनी बड़ी तादाद में हिन्दी बोलने वाले होने के बावजूद हिन्दी भाषा सीखना एक उतना बड़ा व्यापार नहीं है, जितना कि चाइनीज़, रशियन व अरबियन आदि भाषा सीखना।

हिन्दी-अनौपचारिक रूप

किसी देश की भाषा की मांग विश्व में उस देश की राष्ट्रीय शक्ति को चित्रित करती है। हिन्दी हमारी मातृभाषा ही नहीं, अपितु यह हमारी संस्कृति और परम्पराओं की सम्वाहिका भी है। अगर हम हिन्दी के स्वरूप को वर्णमाला के स्तर से हटा कर एक विस्तृत रूप में परखे-जैसे पौराणिक कथाएँ, धार्मिक ग्रन्थ, आध्यात्म, दर्शन, नृत्य नाट्य, संगीत, भोजन इत्यादि तो हिन्दी का एक परिवेश विदेश में अवश्य नज़र आता है। हिन्दी के वैश्विक प्रचार-प्रसार में देश-विदेश में होने वाले सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक क्रियाकलापों एवम् गतिविधियों की अहम भूमिका है। इस सन्दर्भ में हिन्दी सिनेमा व संगीत का योगदान भी उल्लेखनीय है। बॉलीवुड फिल्में हिन्दी के अस्तित्व को बनाए हुए है। विदेशों में आए दिन आयोजित होते भारतीय धार्मिक, आध्यात्मिक व सांस्कृतिक कार्यक्रमों को देख कर महसूस होता है कि हिन्दी विदेशों में निःसन्देह जीवित है।

आप्रवासियों द्वारा हिन्दी व भारतीय संस्कृति की संरक्षणता

विश्व भर में हिन्दुस्तान एक ऐसा देश है, जहाँ से काफी बड़ी तादाद में हर वर्ग के लोग दूसरें देशों में प्रवास करते हैं। आज भूमण्डल के हर देश में भारतवासी बसे हैं। हिन्दुस्तानियों ने जिन भी देशों में प्रवास किया, वहाँ अपनी भारतीय संस्कृति व धार्मिक प्रथाओं को सहजने की भरसक कोशिश की। विश्व का अगर एक छोटा सा क्षेत्र स्केन्डिनेवियन देशों की बात करें तो आकड़े बताते हैं कि सभी स्केन्डिनेवियन देशों में हिन्दी समितियाँ, हिन्दी सांस्कृतिक व धार्मिक संस्थाएँ हैं; जो समय-समय पर भारतीय तीज-त्योहारों, राष्ट्रीय दिवसों व अन्य अवसरों पर सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित करती रहती हैं। इन कार्यक्रमों में हिन्दी भाषा का ही उपयोग होता है। डेनमार्क में नाना प्रकार की भारतीय संस्थाएँ हैं : इंडियन डेनिश सोसाइटी, ऑल इंडियन कल्चरल सोसाइटी डेनमार्क, इंडियंस इन डेनमार्क, मिलाप घर, डेनमार्क तेलुगु एसोसिएसन, बंगाली एसोसिएशन, जो भारतीय त्योहारों व राष्ट्रीय दिवसों पर कार्यक्रम आयोजित कर विदेशों में बसे भारतीयों को अपनी जड़ों से जोड़े रखती हैं और भारतीय संस्कृति को सहेजे हुए हैं।

कुछ उल्लेखनीय बिंदु निम्न प्रकार है:

कोपनहेगन में कुछ संस्थाएँ व व्यक्ति हैं, जो भारतीय शास्त्रीय नृत्य व हिन्दी सिनेमा गीतों पर नृत्य पाठशाला चला रहे हैं।उदाहरण के तौर पर ब्रिटिश महिला लूसी बेनन ओडीसी व हिन्दी सिनेमा पर नृत्य पाठशाला चलाती है। डेनिश महिला ऐनेमेटे कार्पन, प्रसिडेंट ऑफ इडियन म्यूजिक सोसाइटी भारतीय संगीत पर पाठशाला चला रही है। श्री मनबीर सिंह की अध्यक्षता में चलने वाले ऐशियन म्यूज़िक सोसाइटी स्कूल में काफी देशी-विदेशी, हिन्दी-अहिन्दी भाषी भारतीय वाद्य व संगीत सीखने आते हैं। इस संस्था ने डेनमार्क में भारतीय शस्त्रीय संगीत को जिन्दा रखा है। शास्त्रीय संगीत के रागों पर जब अफगानी, पोलिश व ब्रिटिश अंग्रेज़ नर्तकियाँ मंचों पर थिरकती हैं तो दर्शक रीझ जाते हैं। डेनिस थोमसन की धमाका भांगड़ा टीम दीवाली, होली व अन्य भारतीय उत्सवों में रंगमंच पर नृत्य प्रस्तुत कर दर्शकों को भावविभोर कर देते हैं।

बॉलीवुड गीत व नृत्य बाहर विदेशों में मशहूर हैं। इधर-उधर आयोजित होने वाले कार्यक्रमों में जब हिन्दी गानों पर स्थानीय कलाकार भी अपनी कलाबाजी दिखाते हैं तो दर्शक ताली व सीटी बजाना नहीं छोड़ते। बॉम्बय रोकर्स में गोरे डेनिश नवयुवकों को हिन्दी गीत गाते देख लोग अपनी जगह से उठ कर झूमने लगते है। राजस्थान के मुरारी लाल हरेक वर्ष डेनमार्क पधार कर भारतीय संगीत की क्लासेज देते हैं और गर्मियों के सुहावने मौसम में शहर के विशाल व मशहूर पार्क में भारतीय लोक गीतों व बॉलीवुड गीतों पर लोगों को नृत्य सिखाते हैं।यहाँ तक कि कई विदेशी सामाजिक व सांस्कृतिक संस्थाएँ व कोपनहेगन यूनिवर्सिटी जब तब अपने कार्यक्रमों में भारतीय स्थानीय कलाकारों को आमंत्रित करती हैं। भारतीय लोक गीत, शास्त्रीय संगीत व फिल्मी गानों पर नृत्य प्रस्तुत करने के लिए। हिन्दी गाने व नृत्य दर्शकों द्वारा अति सराहें भी जाते हैं। डेनिश महिला अनिता लर्चे पंजाबी व बॉलीवुड गीत गाने के लिये डेनमार्क में अति प्रचलित है।

मंदिरों में धार्मिक क्रियाकलाप निरन्तर चलते रहते हैं। मंदिरों से वितरित होने वाले सभी पत्र विशुद्ध हिन्दी भाषा में ही निकलते हैं। उदाहरण के तौर पर डेनमार्क के भारतीय मंदिर में हरेक वर्ष रामायण, महाभारत, दुर्गा अष्टमी पर हिन्दी में प्रवचन आयोजित होते रहते हैं। भारतीय समाज की पुरानी व नई पीढ़ी भारी संख्या में सुनने आती हैं। यहाँ भजन-कीर्तन, पूजा-पाठ सब हिन्दी में होता है।

इनके आलावा विदेशों में भारतीय प्रभाव की कई आध्यात्मिक संस्थाएँ हैं, जोकि विदेशियों को प्रभावित करती हैं। आर्ट ऑफ़ लिविंग, सहज मार्ग, माँ आनन्दमयी आदि। योगा व मेडिटेशन का महत्त्व दिन पर दिन बढ़ रहा है। आंतरिक शक्ति व शान्ति की कामना ने भारतीय आध्यात्म को पश्चिम में बड़ी लोकप्रियता दिलवाई है। हिन्दी व भारतीय संस्कृति का प्रभाव इन केन्द्रों में स्वतः ही देखने को मिलता है।

विदेशों में हिन्दी का प्रचार करने का श्रेय हिन्दी फिल्मों को काफी कुछ जाता है। बॉलीवुड फिल्में, जोकि हिन्दी सिनेमा के नाम से भी जानी जाती है, का विदेशों में काफी बाज़ार है। अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बंगलादेश, खाड़ी प्रदेश, इज़राइल, रूस व लेटिन अमेरिका में हिन्दी फिल्में पहले से ही लोकप्रिय रही हैं। अब डेनमार्क व अन्य स्केन्डिनेवियन देश, स्वीडन, नार्वे आदि देशों में भी इनकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। लगभग सभी स्केन्डिनेवियन पुस्तकालयों में बॉलीवुड फ़िल्मी कैसेट व डी.वी.डीज़ रहती हैं; जिन्हें लोग किराए पर ले सकते हैं। कोपनहेगन में एक सार्वजनिक पुस्तकालय के लाइब्रेरियन का कहना है कि हिन्दी पुस्तकें उनके पास लेने कोई नहीं आता मगर बॉलीवुड फिल्म डीवीडी लेने काफी लोग आते हैं।

तीन प्रकार की भाषा व तीन प्रकार की संस्कृति से जूझ रहे हिन्दुस्तानियों के लिये कहा जाता है कि अन्य एशियाई देशों के नागरिकों की तुलना में वे अपने नए

परिवेश से काफी जल्दी समायोजित कर लेते हैं और साथ ही अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाए रहते हैं। अपने व्रत-उपवासों को करना, तीज-त्यौहार मनाने वे हर जगह बरकरार रखते हैं।

किन्तु काफी कुछ सहजने-समेटने के बावजूद उनके हाथों से काफी कुछ फिसल जाता है। तीन प्रकार की भाषा व तीन प्रकार की संस्कृति से आप्रवासियों की संतानों को जूझना पड़ता है। तीन भाषाएँ-अपनी मातृ-भाषा, जिस मुल्क में रह रहे हैं, वहाँ की भाषा और आज के आधुनिक युग की ग्लोबल भाषा अंग्रेज़ी। इनमें से वे किसी के भी महत्त्व को नकार नहीं सकते।

तीन संस्कृति-अपने माता-पिता द्वारा अपनाए हुए देश, जहाँ उनका जीवन गुज़र रहा है, की पाश्चात्य संस्कृति, अपने पूर्वजों के देश भारत की संस्कृति और इन दो संस्कृतियों के मिलन से जो एक हाइब्रिड कल्चर उनके घरों में विकसित होता है, उससे जूझना पड़ता है।

खैर यह परिवार-परिवार पर भी निर्भर करता हैं। कुछ भारतीय आप्रवासियों की युवा पीढ़ी अपनी भारतीय भाषा, संस्कृति, परम्पराओं व रीति-रिवाजों से काफी जुड़ी हैं, और कुछों की युवा पीढ़ी को अपनी भारतीय परम्पराओं या कार्यक्रमों या भारतीय समुदाय में ज़रा भी दिलचस्पी नहीं। वे अपने माता-पिता के 'अडॉप्टेड कंट्री', जहाँ उनका जीवन गुज़र रहा है, के ढर्रे पर बिलकुल रमे डेनिश बन चुके हैं, सिर्फ त्वचा व बालों के रंग से ही हिन्दुस्तानी लगते हैं। हाँ भारत के बारे में एक मत उन सभी का यह अवश्य है कि उनके माता-पिता भारत का सही चित्रण उनके सम्मुख नहीं करते, या तो वह अभी भी उसी भ्रम में हैं, उसी भारत की कल्पना करते हैं; जिसे वे छोड़ आए थे या फिर उन्हें किसी बहकावे में रखते हैं; जबकि सच्चाई यह है कि जब वे भारत विज़िट करते हैं और अपने हमउम्र लोगों के साथ वहाँ उठते-बैठते हैं तो वहाँ भी युवा पीढ़ी वही सब करती नज़र आती है; जो विदेश में होता है, फर्क कुछ भी नहीं है।

भूमंडलीकरण के दौर में हिन्दी

उल्लेखनीय है कि वैश्वीकरण के इस युग में जब दूरियाँ घट रही हैं, विभिन्न समुदाओं के बीच पारस्परिक विचार-विमर्श बढ़ रहा है, कई मुल्क एक साथ मिलकर व्यापार करने लगे हैं तो हिन्दी को इधर थोड़ी अहमियत मिलनी शुरू हुई है। कम से कम विदेशी लोग हिन्दी भाषा के अस्तित्व को जानने तो लगे हैं। सुनने में आया कि डेनमार्क स्थित 'स्टुडियो स्कोले' नामक एक प्रतिष्ठित लेंगुएज स्कूल के हिन्दी डिपार्टमेन्ट में अपेक्षाकृत अब काफी विद्यार्थी हैं। वहाँ विदेशियों को हिन्दी पढ़ाने वाली श्रीमती रजनी बहल कहती हैं कि पहले सीटे भरनी बड़ी मुश्किल होती थीं, लोग सिर्फ चाईनीज़ व जैपनीज़ सीखने आते थे। मगर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापार बढ़ जाने की वजह से व इंडिया की इकोनॉमी सुघढ़ हो जाने की वजह से लोग हिन्दी सीखने लगे हैं। पहले विदेशी भारत को एक दरिद्र देश समझते थे, वे सोचते थे एक गरीब मुल्क की भाषा जानकर वे क्या करेगें, मगर भारत की आर्थिक स्थिति बेहतर बनते देख विदेशियों में भारतीय राष्ट्र भाषा के प्रति रूझान बढ़ रहा है।

तीन प्रकार के विद्यार्थी श्रीमती बहल के पास हिन्दी सीखने आते हैं-एक जो इंडियन कंपनियों के साथ मिलकर व्यापार कर रहे हैं। दूसरे, जो इंडियन कुकिंग सीख रहे हैं और इस सिलसिले में उनका भारत जाना भी होता है, इन दो श्रेणी के लोगों को बस बोल-चाल के लिए हिन्दी जानने में रूचि है। तीसरा, युवा समुदाय जिसे भारत संस्कृति व दर्शन में जिज्ञासा है, ढंग से हिन्दी पढ़ना व लिखना जानना चाहता है।

श्रीमती बहल का कहना है कि विदेशियों को हिन्दी सिखाने में उन्हें एक दिक्कत यह होती है कि उचित विषय सामाग्री, यानि मेटेरियल्स उपलब्ध नहीं हैं। किस सरल तरीके से विदेशियों को हिन्दी व्याकरण सिखाई जाए, यह समस्या बनी रहती है। हिन्दी की अभ्यास पुस्तिका सरल व व्यावहारिक नहीं है, जटिल है। यूरोपियन के लिए उसकी भाषा बहुत ही क्लिष्ट है।

इस सन्दर्भ में एक बिन्दु यह भी उभर कर आया कि हिन्दी में सरल भाषा में वयस्क लोगों के लिए उपन्यास उपलब्ध नहीं हैं, जैसे कि डेनिश, स्पेनिश व अन्य भाषाओं में उपलब्ध है। जिस हिसाब से किशोरों के लिये अंग्रेज़ी व अन्य यूरोपीय भाषाओं में रोचक उपन्यास लिखे जाते हैं, उस मुकाबले हिन्दी में संख्या न के बराबर है।

हिन्दी शिक्षिका श्रीमती कुमुद माथुर ने डेनमार्क में बीस वर्षो तक प्रवासी भारतीयों के बच्चों को हिन्दी सिखाई है। बच्चों को हिन्दी सीखने की यह सुविधा डेनिश सरकार की तरफ से उपलब्ध थी। बच्चों का हिन्दी स्कूल 15-16 वर्षो तक तो अच्छा चला, फिर किसी तरह घिसटते-घिसटते अन्ततः बंद हो गया। श्रीमती माथुर का कहना है कि स्कूल बंद होने के तमाम कारणों में से एक कारण यह भी था कि अपने भारतीय बच्चों में अपनी मातृभाषा सीखने की उतनी ललक नहीं रहती जितनी अन्य देशों, जापानी, अरबी व चाईनीज बच्चों में रहती है। उनके स्कूल वहाँ अब भी चल रहे हैं। कुमुद माथुर के लिये सबसे बड़ी चुनौती बच्चों में हिन्दी के प्रति रुचि बनाए रखने की थी, क्योंकि हिन्दी के प्रति हिन्दुस्तानियों में उदासीनता है। पहली पीढ़ी के अभिभावकों में फिर भी चाहत थी कि उनके बच्चे हिन्दी सीखे। समय के साथ हिन्दुस्तानियों में हिन्दी सीखने व पढ़ने की जिज्ञासा कम हो रही है, आजकल के तो माता-पिता ही कहते हैं-'हमारे बच्चे हिन्दी पढ़कर क्या करेगें?'

हिन्दी-औपचारिक स्तर पर

सामाजिक क्रियाकलापों व सांस्कृतिक गतिविधियाँ निःसंदेह हिन्दी विकास में सहायक हैं। अगर अनौपचारिक स्तर से हट कर औपचारिक स्तर पर विदेशों में हिन्दी का विश्लेषण करें, विदेशी विश्वविद्यालय में हिन्दी की स्थिति आँकें तो डेनमार्क में कुछ आँकड़े इस प्रकार मिलते हैं :-

विभिन्न स्केन्डिनेवियन देशों के लगभग सभी विश्वविद्यालयों में 'eoiSayana sTDIja,' 'saa]qa eoiSayana irlaoTD irsa-ca एंड eDukoSana' एवं 'डिपार्टमेंट ऑफ़ क्रॉस कल्चरल एंड रिजनल स्टडीज' शिक्षण विभाग मौजूद है. डेनमार्क की कोपनहेगन यूनिवर्सिटी में 'डिपार्टमेंट ऑफ़ ऐशियन स्टडीज' एवं डिपार्टमेंट ऑफ़ क्रॉस कल्चरल एंड रिजनल स्टडीज के अंतर्गत विषय इंडोलोजी गत पचास वर्षों से कार्यशील है।

वर्तमान में इंडोलोजी दो विभागों में विभक्त है-क्लासिक इंडोलोजी एवं न्यू (नवीन) इंडोलोजी. क्लासिक इंडोलोजी के अंतर्गत भारतीय संस्कृति, भारतीय इतिहास, भारतीय दर्शन, भारतीय बुद्धिज्म पर पाठ्यक्रम चलायें जाते हैं। कोर्सस संस्कृत व पाली में पढ़ाये जाते हैं मगर संस्कृत इनमें प्रमुख है। क्लासिक इंडोलोजी के अध्यक्ष अमेरिकन नागरिक प्रोफेसर केनेथ ज्यूस्क, जो संस्कृत भाषा के विद्वान है, संस्कृत पढ़ाते हैं।

'न्यू इंडोलोजी' के अंतर्गत हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं के साथ भारत के समाज, इतिहास वगैरह विषयों पर पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। वर्तमान शैक्षणिक सत्र में कोपनहेगन विश्वविद्यालय के 'न्यू इंडोलोजी' अथवा 'माडर्न इंडिया स्टडीस' डिपार्टमेंट में कुल पच्चास विद्यार्थी हैं-पन्द्रह-बीस विद्यार्थी बी.ए. फर्स्ट इयर में व पन्द्रह-पन्द्रह विद्यार्थी बी.ए. सेकेण्ड और थर्ड इयर में। न्यू इंडोलोजी की अध्यक्ष प्रोफेसर

रविन्द्र कौर है। जर्मन नागरिक एल्मार रेनर हिन्दी पढ़ाते हैं। कोपनहेगन यूनिवर्सिटी में हिन्दी शिक्षण होने का श्रेय डॉ. रविन्द्र कौर को बहुत जाता है।

बहरहाल एसोसियेट प्रोफ़ेसर एल्मार रेनर की भी शिकायत वही है, जो रजनी बहल की है-उचित शिक्षण संसाधन का अभाव। प्रोफेसर रेनर का कहना है कि अहिन्दी भाषियों को हिन्दी पढ़ाने में जो प्रमुख दिक्कत है वह सही सामग्री का उपलब्ध नहीं होना, जो शिक्षण पद्धति का विकास पाश्चात्य भाषा-शिक्षण के संदर्भ में पिछले पच्चास वर्ष से होता जा रहा है, वह अभी तक भारतीय भाषाओं के अध्ययन में नहीं आया। अभी वह जर्मन आदि भाषाओं के लिए तैयार किए गए 'कम्यूनिकेटिव अप्रोच' यानी संवादनात्मक शिक्षणपद्धति को हिन्दी में लाने का प्रयास करते हुए अपने विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं। उनकी राय है कि मूल संवादनात्मक शिक्षण सामग्री के अतिरिक्त ऐसी पाठ्य पुस्तिकाएँ प्रकाशित की जाएँ, जिनमें मशहूर लेखकों के उपन्यास और अन्य रचनाओं को लघुरूप एवं सरल भाषा में लिख कर प्रकाशित किया जाए, ताकि छात्रों को साहित्यसागर में प्रवेश पाने में सुविधा हो। ऐसी पुस्तिकाएँ अँग्रेज़ी के लिए 'ईज़ी रीडर' के नाम से कई दशकों से उपलब्ध कराए जाते हैं।

कोपनहेगन यूनिवर्सिटी के इंडोलोजी डिपार्टमेंट के आलावा अन्य शिक्षा अकादमियों में भी हिन्दी व भारतीय संस्कृति व दर्शन का कुछ न कुछ स्वरूप देखने को मिलता है। कोपनहेगन यूनिवर्सिटी के इंग्लिश डिपार्टमेंट में कैथरीन हेनसन हिन्द साहित्य व हिन्दी सिनेमा के कोर्सेस के शिक्षण कार्य में सक्रिय हैं, डेनमार्क की आरहुस यूनिवर्सिटी में समकालीन हिन्दी समाज, संस्कृति व इतिहास के पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं।

एन.सी.आई. (The Nordic Center in India (NCI) Consortium) नॉर्डिक देशों-डेनमार्क, फिनलैंड, नार्वे व स्वीडन के अग्रणी विश्विद्यालयों का एक संयुक्त संकाय है। यह संकाय 2001 में स्थापित हुआ तथा इसका लक्ष्य नॉर्डिक देशों व भारत के बीच शोध कार्यों व उच्च शिक्षा के सहयोग को सुकर करना है। शैक्षिक विनिमय द्वारा एन.सी.आई. इंडो-नॉर्डिक संबन्धों को दृढ़ करना चाहता है। एन.सी.आई. नेटवर्क का मुख्य काम नॉर्डिक विद्यार्थियों के लिये भारत व अन्य देशों में समकालीन भारत पर लेक्चर्स, सेमिनार व समर कोर्स इत्यादि आयोजित करना है। विद्यार्थियों को हिन्दी विषयवस्तुओं में काम करने के लिये स्कॉलरशिप प्रदान होती रहती हैं।

फिर 'प्रवासी हिन्दी साहित्य' हिन्दी साहित्य जगत में एक नया वाक्यांश व चेतना है। डेनमार्क में भारतमूल की कई हस्तियाँ हैं, जिनका हिन्दी एवं भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में योगदान निहित है। ये सभी किसी न किसी रूप में डेनमार्क में भारतीय भाषा व संस्कृति को सहेजे हुए हैं।

कई स्केन्डिनेवियन विश्वविद्यालयों में भाषाविषयक व दर्शन विभाग द्वारा आधुनिक हिन्दी साहित्य विषय पर कोर्सेज़ चलाए जाते हैं। इंडोलॉजी विभाग मौजूद है, जिनके अंतर्गत हिन्दी साहित्य, हिन्दुत्व, वैदिक अध्ययन व आधुनिक भारत पर कोर्सेज़ चलते हैं। संस्कृत साहित्य, भाषा-विषयक एवं सांख्यिकीविद् व वैदिक पढ़ाई पर कोर्सेज़ होते हैं। किस संख्या में इन हिन्दी विभागों में विद्यार्थी कोर्स करने आते हैं। ये विभाग कितने सुप्त हैं, कितने सक्रिय यह एक विवदास्पद प्रश्न है। मगर आँकड़े बताते हैं कि कुल मिला कर पाश्चात्य देशों में लोगों का हिन्दी के प्रति रूझान बढ़ा है।

NIAS-Nordic Institute of Asian Studies एक स्वतंत्र ऐशियन स्टडीज़ इंस्टिट्यूट है; जिसका मुख्य दायित्व नॉर्डिक व ऐशियाई देशों को समीप लाना है। इसका मकसद नॉर्डिक क्षेत्र में आधुनिक ऐशिया की राजनीति, आर्थिक, समाजिक व्यापार व संस्कृति रूपान्तरण को विकसित करने का है।

फिर 'प्रवासी हिन्दी साहित्य' हिन्दी साहित्य जगत में एक नया वाक्यांश व चेतना है। डेनमार्क में भारतमूल की कई हस्तियाँ हैं, जिनका हिन्दी एवं भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में योगदान निहित है। ये सभी किसी न किसी रूप में डेनमार्क में भारतीय भाषा व संस्कृति को सहेजे हुए हैं।

औपचारिक व अनौपचारिक स्तर पर हिन्दी भाषा व संस्कृति को प्रचारित करने में काफी कुछ हो रहा है। लेकिन हिन्दी में जो सम्भावनाएँ हैं, तदनुरूप हिन्दी को भाषा जगत में वह स्थान नहीं मिल पाया है। विश्व में चीनी और अंग्रेज़ी भाषा के पश्चात तीसरे स्थान पर रहने वाली हिन्दी भाषा के अस्तित्व के लिये संघर्ष की स्थिति बनी रहती है। विशेषकर हमारी नई पीढ़ी का हिन्दी के पति दृष्टिकोण चिन्तनीय है।

एक गम्भीर प्रश्न यह भी खड़ा हो रहा है कि जो कुछ हिन्दी व भारतीय संस्कृति का बाहर देशों में प्रभाव है, वह पुरानी पीढ़ी जो भारत से विदेशों में प्रवासित हुई उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप हैं। आप्रवासियों की नई पीढ़ी हिन्दी से कतरा रही है तो हिन्दी को इन मुल्कों में आगे लेकर कौन जाएगा? हिन्दी की सरंक्षणता कौन करेगा? सर्वेक्षण दर्शाते हैं कि पुरानी पीढ़ी के अभिभावक, जिन्होंने साठ-सत्तर के दशक में विदेशों में प्रवास किया, उनमें फिर भी जिजीविषा थी कि उनके बच्चें अपनी मातृ-भाषा सीखे; जो कुछ अवसर उन्हें उपलब्ध थे उन्होंने अपने बच्चों को हिन्दी बोलने-सीखने के लिये प्रेरित किया। लिहाजा उनकी संतानें, जो अब मध्यम आयु की हैं, को हिन्दी बोलनी आती है। मगर आज की नई पीढ़ी के अभिभावकों में ही हिन्दी के प्रति रुझान कम है, सो उनके बच्चों को हिन्दी बोलनी तक नहीं आती।

हिन्दी एक विशाल जनसंख्या की मातृभाषा व पूरे हिन्दुस्तान की संपर्क भाषा है। यही नहीं विश्व स्तर की प्रमुख भाषाओं में हिन्दी भी एक है। हिन्दुस्तान एक बड़ा व विशाल देश होने की वजह से विश्व को इसकी गूढ़ संस्कृति व साहित्य जानने की भी उत्सुकता रहती है। अतः हिन्दी के अस्तित्व व महत्ता को नकारा नहीं जा सकता। हिन्दी ख़त्म तो नहीं होगी मगर क्षय हो जाएगी, अगर ठोस कदम नहीं उठाए गए। इसके लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता है कि हिन्दी का और विकास हो। यह इतनी विकसित व बुलंद हो, ताकि मात्र भारतीय मूल के लोग ही नहीं, अपितु विदेशी भी हिन्दी सीखे और इसे अपने व्यवसाय की भाषा बनाए, जैसे डेनमार्क जैसे एक छोटे से देश की कोपनहेगन यूनिवर्सिटी में चालीस अभारतीय मूल के विद्यार्थी हिन्दी व भारतीय संस्कृति का अध्ययन कर रहे हैं और जर्मन व अमेरिकन उनके अध्यापक हैं। आशा है मोदी सरकार अपने देश में राजभाषा हिन्दी को प्रयाप्त महत्त्व दे हिन्दी को पूरे विश्व में बुलंद करेंगे।

विशेष आभारः डा. रवीन्द्र कौर (कोपनहेगन यूनिवर्सिटी), प्रोफ़ेसर एल्मार रेनर (कोपनहेगन यूनिवर्सिटी), श्रीमती रजनी बहल (हिन्दी अध्यापिका, स्टूडियो स्कोले), श्रीमती डॉली शेनाय (एशियन म्यूज़िक सोसाइटी), श्री सुखदेव सिंह संधू (अध्यक्ष : ऑल इंडियन कल्चरल सोसाइटी डेनमार्क)।

❐

मैं वही लिखती हूँ, जो पाठक मुझसे लिखवाते हैं..नीना पॉल

(ब्रिटिश हिन्दी साहित्यकार नीना पॉल के साथ वरिष्ठ मीडिया हस्ती कैलाश बुधवार के साथ हुई बातचीत के अंश)

लेस्टर, ब्रिटेन की निवासी नीना पॉल के अठखेलियाँ, फ़ासला एक हाथ का, शराफ़त विरासत में नहीं मिलती (कहानी संग्रह), कसक, नयामत, अंजुमन, चश्म-ए-ख़्वादीदा, मुलाकातों का सफ़र (ग़ज़ल संग्रह), रिहाई और तलाश (उपन्यास) हैं। हिन्दी की वैश्विक कहानियाँ नीना जी की सम्पादित पुस्तक है। 9 वर्ष की आयु में कविता के लिए मिलाप हिन्दी समाचार पत्र व रेडियो द्वारा सम्मानित; हिन्दी सम्मेलन दिल्ली द्वारा उपन्यास रिहाई के लिए सम्मानित, लखनऊ से सुमित्रा कुमारी सिन्हा सम्मान, उपन्यास तलाश के लिए 2011 में कथा यू.के. द्वारा पद्मानंद साहित्य सम्मान से ब्रिटेन के हाऊस ऑफ़ कॉमन्स में सम्मानित। सम्प्रति स्वतंत्र लेखक हैं।

संपर्कः Neena Paul, 19 Rosedene Avenue, Thurmaston, Leicester LE4 8HR, (U.K.)
ईमेल-nenapaul@live.co.uk

नीना, मैंने बहुत से लोगों के इंटरव्यू लिए हैं, जिसमें फ़िल्म स्टार, पत्रकार और राजनीति से जुड़ी हस्तियाँ भी शामिल रहती हैं। सच कहूँ तो एक साहित्यकार से बातचीत करने का यह पहला अवसर मिला है। आप बहुमुखी प्रतिभा की मालिक हैं। मैं यह जानना चाहूँगा कि लिखने में आपकी रुचि कैसे बनी?

कैलाश जी मैं बचपन से ही बहुत एकांतप्रिय और भावुक स्वभाव की रही हूँ। पिता जी की रेलवे में नौकरी होने के कारण, रहने के लिए रेलवे की ओर से बहुत बड़े बंगले मिला करते थे। जिसके चारों ओर हरियाली और बड़े-बड़े बग़ीचे होते थे। सुबह आँख, पक्षियों की आवाज़ों और गानों के साथ खुलती थी। कोयल की आवाज़, बुलबुलों का गाना, चिड़ियों का चहचहाना सुन कर मैं बिस्तर में लेटे हुए ही इनके स्वर के साथ अपना स्वर मिलाने का प्रयत्न करती। फिर उन स्वरों को शब्द देते ही एक कविता बन जाती। मेरे चारों ओर अपनी ही एक छोटी-सी दुनिया थी, जिसमें मैं विचरण करती रहती थी। मेरा छोटी-बड़ी घटनाओं को गम्भीरता से लेना, कई दिन उन्हीं के विषय में सोचते रहना, उनका हल निकालना, शायद इन्हीं सब चीज़ों ने मुझे लिखने की ओर प्रेरित किया है।

आपने ग़ज़लें भी बहुत लिखी हैं। एक दौर ऐसा था, जब लगातार एक के बाद एक आपके पांच ग़ज़ल संग्रह सामने आए। अचानक ग़ज़ल को छोड़ कर आपने कहानी पर ज़ोर देना शुरू कर दिया। इस बीच आपके उपन्यास भी आने शुरू हो गए। मैं आपसे प्रश्न यह पूछना चाहता हूँ कि आप आसानी से किस विधा में अपनी बात कह पाती हैं...ग़ज़ल, कहानी या उपन्यास?

ग़ज़ल, कहानी और उपन्यास, इन तीनों के तेवर एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। ग़ज़ल के लिए आपको कोई भूमिका नहीं बाँधनी पड़ती। ग़ज़ल एक भाव प्रधान और बहुत ही कोमल लेखन है। मेरा प्रकृति के प्रति प्रेम, संगीत के प्रति रुचि होने के कारण शायद मैं ग़ज़ल को गुनगुनाते हुए आसानी से लिख लेती हूँ। कहते हैं कि बचपन की कुछ आदतें नहीं छूटतीं। मेरे श्रोताओं को तरनुम में ग़ज़ल सुनना बहुत अच्छा लगता है विशेषकर यदि वह शृंगार रस से भरपूर ग़ज़ल हो। ग़ज़ल आप एक दिन में एक लिख सकते हैं, किंतु कहानी या उपन्यास समय माँगते हैं। ग़ज़ल में कुछ न कह कर भी आसानी से बहुत कुछ कहा जा सकता है। कभी पक्षियों को माध्यम बना कर, कभी वफ़ादारी और बेवफ़ाई को, कभी सौंदर्य को तो कभी मौसम को..।

हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में इतना कुछ घटता रहता है, जो एक कहानी बन कर रह जाता है। मेरे ख़याल में कहानी लिखना सबसे कठिन काम है। कहानी ऐसे ही नहीं लिखी जाती। कई दिनों, यहाँ तक कि कभी कई महीनों, कहानी का विषय दिमाग में उथल-पुथल मचाए रहता है। आप कहानी के पात्रों के साथ सोते जगते हैं, हँसते रोते हैं, उनके साथ संवाद करते हैं, उनकी भाषा सीखते हैं। उस में इस बात का विशेष ध्यान रखना पड़ता है कि जो कुछ आप कहना चाहते हैं, वह एक घटना बन कर न रह जाए। एक लेखक अप्रत्यक्ष रुप में पाठकों के सामने अपनी ज़िंदगी की किताब खोल देता है। अपनी कहानियों, गज़लों, कविताओं में वह अपने जीवन का एक छोटा सा अंश डाल कर संतुष्ट हो जाता है। कहानियाँ तो हमने अपनी नानी, दादी से बहुत सुनी होती हैं। एक लेखक को कहानी सुनानी नहीं, बल्कि शब्दों द्वारा पाठकों को दिखानी होती है। शब्द जाल का चयन ऐसे करना पड़ता है कि, पाठक एक बार उसमें उलझ जाएँ, तो पूरी कहानी पढ़ कर ही बाहर निकलें।

रही बात उपन्यास की तो उपन्यास का क्षेत्र बहुत विशाल होता है। चाहे मैंने अभी तक तीन ही उपन्यास लिखे हैं, किंतु मैं कहानी से अधिक उपन्यास में स्वयं को सहज पाती हूँ। शायद इसीलिए मैं उपन्यास लिखना अधिक पसंद करती हूँ। इसमें विषय को देखते हुए लेखक विस्तार से अपनी बात कह सकता है। वो भी, एक सीमित दायरे के अंदर रह कर। हालाँकि उपन्यास लिखने के लिए बहुत सा समय चाहिए। उस पर रिसर्च करना पड़ता है। उस को लिखने के लिए रातों की नींद भी गंवानी पड़ जाती हैं। सोते जागते आप बस उसी के विषय में सोचते रहते हैं। जहाँ कहानी में एक बात सीमित शब्दों में कहनी होती है, वहीं उपन्यास में आप खुल कर अपनी बात कह सकते हैं।

सुना है आपकी ग़ज़लों को सुन कर आपके श्रोता आपको बहुत से ख़िताब देते रहते हैं। क्या आप लिखने से पहले यह तय कर लेती हैं कि आज कहानी लिखनी है या ग़ज़ल?

जी यह तो उनका स्नेह है, जो अपने ख़िताबों के द्वारा वह प्रस्तुत करते हैं। सबसे बड़ा जो ख़िताब मेरे श्रोताओं से मिला है वह है 'क्वीन ऑफ़ रोमेंटिक ग़ज़ल्स'। श्रोताओं का स्नेह ही है जो लिखने की हिम्मत देता है। कैलाश जी मैं तो क्या कोई भी लेखक कभी यह तय नहीं कर सकता कि आज उसे क्या लिखना है। कई बार आप बड़ी तन्मयता से कहानी लिख रहे होते हैं कि अचानक नज़र उठते ही सामने उमड़ते-घुमड़ते बादल दिखाई दे जाते हैं, हवाओं में लहराते हुए पेड़ मिलते हैं, पक्षी कलोल करते मिलते हैं। प्रकृति का ऐसा दृश्य देख कर मन में कोमल विचारों का पनपना स्वाभाविक है। उस समय कलम ख़ुद ही ग़ज़ल की ओर मुड़ जाती है। लेखक की सोच कब कहाँ घूम जाए यह वह स्वयं भी नहीं जानता।

लिखने के साथ-साथ आप पढ़ती भी होंगी। हर किसी का एक प्रिय लेखक होता है। आप यह बताइए कि आपको किस लेखक ने प्रभावित किया है?

देखिये कैलाश जी, मेरे लिए यह कहना आसान नहीं कि मुझे किस एक लेखक ने प्रभावित किया है। मैं बहुत पढ़ती हूँ। अंग्रेज़ी साहित्य भी और हिन्दी भी। मैं लेखक से नहीं, उसके लेखन से प्रभावित होती हूँ। मुझे अच्छा, रोचक साहित्य पसंद है। कोई आत्मकथ्य हो, अच्छा यात्रा वृतांत हो, कोई अच्छी दिल को छू जाने वाली कहानी हो, यह सब पढ़ना अच्छा लगता है।

जैसा कि आपने बताया है कि आप बचपन से लिख रही हैं। आपको पुरस्कार भी बहुत मिले हैं। सबसे पहली पुस्तक आपकी कब प्रकाशित हुई और सबसे पहला पुरस्कार आपको कौन सी आयु में मिला?

यह सच है कि मेरा लेखन यहाँ आने से पहले भारत में ही शुरू हो चुका था। मेरी एक बचपन की सखी अरुणा का और मेरा आपस में बहुत प्रेम था। अरुणा जानती थी कि मेरी रुचि लिखने में है। मैं जो कुछ भी लिखती वह मुझसे छीन लेती। मुझे पता ही ना चला कि कब मेरा सारा लेखन हमारी हिन्दी की अध्यापिका मिसेज मल्होत्रा के पास पहुँच जाता। मिसेज मल्होत्रा ने मेरी छोटी-छोटी कहानियों को इकट्ठा करके एक कहानी संग्रह निकाला, जिसका नाम अरुणा ने ही रखा 'अठखेलियाँ'। उस समय मेरी आयु 15-16 वर्ष की थी। और सबसे पहला पुरस्कार मुझे नौ वर्ष की आयु में माँ पर लिखी एक कविता पर मिला था। यहाँ एक और घटना का भी वर्णन कर दूँ। मैं अभी 11-12 वर्ष की ही थी, जब साहिर लुधियानवी जी से मेरी मुलाकात एक मुशायरे में हुई। उनके एक शेर पर मेरे मुँह से वाह निकल गई। साहिर लुधयानवी जी ने ख़ुश होकर मेरे पिता जी से कहा 'सहगल देखना, एक दिन यह लडकी लिखेगी'। शायद यह उन्हीं का आशीर्वाद है, जो मैंने कलम उठाने की जुर्रत की।

क्या बात है..... साहिर लुधियानवी का तो मैं भी बहुत बड़ा फ़ैन रहा हूँ। अच्छा यह बताइए कि जो यहाँ लिखा जा रहा है। प्रकाशित हो रहा है। उसकी पहुँच हिंदुस्तान में कहाँ तक है। क्या प्रकाशक और पाठक आसानी से उसे स्वीकार कर लेते हैं?

यदि आप भारत के प्रकाशकों की बात पूछ रहे हैं तो प्रकाशक यह सोचते हैं कि यहाँ के लेखकों के पास बहुत पैसा है। चाहे वह कितना भी अच्छा क्यों न लिख रहे हों, उसे छपवाने के लिए उन्हें भरपूर दाम

चुकाने पड़ते हैं। रही बात भारत के पाठकों की तो वे यहाँ के विषयों के बारे में पढ़ना पसंद करते हैं। मेरी कोशिश यही रहती है कि मैं यहाँ के विषयों पर कहानी लिखूँ। जिस देश में हम रहते हैं उसकी समस्याओं से हम अछूते नहीं रह सकते। उसका प्रभाव हमारे जीवन पर भी पड़ता है। मैं पेशे से एक सोशल वर्कर रही हूँ। आए दिन मुझे नित नई समस्याओं से जूझना पड़ता था। मैं वही अपने अनुभव कहानियों में डालती हूँ, जिसे भारत के पाठक बहुत पसंद करते है। उन्हें कुछ नया पढ़ने को मिलता है।

नीना आपको तीन दशक से ऊपर हो गए ब्रिटेन में रहते हुए। आपने यहाँ के काफ़ी उतार चढ़ाव देखे हैं। आपके लेखन में प्रवासी जीवन किस प्रकार जगह पाता है?

देखिये, जिस दिन से हम अपना देश छोड़ कर किसी भी दूसरे देश में जाकर बस जाते हैं, उसी दिन से हमारे ऊपर प्रवासी की मोहर लग जाती है। हमें यहाँ रहते हुए कितने ही दशक क्यों न बीत गए हों, किंतु कहलाते हम प्रवासी ही हैं। जिस देश में हम रहते हैं, वहाँ के माहौल के असर से हम दूर नहीं रह सकते। एक लेखक के लेखन पर इसका बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। दुःख की बात तो यह है कि जब हम यहाँ रहते हैं तो अपने देश से दूर बसने के कारण प्रवासी कहलाते हैं। यहाँ अकसर हमसे पूछा जाता है कि हम किस देश से आए हैं। जब हम अपने देश जाते हैं तब भी हम से यही सवाल पूछा जाता है कि हम किस देश से आए हैं। बुरा लगे या अच्छा, एक बार अपना देश छूट जाने के पश्चात हम अपने देश में भी प्रवासी हैं और परदेस में भी प्रवासी हैं। यही कारण है कि हम चाहे कितने भी यहाँ के विषय लेकर कहानी लिखें, उसमें कुछ न कुछ अपने देश का पुट दिखाई दे ही जाता है। एक लेखक के लेखन में यह सब कुछ आना स्वाभाविक है। दिल की पीड़ा कहीं तो निकलेगी। लेखन से अधिक अच्छा ज़रिया और कौन सा हो सकता है।

भारत में हमारे लेखन को प्रवासी कहना एक रिवाज सा बन गया है। वह यह क्यों भूल जाते हैं कि एक लेखक प्रवासी हो सकता है उसका लेखन नहीं। हम भी वहाँ के लेखकों के समान शुद्ध हिन्दी में लिखते हैं। जिस देश में हम रहते हैं, वहाँ की परिस्थितियों के अनुसार हमारे विषय अलग हो सकते हैं, हमारी सोच का दायरा अलग हो सकता है किंतु हम उसी भारतीय साहित्य का हिस्सा हैं, जो मुख्यधारा में लिखा जा रहा है।

जिस दिन से हम अपना देश छोड़ कर किसी भी दूसरे देश में जाकर बस जाते हैं, उसी दिन से हमारे ऊपर प्रवासी की मोहर लग जाती है।हमें यहाँ रहते हुए कितने ही दशक क्यों न बीत गए हों, किंतु कहलाते हम प्रवासी ही हैं। जिस देश में हम रहते हैं, वहाँ के माहौल के असर से हम दूर नहीं रह सकते। एक लेखक के लेखन पर इसका बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। दुःख की बात तो यह है कि जब हम यहाँ रहते हैं तो अपने देश से दूर बसने के कारण प्रवासी कहलाते हैं। यहाँ अकसर हमसे पूछा जाता है कि हम किस देश से आए हैं।

ब्रिटेन में बहुभाषिए लोग रहते हैं। यहाँ एशिया से भी लोग आए हैं और यूरोप से भी। यहाँ पर हिन्दी साहित्य की स्थिति को आप कैसे देखती हैं?

जी हाँ, यहाँ पर तरह-तरह के चेहरे दिखाई देते हैं। बहुत सी भाषाएँ सुनने को मिलती हैं। ब्रिटेन में जहाँ तक हमारी पीढ़ी का सवाल है, हिन्दी की स्थिति ठीक-ठाक है। हिन्दी की बहुत सी संस्थाएँ हैं, गोष्ठियाँ होती हैं, जहाँ हम सब एक दूसरे से मिलते हैं, अपने विचार साझा करते हैं। दुःख की बात तो यह है कि बड़ी मुश्किल से कोई युवा चेहरा हिन्दी की गोष्ठियों में दिखाई देता है। यह सब देखते हुए मेरी नज़र में यहाँ पर हिन्दी का भविष्य कोई इतना उज्ज्वल नहीं है। हमारी युवा पीढ़ी इससे दूर होती जा रही है। पहले अंग्रेज़ी सीखना और बच्चों को सिखाना हमारी मजबूरी थी। यहाँ पर रोटी-रोज़ी कमाने के लिए अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान अनिवार्य था। पहले कोई इक्का दुक्का ही अंतर्जातीय विवाह होते थे। उसमें भी उन्हें बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। अब दिनों-दिन जैसे आपसी मेल मिलाप बढ़ रहे हैं, यह अंतर्जातीय विवाह बढ़ते जा रहे हैं। घरों में भी बोलचाल की भाषा अंग्रेज़ी ही है। हमारे जाने के पश्चात हिन्दी की क्या दशा होगी कुछ कह नहीं सकते।

आपको भारत की पत्रिकाओं में छपने में कोई कठिनाई सामने आती है। आज इंटरनेट का ज़माना है तो क्या भारत से आपको अपने लेखन पर प्रतिक्रियाएँ आसानी से मिल जाती हैं?

जी, अभी तक तो कोई कठिनाई नहीं आई। मेरा हमेशा से यही कहना है कि मैं वही लिखती हूँ, जो पाठक मुझसे लिखवाते हैं। मैं उनके तेवर देख कर लिखती हूँ, फिर चाहे वह ग़ज़ल हो, कहानी या उपन्यास। हमारे पाठक हैं, श्रोता हैं तो हम लेखक हैं। मेरी कोशिश यही रहती है कि भारत के पाठकों को यहाँ की समस्याओं, मौसम, अंग्रेज़ों के साथ हमारे सम्बंध आदि विषयों के बारे में कुछ बताऊँ। हर पत्रिका के सम्पादक की अपनी एक सोच होती है कि वह किस प्रकार की रचनाएँ मांगते हैं। अधिकतर सम्पादक ट्रेडिशनल कहानियाँ छापना पसंद करते हैं। जैसा कि मैंने महसूस किया है भारत के पाठक यहाँ के विषयों को पढ़ना अधिक पसंद करते हैं।

आपके दूसरे प्रश्न के बारे में यह कहूँगी कि मेरी कहानियों पर वहाँ के बड़े लोगों की प्रतिक्रियाएँ तो मिलती ही हैं, साथ में एक लेखक को उस समय कितनी प्रसन्नता होती है जब उसके लेखन को युवा पीढ़ी पढ़े और पसंद करे। जब भारत के विभिन्न शहरों से कहानी को सराहते हुए युवा पाठकों के टेलिफ़ोन आते हैं, ईमेल आते हैं कि कहानी बहुत पसंद आई। अगली कहानी कौन सी पत्रिका में आ रही है तो यकीन मानिए उत्साह और बढ़ता है। जी चाहता है कि इससे भी अच्छी कहानियाँ लिख कर पाठकों के समक्ष उपस्थित की जाए।

आख़िरी सवाल नीना, विदेशों में युवा पीढ़ी हिन्दी साहित्य से नहीं जुड़ पाती उसके विषय में आपके क्या विचार हैं।

विदेशों में भारतीयों की तीसरी या चौथी पीढ़ी चल रही है। पहले ऐसे माता-पिता यहाँ आए थे जिन्हें अंग्रेज़ी नहीं आती थी। उन्हें भाषा को लेकर बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। इसीलिए माता-पिता बच्चों को घर में भी अंग्रेज़ी बोलने के लिए प्रोत्साहित करते थे। यह सोच कर, कि जिस दर्द से वह गुज़रे हैं उससे बच्चे दूर रहें। वह आगे बढ़ कर अंग्रेज़ों के समाज में अपना स्थान बना सकें। अब हमारी युवा पीढ़ी इतनी आगे बढ़ गई है कि यदि हम चाहें भी तो उन्हें मोड़ नहीं सकते। नित नए परिवर्तन होते जा रहे हैं। ज़िंदगी भाग रही है। किसी के पास साहित्यिक गोष्ठियों में जाने का समय नहीं है। लोगों की ज़रूरतें बढ़ रही हैं। लोग पैसे के पीछे भाग रहे हैं। युवा पीढ़ी अपने में ही मस्त है। उनके लिए मनोरंजन का सबसे बड़ा साधन है फ़ेसबुक, टिवटर, इंटरनेट, जिससे उन्हें फ़ुरसत नहीं मिलती कि वह कुछ और सोचें।

❐

तारों से खाली आसमान

तेलुगु कहानी

पेद्दिंटि अशोककुमार

अनुवादः आर. शांता सुंदरी

पेद्दिंटि अशोक कुमार
House Number 4-4-90/1,
Reddywada,
Sirisilla, Karimnagar Dist.
Telangana-505305.
Email : akpeddinti@gmail.com
Mobile : 09441672428

आर. शांतासुन्दरी
506,Westend Apts.
Masjid Banda,
Konadpur,
Hyderabad-500084
Mobile : 09490933043

' सर .. सर ... भार्गवी चिचिल्ला(सिरिसिल्ला-तेलंगाना में एक जगह) जाना चाहती है सर ....' जैसे ही मैं कमरे में दाखिल हुआ, पावनी ने आकर बताया।

मैं ऐसे काँप गया जैसे मुझे मलेरिया हो गया हो। क्या कहूँ कुछ समझ में न आया। निढाल-सा कुर्सी पर बैठ गया और हाज़िरी का रजिस्टर खोला। मुझे चुप देखकर शायद पावनी को लगा मैंने उसकी बात नहीं सुनी, इसलिए फिर से मेरे पास आकर वही खबर सुनाई।

मैंने सिर हिलाकर उसे बैठने को कहा। मेरे जवाब न देने पर उदास होकर वह बैठ गई। मैं हाज़िरी लेने लगा। छह बच्चों की जगह सिर्फ दो आए। जैसे ही मैंने भार्गवी का नाम बुलाया पावनी बड़े उत्साह से उठकर बोली,' वह चिचिल्ला जा रही है सर, अब स्कूल नहीं आएगी।'

रजिस्टर बंद करते हुए मैंने पूछा,'क्यों?'

पावनी के कुछ कहने से पहले प्रशांत बोल पड़ा, 'सर.पता नहीं सर..' उसे परे धकेलते हुए पावनी आगे आई और हाथ नचाती हुई बोली, 'सर. मैं बताती हूँ सर. क्या कहा था भार्गवी ने ? हाँ, वह अब स्कूल नहीं आएगी कहा था सर।'

मुझे बुरा लगा। 'रोज़ कोई न कोई स्कूल छोड़कर जा रहा है। फिर स्कूल चलेगा कैसे?' इसी बात का डर लगने लगा। वैसे भी भार्गवी के मामले में मैंने सारे नियमों का उल्लंघन किया था। बड़े सर ने कहा पांच साल पूरे करने पर ही बच्चों को दाखिल करना है।

'पाँच साल पूरे हों और आँगनवाड़ी से आनेवाले बच्चों को ही लिया जाए, ऐसे नियम बनाएँगे तो हमारे स्कूल में एक भी बच्चा नहीं बचेगा। आजकल के माँ-बाप के सर पर बच्चा पैदा होते ही उसे डॉक्टर या इंजीनियर बनाने

का भूत सवार हो जाता है। तीन साल के बच्चे को प्राइवेट स्कूल भेज रहे हैं।' यह कहकर मैंने बड़े सर को मना लिया और भार्गवी को स्कूल में दाखिला दिलवा दिया।

उसे सलेटी पकड़ना भी नहीं आता था। सहमी-सहमी सी रहती थी। उसे भूख लगती तो रोती थी। जहाँ बैठी वहीं पेशाब कर देती और क्लास में सो जाती। उसकी तकलीफ़ मुझसे देखी नहीं गई तो एक रोज़ उसे घर छोड़ आया। जैसे ही मैं वहाँ भार्गवी को लेकर पहुँचा उसकी माँ भागती आई। मैं समझाने की कोशिश करने लगा। पर वह तो अपनी ही धुन में बोलती गई, 'हम सुबह घर से निकलते तो सूरज ढलने के बाद वापस आते हैं। इस तरह बच्ची को घर में अकेले छोड़ दोगे तो कैसे चलेगा ? स्कूल भेजूँ या नहीं, बोलो ?'

इस तरह मुझपर चिल्लाकर वह चली गई। मुझे लगा उसकी बात में दम है।

उसके बाद मैं भार्गवी से दोस्ती करने लगा। उससे खेलता था, खिलाता था। हँसता और उसे हँसाता था। कुल मिलाकर स्कूल के प्रति उसके मन में जो डर था, उसे दूर कर दिया। मुझे देखते ही वह मेरे पास दौड़कर आने लगी। न जाने क्या-क्या बातें करती थी। रास्ते में कहीं मैं दिखाई देता तो 'सर, सर' पुकारती और बात करने तक नहीं छोड़ती थी। गिजू बाई का कहना है, स्कूल की घंटी सुनते ही बच्चे खुशी से दौड़कर आएँ, जाने के लिए न छटपटाएँ ! इस बात को मैंने सच करके दिखाया। स्कूल को घर जैसा बना दिया, जहाँ बच्चे दिल खोलकर खेल सकें। मुझे लगा भार्गवी की माँ मेरी तारीफ़ करेगी।

यही बात जब मैंने बड़े सर से कही तो वे हँसकर बोले,'नहीं जनाब, तारीफ़ नहीं करती, आपको कोस रही है ! कहती है, इन सरकारी स्कूलों में बच्चों को डरना नहीं सिखाते। सर को देखते ही बच्चे डरकर चुपचाप बैठ जाएँ, यही सही तरीका है। भार्गवी तो अपने सर के बाल पकड़कर खींचती है !'

मुझे दुःख हुआ। एक दिन वह स्कूल आई तो मैंने उसे समझाने की कोशिश की कि बच्चों का मन कितना कोमल होता है, उन्हें डराना क्यों गलत है और पढ़ाई का असली मतलब क्या है। उसने मेरी बात नहीं मानी। बोली, 'घर में हमेशा ऊधम मचाती रहती है, साब। आप इसे ज़रा डरा-धमकाकर पढ़ने को कहो, साब। घर आते ही खेलने चली जाती है, किताब को हाथ ही नहीं लगाती।'

उससे क्या कहूँ, कैसे कहूँ कुछ समझ में नहीं आ

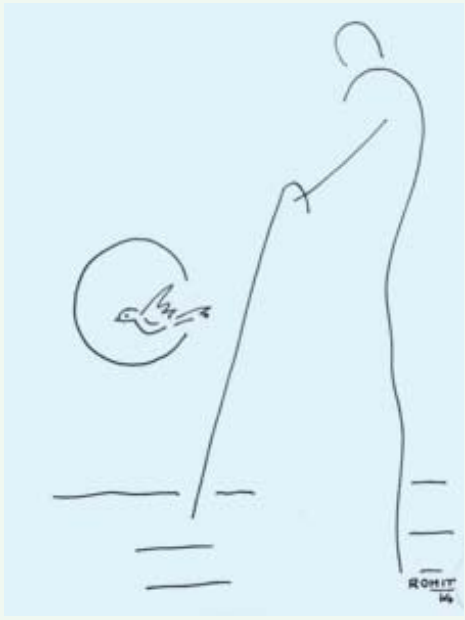

रहा था। 'देखो, अक्षर सीखना या कंठस्थ करना ही सबक सीखना नहीं होता. स्कूल में वह मन की बात स्वेच्छा से कहती है। सवाल पूछती है और नई बातें सीखती है,वह भी एक तरह से सीखना ही है। और फिर उसकी अभी उम्र ही कितनी है .।' मैंने मुस्कुराते हुए कहा।

उसने मेरी तरफ ऐसे देखा जैसे मैं कोई पागल हूँ और बकवास कर रहा हूँ। फिर बिना कुछ कहे वहाँ से चली गई।

पावनी के बुलाने पर मैं वर्तमान में लौट आया। दोनों बच्चों ने एक से बढ़कर एक सुन्दर लिखावट में अक्षर लिखकर मुझे दिखाए। उन दोनों ने जो लिखा मैंने उसे पढ़ने को कहा। वे ज़ोर-ज़ोर से अ,आ,इ,ई . पढ़ने लगे तो मुझे डर लगा कोई सुन न ले। मैंने उन्हें धीमी आवाज़ में पढ़ने को कहा। इसकी वजह थी एक हफ्ते पहले घटी एक घटना, जो अभी तक मुझे तकलीफ़ दे रही थी।

एक लड़की है, पल्लवी। बड़ी होशियार थी। स्कूल में आने के एक हफ़्ते में ही अ से अः तक सीख लिया। मैंने कहा घर जाकर अपने माँ-बाप को लिखकर दिखाए।

अगले दिन सुबह उसकी माँ स्कूल आई। मैंने सोचा मुझे शाबाशी देगी। तेलुगु अक्षरों से भरा स्लेट मेरे ऊपर फेंककर चिल्लाई, 'तेलुगु नहीं, अंग्रेज़ी. अंग्रेज़ी पढ़ाओ. यह तेलुगु किस काम का ?'

मुझे गुस्सा नहीं आया। उस पर दया आई। और अंग्रेज़ी के प्रति उसका मोह देखकर ज़रा डर भी लगा। समझाने के अंदाज़ में मैंने कहा, 'बहन, इस स्कूल में तेलुगु माध्यम में पढ़ाई होती है। फिर भी हम तेलुगु और अंग्रेज़ी, दोनों भाषाएँ सिखाते हैं। मेरी राय में पाँचवीं कक्षा तक बच्चों की पढ़ाई उनकी मातृभाषा, यानी तेलुगु में ही होनी चाहिए। अंग्रेज़ी पढ़ने से ही कोई बड़ा नहीं बन जाता।'

वह चली गई और अगले दिन से पल्लवी ने स्कूल आना छोड़ दिया। तब से मैं तेलुगु भाषा को पढ़ाते वक्त एहतियात बरत रहा हूँ।

बच्चों को अपनी जगह बैठने को कहा और बोर्ड पर मैं अक्षर लिखकर उनसे लिखवाने लगा, तभी हमारे बड़े सर कक्षा में आए। दोनों बच्चों को देखते हुए उदास होकर बोले, 'क्या करें सर ? रोज़ एक विकेट गिर जाता है ! भार्गवी भी शायद नहीं आई, है न ?'

'जी, नहीं आई। एक बार उसके घर जाकर देखता हूँ।' मैंने कहा।

'ठीक है। ज़रा समझा बुझाकर वापस लाने की कोशिश कीजिए। कहना हमारे स्कूल में भी अंग्रेज़ी ही पढ़ाते हैं। इन्हें अंग्रेज़ी का रोग लग गया है !'

'झूठ क्यों बोलें, सर? तेलुगु सीखने के लाभ बताएँगे। उसके बाद उनकी मर्ज़ी जो चाहें करें। उनकी नज़र में अक्षर सीखना ही पढ़ाई है.।' कहकर मैं भार्गवी के घर चला गया।

मुझे देखते ही भार्गवी का चेहरा खिल उठा, 'सर आ गए . सर आ गए।' कहकर उछलने लगी।

' तेरा सर ! चुप रह. ड्रेस पहन ले.।' उसकी माँ ने झिड़क दिया।

'मुझे ड्रेस नहीं पहनना, फ्रॉक पहनूँगी।' भार्गवी ज़िद करने लगी। माँ उसे पुचकार रही थी पर बच्ची अपनी ज़िद पर अड़ी थी।

तभी प्राइवेट स्कूल की गाड़ी आ गई। सूट-बूट पहने एक आदमी उतरा और उसे देखते ही भार्गवी ने चुपचाप स्कूल का ड्रेस पहन लिया।

वह आदमी भार्गवी की ओर सख्त नज़र से देखते हुए बोला, 'भार्गवी, व्हाई आर यू लेट ? टेक द बैग।' उस भारी थैले को बड़ी मुश्किल से भार्गवी ने उठाकर कंधे पर डाला। तब उस आदमी ने कहा,'टेक युअर टिफिन बॉक्स।' उसने डरते-डरते पानी की बोतल और टिफिन से भरी टोकरी ले ली। 'यू गो नाउ।' उसने गाड़ी की ओर इशारा करके कहा। भार्गवी फिर भी चुप रही, पर उसकी आँखें बरस पड़ने को थीं। आँसू रोकते हुए भारी डग भरते हुए वह गाड़ी की तरफ चल पड़ी। उस दृश्य को उसकी माँ बड़े प्यार से देख रही थी। उसे लग रहा था जैसे उसकी बेटी अभी से अंग्रेज़ी भाषा में

प्रवीण हो गई हो!

उस आदमी ने भार्गवी की माँ से कहा, 'कल स्कूल में नींद का बहाना कर रही थी और रोने लगी। दस मिनट डार्क रूम (अँधेरे कमरे) में बंद रखा. बस सारा दिन चूँ तक नहीं की। घर में भी अगर कहा न माने तो डार्क रूम याद दिलाएँ!' उसने मुस्कुराते हुए कहा। भार्गवी की माँ भी मुस्कुराई और बोली, 'कल रात देर तक कुछ लिखती रही, सुबह उठकर फिर कुछ कॉपी में लिखा। दो दिन में ही समझदार बन गई साब!' फिर उसने मेरी ओर देखा। मुझे फिर उसपर गुस्सा नहीं तरस ही आया। भार्गवी को देखकर बहुत दुःख हुआ।

गाड़ी में बड़ी मुश्किल से चढ़कर बैठ गई भार्गवी। जगह कम थी और बच्चों को अंदर ठूंस दिया गया था। सूटवाला फिर बोला, 'गाड़ी चार जगह घूमकर आएगी, इसलिए कल सुबह आठ बजे बेटी को तैयार रहने को कहो। शाम को घर पहुँचते-पहुँचते छह बज जाएँगे। घर आते ही होमवर्क कराना, खेलने मत भेजना.।' इतना कहकर वह चला गया।

वहाँ और भी औरतें थीं। अपने बच्चों को गाड़ी में बैठकर स्कूल जाते देख बड़ा गर्व महसूस कर रही थीं। टोकरी में रखे चूज़ों की तरह बच्चे साँस लेने को सर उठा उठाकर देख रहे थे। पर उनकी माँओं को कोई चिंता नहीं थी, हाथ हिला-हिलाकर उन्हें विदा कर रही थीं।

मैं अवाक् रह गया, समझ में नहीं आ रहा था क्या कहूँ। यह एक दिन में किसी एक शख्स में आया बदलाव नहीं लगा मुझे। घर के सामने ही सरकारी स्कूल होने के बावजूद हज़ारों रुपये खर्च करके प्राइवेट स्कूल भेज रहे हैं तो इसके पीछे कोई ठोस वजह होगी। शायद हमारे काम से विरक्त हो गए हैं!

कारणों को तलाशते स्कूल पहुँचा। अल्प विराम का समय हो गया, बच्चे हँसते-खेलते बाहर जाने लगे। बड़े सर मेरे ही इंतज़ार में थे शायद। मुझे देखते ही पूछ बैठे, 'क्या खबर है, सर?'

'जिसका डर था वही हुआ सर। इतना पढ़ लिखकर, हज़ारों रुपये वेतन लेकर भी लोगों को विश्वास नहीं दिला पाए हम, इस बात से शर्मिंदा हूँ। वह दिन दूर नहीं जब ये लोग हमें आड़े हाथों लेनेवाले हैं।' मैं थका सा बैठते हुए बोला।

बड़े सर ने इस बात को हलके से लिया और मुस्कुराकर बोले, 'क्या हम पढ़ाने से इंकार कर रहे हैं? मुफ्त में खाना और कपड़ा दे रहे हैं, किताबें दे रहे हैं, वे नहीं आना चाहते तो हम क्या कर सकते हैं? कभी न कभी सच उनकी समझ में आ ही जाएगा।'

सलीम सर भी वहीं बैठे थे। उन्होंने कहा, 'इन लोगों को अच्छे बुरे की पहचान नहीं है। हम बताते हैं तो ध्यान नहीं देते। ये सोचते हैं बच्चे हमेशा एक कोने में दुबककर बैठें और पढ़ते-लिखते रहें। खुद अपनी राय न बताएँ, सवाल न पूछें, सुबह से शाम तक बाहर न निकलें, किसी से मिले-जुले नहीं, किसी को दिखाई न दें। फिर बच्चों का विकास कैसे होगा? बाहर सरकार भी ऐसी ही है, घर में बड़े बुज़ुर्ग भी ऐसे हैं.।'

'सरकार भी कमाल करती है सर। अपनी ज़िम्मेदारी से मुँह मोड़कर बचने के लिए कहती है, सारा कसूर हमारा है। गलत प्रचार करती है। प्राइवेट स्कूलों में प्राथमिक सुविधाओं की कमी के बावजूद उन्हें खोलने की अनुमति देती है। पर हमारे लिए ट्रेनिंग, बेस लाइन, ग्रेडिंग सब ज़रूरी है, उनके लिए कुछ भी नहीं! हम परीक्षा में अंक देते हैं तो गलत, वे दें तो कोई बात नहीं?' पास बैठे चारी सर ने गुस्से में आकर कहा।

तभी शैलजा मैडम अंदर आई। उनसे हर कोई डरता है। उन्हें देखते ही सब बात करना बंद कर देते हैं। अब भी वही हुआ, पर शायद उन्होंने चारी सर की बात सुन ली थी।

मुस्कुराते हुए चारी सर की ओर एकटक देखते हुए पूछा, 'चारी सर, आपके बच्चे कहाँ पढ़ रहे हैं?' जवाब देते नहीं बना तो चारी सर बगलें झाँकने लगे।

कुर्सी पास खींचकर बैठते हुए शैलजा मैडम ने कहा, 'चलो मान लेते हैं कि सरकार गलत कर रही है। पर हम क्या कर रहे हैं? हम भी तो बच्चों को उन्हीं स्कूलों में भेज रहे हैं, है न ?हम जो पढ़ाते हैं, उस पर खुद हमीं को यकीन नहीं है, खाना या कपड़े के लालच में लोग कैसे यकीन करेंगे? गनीमत समझो कि वे हमसे सवाल नहीं करते, अपना रोना खुद रो रहे हैं!'

बात कड़वी थी पर उसमे दम था, मैं प्रशंसा भरी नज़रों से उनकी तरफ देखकर बोला, 'सच कहा मैडम, अगर यही हाल रहा तो कुछ ही समय में सरकारी पाठशालाएँ बंद हो जाएँगी। तब देखना प्राइवेट स्कूल लोगों की पहुँच से बाहर हो जाएँगे सिर्फ अमीर लोग ही किसी तरह दाखिला पा लेंगे, पर गरीबों का क्या होगा?'

मेरी बात सुनकर सब सोच में पड़ गए। पर शैलजा मैडम ने संजीदगी से मेरी ओर देखकर पूछा, 'आपको गरीबों के अशिक्षित रह जाने का डर है या अपनी नौकरी के जाने का?'

मुझे बुरा लगा। चेहरा तमतमा उठा। मैंने शिकायत भरी नज़रों से उसकी ओर देखा। फौरन उसने बात बदल दी। मुस्कुराकर मुझे देखते हुए बोली, 'जिस सरकार ने हमारी पाठशालाएँ बंद की, वही उन्हें राह दिखाएगी, सर। उन्हें कहीं और शिक्षा पाने को कहेगी। बात यह नहीं है। यह सोचना है कि जिन स्कूलों में बच्चों को सवाल पूछने की आज़ादी नहीं दी जाती, वहाँ उनका विकास कैसे होगा? सच्ची शिक्षा को लोग कैसे पहचान पाएँगे?'

तभी स्कूल की घंटी बजी। बच्चे कक्षाओं में पहुँच गए। मैं अपनी कक्षा में जाने लगा, शैलजा मैडम मेरे पीछे आकर दुःखी होते हुए बोली, 'एक बार सोचिए, सर, हमारे अध्यापकों में भी कितने ईमानदारी से काम करते हैं? पढ़ाने में ध्यान न देकर दुनिया भर के मामलों में उलझे रहते हैं। फिर लोग हम पर कैसे यकीन कर पाएँगे?'

मैंने असहमति जताते हुए कहा, 'आप गलत सोच रही हैं मैडम। अगर व्यवस्था में कमियाँ हों तो उन्हें सुधारना चाहिए, उसका बहाना बनाकर निकल जाने की कोशिश नहीं करना गलत होगा। हमारी शासन व्यवस्था लोगों के कल्याण के लिए बनी है। उनके जीवन से खिलवाड़ करना ठीक नहीं होगा। और फिर पाँच कक्षाओं को पढ़ाने के लिए दो अध्यापकों की नियुक्ति करेंगे तो काम कैसे होगा? आप ही बताइए, बच्चों को ठीक से शिक्षा देनी हो तो हर कक्षा के लिए एक अध्यापक का होना ज़रूरी है कि नहीं? ऐसा कहाँ हो रहा है?'

न जाने क्या सोचा था शैलजा मैडम ने, कोई जवाब दिए बिना ही चली गई।

बारी-बारी से हम क्लास बदलते हैं, इसलिए मैं फिर पहली कक्षा को पढ़ाने गया। दोनों बच्चे मेरे ही इंतज़ार में बैठे थे। मेरे अंदर जाते ही बच्चों ने गिनती लिखकर दिखाई।

मैंने उन्हें सुन्दर ढंग से लिखना सिखाया। फिर स्लेट परे रखकर बाहर मैदान में जाने को कहा। सुन्दर लिखावट के लिए मिट्टी में चित्र बनाना ज़रूरी है, यह मैं जानता था।

बच्चे बड़े उत्साह से चित्र बनाने लगे। माँ का चित्र बनाने को कहता तो बिंदी और चूड़ियाँ चित्रित करते। बाप का चित्र बनाने के लिए मूँछ बना रहे थे। इतनी कम उम्र में ऐसी बातों पर ध्यान देना बड़ी बात थी।

पर मैं यहाँ काम ज़्यादा देर नहीं कर पाया। स्कूल के सामने से गुज़रने वाले समझने लगे कि मैं पाठ नहीं पढ़ा रहा हूँ और बच्चों को यूँ ही खेलने छोड़कर, आराम कर रहा हूँ। एक दो ने यहाँ तक कहा, 'अरे, सिर्फ दो ही रह गए ? कम से कम इन्हें ठीक से पढ़ाइए, ऐसे खेलने मत दीजिए।'

मुझे लगा मेरे दिल में कोई सुइयाँ चुभो रहा है। रूसो और फ्रायड को समझा, प्लेटो का विश्लेषण किया, मूल्यांकन करना भी सीखा, फिर भी लोगों को विश्वास नहीं है कि मैं अच्छा पढ़ा सकता हूँ। मेरे मन में एक सवाल हूक सा उठा-क्या उन्हें विश्वास नहीं हो रहा है या मैं ही उन्हें विश्वास नहीं दिला पा रहा हूँ?

फौरन कक्षा में पहुँचा। बच्चे अब भी चित्र बनाने की ज़िद करने लगे। मना करते हुए उन्हें समझाया, अब पढ़ाई करेंगे। गिनती का अंक, एक के बारे में बताया और एक उँगली दिखाकर पूछा, यह कितना है ? बच्चे नहीं बता सके। मैंने 'एक' कहने ही वाला था तभी पावनी की माँ वहाँ आ पहुँची। मैं चौंक उठा। 'एक' को गले में ही रोककर ज़ोर से, 'वन. वन.' कहा और डरते-डरते उसकी तरफ़ ऐसे देखा मानो पूछ रहा हूँ कि क्यों आई हो ?

उस औरत ने किताबों का एक गट्ठा मेरे सामने रखा। मैंने उन्हें ध्यान से देखा, पहली कक्षा की किताबें थीं। होली फेथ के नोट्स, हैंड राइटिंग, ड्राइंग और न जाने क्या-क्या, कुल मिलाकर बारह किताबें थीं। मैंने पूछा, 'ये किताबें मेरे पास क्यों लाईं ?'

उसने कहा, 'पावनी के लिए सर, बाकी बच्चों के साथ प्राइवेट स्कूल भेज देती पर घर की हालत ठीक नहीं है। इन किताबों के लिए ही चार दिन मज़दूरी करनी पड़ी।'

मेरा सर अचानक भारी लगने लगा। उसकी तरफ देखा। उसके चेहरे पर परेशानी नज़र आई जैसे सोच रही हो कि उसकी बेटी कहीं पिछड़ न जाए। दोनों बच्चे हमारी तरफ उत्सुकता भरी नज़रों से देख रहे थे। पावनी मेरी बगल में आकर खड़ी हो गई और बड़े गर्व से किताबें देखने लगी। मुझे लगा पावनी की माँ अकेली नहीं आई, सबकी तरफ से उनकी इच्छा प्रकट करने मेरे पास आई है।

मेरे पास भी पाठ्यक्रम की किताबें थीं। पावनी की माँ को वे किताबें दिखाकर बोला, 'इन किताबों से काम चल जाएगा, ये इन्हीं बच्चों के लिए विशेष रूप से लिखी गई हैं। आप जो किताबें लाईं उनकी ज़रूरत नहीं होगी। हाँ, मैं गृहकार्य भी करने को दूँगा।'

पर वह नहीं मानी, अड़ गई कि वह जो किताबें लाई, उन्हीं में लिखी बातें सिखाऊँ। मैं उससे बहस नहीं करना चाहता था, सो कहा,' ठीक है, आप बड़े सर के पास जाकर बात करो।' वह चली गई। न जाने उन दोनों में क्या बातें हुईं, वह दोबारा मेरे पास नहीं आई।

लंच के वक्त इसी बात पर चर्चा हुई। बच्चों को गिनकर आए सलीम सर ने कहा, ' हम अवरोहण की दशा में हैं, जल्दी ही सिफर पर पहुँच जाएँगे !' आपस में कुछ भी नहीं कह रहे थे पर हम सब की मनोदशा भूचाल को पहले से भाँपने वाले पक्षियों की तरह विकल थी।

अपना टिफिन का डिब्बा खोलते हुए चारी सर ने उदास स्वर में कहा, 'यह कैसा अन्याय है, छोटे छोटे बच्चे सुबह आठ बजे घर से स्कूल जाते तो शाम छह बजे तक घर नहीं लौटते? और घर आते ही इतना सारा होमवर्क. बेचारे क्या हाल होगा उनका ? यह पढ़ाना है या मार डालना? देखना, कल को ये मशीनें बन जाएँगे इंसान नहीं रह जाएँगे !'

मैं चुप बैठा रहा। बच्चों के हाथ धुलाकर शैलजा मैडम भी आ गईं उसने चारी सर की बातें सुन लीं तो धीरे से बोली, 'पर माँ-बाप भी वही चाहते है न सर! रातों-रात बच्चे महान् बन जाएँ, बस यही सनक सवार है। अब तो एक ही बात स्पष्ट है, समाज जिसे शिक्षा समझता है, वह हम नहीं दे पा रहे हैं, या यूँ कहें कि हम जिसे शिक्षा कहकर बच्चों को दे रहे हैं, उसे समाज लेना नहीं चाहता। अब या तो हमें बदलना होगा या उनकी सोच में बदलाव लाना होगा। अच्छी शिक्षा के बिना किस तरह के समाज का निर्माण होगा?'

मैं खुश था कि चलो शुक्र है कि इस बार शैलजा मैडम ने किसी को आड़े हाथों नहीं लिया, और उसकी बातों में जो सचाई थी, उसे नकारना भी मुश्किल था। मन ही मन सोचा,'अभी के अभी उस विकृत शिक्षा की पद्धति को हमें भी अपनाना होगा, या लोगों को समझाना होगा कि वह कितना खतरनाक है। पर सुनेगा कौन, सब हमीं को असमर्थ समझेंगे।'

बच्चों के खाने का इंतज़ाम करके बड़े सर भी आ गए। उनके चहरे पर एक तरह की खुशी झलक रही थी। आते ही कहा, 'लोग हमारी बात मानते हैं। मैंने पावनी की माँ को अच्छी तरह समझाया कि शिक्षा किसे कहते हैं। अब इस जन्म में वह बेटी को प्राइवेट स्कूल नहीं भेजेगी। जानते हैं उसने जाते-जाते क्या कहा? फूल जब अपने आप खिलता है तभी खुशबू देता है, ज़बरदस्ती पंखुड़ियाँ खोलेंगे तो मुरझा जाएगा ! पावनी को हमारे स्कूल भेजने में वह गर्व महसूस करती है !'

मेरे मन को तसल्ली मिल गई। मैंने कहा, 'सच है सर, बच्चा खेले कूदे, गाए-नाचे, खुद खोजे और समझे, बहस करे, सवाल करे. कक्षा का मतलब वह आकाश है जहाँ ज्ञान का विस्तार होता है ! उसे पूरी आज़ादी मिलाना ज़रूरी है। मैं यह नहीं कहता कि हमारी पाठशाला ही अच्छी है, पर अंधाधुंध दूसरों की नक़ल करके बच्चों की बलि न चढ़ाई जाए। और शिक्षा कोई खाद नहीं कि तुरंत फल दे।' मैं अपने अध्ययन के आधार पर बहुत कुछ बोल गया।

'लगता है इस बात को लेकर आप बहुत उत्तेजित हो रहे हैं।' शैलजा मैडम मुस्कुराई।

मैं नहीं मुस्कुराया, 'यह संधि युग है। सही क्या है और गलत क्या है, इस बात को स्पष्ट करना ज़रूरी है। अच्छी शिक्षा जहाँ से भी मिले, उसे स्वीकार करना चाहिए। पर शिक्षा के नाम पर नन्हीं कलियों को मसल देना कहाँ की बुद्धिमानी है? मिलावट से भरे समाज में शिक्षा में भी मिलावट होने लगी है, इसी बात का दुःख है। अच्छी और सच्ची बातों को बीनकर अलग करना पड़ता है।' मैं मन ही मन सोचने लगा।

पर मेरी खुशी एक ही दिन में काफूर हो गई। अगले दिन पावनी की माँ दूसरे लोगों के साथ शान से खड़ी होकर गाड़ी में बैठी अपनी बेटी को विदा करती दिखाई दी। मैं कक्षा में गया तो प्रशांत अकेला वहाँ बैठा था। वह मुझे देखते ही मेरे पास आया और मुस्कुराते हुए बोला, 'सर, सर, मेरी मम्मी मुझे कल चिचिल्ला भेजने वाली है, सर!'

मेरी आँखों में आँसू भर आए। कारण कुछ भी हो, एक महान् समाज का निर्माण करने वाली कक्षा सूनी होती जा रही है !

❒

एसिड अटैक और प्रेम की प्रति हिंसा

सुधा अरोड़ा

अक्सर जीवन में ऐसे अन्तर्विरोध सामने आते हैं कि यह समझ पाना मुश्किल होता है कि इस दुनिया को किस नज़रिए से देखा जाए। ये अन्तर्विरोध दो दुनियाओं के फर्क को बड़ी बेरहमी से हमारे सामने ले आते हैं और नए सिरे से सोचने पर मजबूर करते हैं कि क्या सारी स्त्रियाँ पुरुष सत्ता या वर्चस्व की शिकार हैं या उनका एक खास हिस्सा ही इससे पीड़ित है? कहीं स्त्रियाँ पुरुष उत्पीड़न की सीधे शिकार है तो कहीं वह पुरुष वर्ग की आकांक्षाओं के अनुरूप विमर्श की सामग्री तैयार करती हुई पुरुषवादी एजेंडे को ही मजबूत बनाने की कवायद में लगी है। दो घटनाओं के मद्देनज़र इस पर एक बार फिर विचार करने की ज़रूरत है।

3 मई 2013 की सुबह के अखबार के पहले पन्ने की एक खबर पढ़कर मन उचाट हो गया। बांद्रा टर्मिनस पर दिल्ली से गरीब रथ एक्सप्रेस से मुंबई में पहली बार उतरी प्रीति राठी के ऊपर एक व्यक्ति ने एसिड फेंक दिया। हमलावर ने उसके कंधे पर पीछे से हाथ रखा और जैसे ही लड़की ने पीछे घूम कर देखा, उसके चेहरे पर एसिड फेंक कर वह भाग गया। इतनी भीड़ वाले इलाके में भी कोई उसे रोक या पकड़ नहीं कर पाया और वह एक ज़िन्दगी बर्बाद कर फरार हो गया। न सिर्फ प्रीति का चेहरा और एक आँख झुलस गई, एसिड उसके हलक से नीचे भी पहुँच गया। दो घंटे उसे कोई चिकित्सा नहीं मिल पाई।

22 साल की बेहद मासूम सी दिखती लड़की प्रीति राठी ने सैनिक अस्पताल अश्विनी में नर्स की नियुक्ति के लिए बहुत सारे सपनों के साथ पहली बार मुंबई शहर में कदम रखा था। उसके हस्तिलखित पत्रों की भाषा जिस तरह से हताशा और चिंता से भरी हुई थी, वह न केवल दिल दहलाने वाली थी बल्कि एक स्त्री के जीवन में आजीविका के समानांतर किसी और विकल्प के गैरज़रूरी होने का भी सबूत देती थी। वह लिख रही थी; क्योंकि वह बोल नहीं सकती थी। वह लिख रही थी; क्योंकि वह देख नहीं सकती थी। वह लिख रही थी; क्योंकि उसके पास कई सारे सवाल थे पर उसका जवाब किसी के पास नहीं था। एक लड़की अस्पताल में जीवन और मृत्यु से जूझ रही है; लेकिन जब भी उसे होश आता है तो वह अपनी नौकरी के बचने और छोटी बहनों के सुरक्षित रहने की चिंता व्यक्त करती है, माता पिता को टेंशन न पालने की हिम्मत देती है और हत्यारे के पकड़े जाने की खबर के बारे में पूछती है। अस्पताल में लिख-लिख कर अपने पिता तक अपनी बात पहुँचाते हुए उसका आख़िरी नोट

सुधा अरोड़ा
1702, सालिटेयर
हीरानंदानी गार्डन, पवई, मुम्बई 400076
संपर्क-09757494505
ई-मेल : sudhaarora@gmail.com

यह था कि उसे महँगे अस्पताल में न डालें, खर्च बहुत हो जाएगा। उसका यह सरोकार अपने मध्य वर्गीय हैसियत वाले पिता के प्रति एक ज़िम्मेदारी के अहसास से उपजा था। लेकिन मसीना अस्पताल से महँगे अस्पताल-बॉम्बे हॉस्पिटल पहुँचने तक वह कोमा में जा चुकी थी। उसके फेफड़े एसिड के असर से इस कदर झुलस चुके थे कि जला हुआ एक पिंड बनकर रह गए थे।

मीडिया का स्त्री विरोधी रुझान

एक महीना पहले यह दिल दिमाग को सुन्न कर देने वाली खबर थी। 3 मई को, टी वी के किसी चैनल पर इस विचलित कर देने वाली इस खबर को सुनने के कुछ ही घंटों बाद दिल्ली से प्रकाशित हिन्दी की एक रंगीन महिला पत्रिका की रिपोर्टर का फ़ोन आया। नाम पूछा तो उसने कहा--प्रीति ! सुबह की प्रीति राठी अभी एक सदमे की तरह मुझ पर हावी थी। तब तक इस पत्रकार प्रीति ने फ़ोन करके अपने अगले अंक की परिचर्चा पर सवाल पूछा-आपकी उम्र क्या है ? मैंने उम्र बताई-छियासठ। अगला सवाल-क्या आपको मेनोपॉज़ हो गया है ? मैंने अपनी उम्र दोहराई। बोली-ओह सॉरी, मैंने सुना-छियालीस। हम कुछ सेलिब्रिटीज़ से पूछ रहे हैं कि मेनोपॉज़ के बाद औरतों में सेक्स इच्छा कम हो जाती है क्या? सुनकर दिमाग चकरा गया। मैंने उसे कहा -इतनी समस्याओं से जूझ रही हैं औरतें और आपको सेक्स पर बात करना सूझ रहा है, कोई गंभीर मुद्दा नहीं मिला आपको? हँसते हुए जवाब मिला-हमने मार्च अंक में गंभीर मुद्दे भी उठाए पर वो कोई पसंद नहीं करता ! हाल ही में बाज़ार में लॉन्च हुई इस गृहिणीप्रधान महिला पत्रिका को बेचने के लिये हर अंक में सिर्फ सेक्स की ही ज़रूरत क्यों पड़ती है? कौन सी महिलाएँ हैं, जो मेनोपोज स्त्री की कामभावना के ज्ञान से अपने दिमाग को तरोताज़ा बनाए रखना चाहती हैं ? क्या महिलाओं का नया पाठक वर्ग अपने समय और उसके सवालों से पूरी तरह कट गया है और वे किसी गंभीर मुद्दे पर प्रकाशित कोई सामग्री नहीं पढ़ते? ये सारे सवाल उस भयावहता की तरफ दिल-दिमाग को बार-बार ले जाते हैं, जो स्त्री के खिलाफ एक फिनोमिना तैयार करते हैं और तब हम पाते हैं कि केवल पुलिस और अदालतें ही नहीं, मीडिया भी बहुत कुछ स्त्री-विरोधी रुझानों से संचालित है। लोकतन्त्र का चौथा स्तम्भ कहलाने वाला मीडिया इन प्रवृत्तियों से लड़ने और उन पर सवाल खड़ा करने की जगह, स्त्री को एक कमोडिटी की तरह ही पेश कर रहा है।

स्त्रियों के लिए लगातार भयावह होती जा रही इस दुनिया के बारे में गंभीरता से विमर्श होना चाहिए, क्योंलकि आज की सबसे बड़ी चिंता यह है कि कानून की सख्ती के बावजूद अपराधी इस कदर बेलगाम क्यों हुए जा रहे हैं और ऐसी घटनाओं को बार-बार दोहराया क्यों जा रहा है? सड़क पर उतर आई युवाओं की भीड़ हममें जनांदोलन का जज़्बा पैदा करती है, पर हर उम्मीद ऐसे हादसों में दम तोड़ती नज़र आती है। बलात्कार और हत्या की हर घटना के देशव्यापी विरोध के बाद हम आशावादी होकर सोचते हैं-अब ऐसी घटना न होगी और अभी साँस ठीक से ले भी नहीं पाते कि एक और घटना हमारी संवेदना के चिथड़े उड़ा देती है। क्याल हमारा भारतीय समाज अपवाद रूप से एक संवेदनाशून्य समाज में तब्दील हो चुका है?

इनकार से उपजी प्रतिहिंसा

अपने देश के स्त्री-विरोधी पर्यावरण के वर्तमान से हमें अतीत के दरवाज़े तक जाना होगा। एसिड अटैक की अधिकतर घटनाओं के पीछे प्रेम एक बुनियादी कारण होता है। सदियों से प्रेम हर समाज में मौजूद रहा है लेकिन एसिड अटैक का इतने भयानक रूप से प्रचलित प्रतिशोध इससे पहले कभी नहीं था। प्रेम में हज़ारों दिल टूटते हैं और उनकी उदासी हताशा में बदल जाती है, लेकिन ऐसा हिंस्र वातावरण पहले कभी नहीं था। तब भी नहीं, जब हमारा समाज आज की तुलना में अधिक दकियानूसी और भेदभावपूर्ण माना जाता था। आज से पच्चीस-तीस साल पहले के रूढ़िवादी समाज में भी ऐसे अटैक लड़कियों पर नहीं हुआ करते थे, फिर आज ये इस कदर क्यों बढ़ गए हैं ? आज स्थितियाँ बिलकुल विपरीत हो गई हैं। यह असहिष्णुता से उपजा प्रतिकार है, हिंसा है। लड़कों को लड़कियों से ''ना'' सुनने की आदत नहीं है। लड़की होकर इनकार करने की हिम्मत कैसे हुई उसकी ? इसे प्रेम निवेदन या सेक्स निवेदन करने वाला लड़का या किसी भी उम्र का मर्द अपनी हेठी समझता है और प्रतिहिंसा के लिए उतावला हो उठता है। आज उस समय की प्लेटॉनिकता (भावात्माक लगाव) तो दुर्लभ है ही, उसकी जगह दूसरी कुंठाओं ने भी ले ली है। अधिकतर मामलों में प्रेम एकतरफा होता है।

एक अन्य कारण लड़कियों का अपने लिए मुकाम बनाना और अपनी प्रतिभा को दर्ज करवाना भी है। सहशिक्षा बढ़ने और जीवन शैली में आधुनिकता का बोलबाला होने के साथ ही हम देख सकते हैं कि आम लड़कियों में जहाँ अपने जीवन और उसके फैसलों को लेकर जागरूकता बढ़ी है, ठीक इसके समानान्तर लड़कों में उनके वजूद को लेकर एक नकार की भावना पनप रही है। आज जहाँ लड़कियाँ हर क्षेत्र में अपनी योग्यता का परचम लहरा रही हैं, वहीं लड़कों के मन उनके प्रति असहिष्णुता और दुर्भावना का एक अनुत्तरित भंडार है। लड़कियाँ कैरियर, प्रेम और शादी जैसे मसले पर स्वयं निर्णय लेने और नापसंदगी को ज़ाहिर करने में अपनी झिझक से बाहर आ रही हैं, हर क्षेत्र में वे एक विजेता की तरह उभर रही हैं, कामयाबी के झंडे गाड़ रही हैं और लड़कों को उनका यही रवैया सबसे नागवार गुज़र रहा है। क्या ये सिर्फ ठुकराये हुए प्रेमी ही हैं या प्रतिभावान लड़कियों से केरियर की दौड़ में पीछे रह जाने वाले कुंठित प्रत्याशी भी ? इस दुर्भावना का ही परिणाम है तेज़ाबी हमले कि लो, हमने तुम्हारा सब कुछ ध्वस्त कर दिया, अब सिर उठाकर चलकर दिखाओ।

दिल्ली से प्रज्ञा सिंह अपने साथ तेज़ाबी हमले की चार और भुक्तभोगी लड़कियों को लेकर प्रीति राठी को हौसला दिलाने के लिये मुंबई पहुँची। उसने कहा कि वह उन चंद बचा ली गई लड़कियों में से है, जिन्हें एसिड के खतरनाक हमले से बचाया जा सका क्योंकि उसके माता-पिता महँगा खर्च अफोर्ड कर सकते थे। एसिड अटैक की शिकार का इलाज करवाना एक सामान्य मध्यमवर्गीय परिवार के लिए नामुमकिन है। बैंगलोर निवासी, तीस वर्षीय एक लड़की ने बताया कि सात साल पहले, उसकी शादी के सिर्फ दस दिन बाद, जब वह एक कैंपस में इंटरव्यू के लिये जा रही थी, उससे प्रेम का दावा करने वाले एक लड़के ने उस पर तेज़ाब फेंका। प्रीति राठी की तरह उसकी भी पहली चिंता यही थी, कि क्या उसे अब नौकरी मिल पाएगी। प्रेम से ज़्यादा कैरियर में पीछे छूट जाने की कुंठा भी इस हिंसा को हवा देती है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

लैंगिक असमानता

जब तक लड़कियों में ना कहने का साहस नहीं था, समाज अपनी यथास्थिति बनाए रखते हुए, लड़कियों को उनकी कमतर स्पेस में रखते हुए संतुष्ट था। सारी आधुनिकता और शिक्षा के बावजूद एक पुरुष के लिए उसके प्रेम को नकारा जाना उसकी ज़िन्दगी की सबसे शर्मनाक और अपमानजनक स्थिति है, जिसे वह आसानी से स्वीकार नहीं कर पाता। भारतीय समाज और परिवार ने 'ना' सुनने के लिये लड़कों की मानसिकता तैयार ही नहीं की।

बदलती हुई जागरूक लड़कियों के समाज में दिनोदिन इस तरह की चुनौतियाँ बढ़ती जाएँगी; क्योंकि लडकियाँ अपनी सोच और मानसिकता में बदल रही हैं पर लड़के उस अनुपात में अपने को बदल नहीं पा रहे। उनके लिए लड़कियों का दोयम दर्जा आज भी बरक़रार है।

भारत में आम जनता पर सिनेमा का कितना प्रभाव रहा है और किस तरह सिनेमा आम वर्ग की मानसिकता का निर्माण करता है, इसे भूलना नहीं चाहिए। नब्बे का दशक उदारीकरण और मुक्त बाज़ार का दौर रहा। इस दशक के शुरुआत में हॉलीवुड में कुछ ऐसी फिल्में आती हैं; जिसमें एक डरी हुई औरत हमारे भीतर उत्तेजना और सनसनी फैलाती है। ''स्लीपिंग विथ द एनिमी'' में जूलिया रॉबर्ट्स का चरित्र हिन्दी सिनेमा को इतना रास आया कि इस प्रवृत्ति पर कई अनुगामी फिल्मों की कतार लग गई और उनमें से अधिकांश ने बॉक्स ऑफिस पर झंडे गाड़े। इन सभी फिल्मों में उत्सर्ग और त्याग, समर्पण और विसर्जन की भावनाओं की जगह अधिकार, कब्जा जताना और हासिल करना बुनियादी विशेषताएँ थीं। इस एंटी हीरो ने खलनायक के सारे दुर्गुणों के प्रति स्वीकार्यता और समर्थन का माहौल बनाया। शाहरुख खान की कई फिल्मों-बाज़ीगर, डर, अंजाम, अग्निसाक्षी आदि ने प्रेम को हिंसा में बदलने वाले जार्गन का विस्तार किया और एक खलनायक की सारी बुराइयों के बावजूद दर्शकों की पूरी सहानुभूति को बटोरा। बेशक अंत में उसे मरते हुए दिखाया गया पर उसकी मौत ने दर्शकों के मन में टीस पैदा की। मौत को भी महिमामंडित किया गया। दिल एक मंदिर और देवदास जैसी फिल्मों के भावनात्मक प्रेम की यहाँ कोई जगह नहीं थी। फिल्मों से भारतीय मानस का एक बड़ा वर्ग प्रभावित होता है और वह हुआ। युवा पीढ़ी के जीवन में ये खलनायकी प्रवृत्तियाँ बग़ैर किसी अपराध बोध के शामिल हो गईं उसके लिए किसी तर्क की ज़रूरत नहीं थी। अगर शाहरुख खान जूही चावला को दहशत के चरम पर पहुँचाकर अपने प्रेम की ऊँचाई और गहराई का परिचय देता है और हिंसक होने के बावजूद नायक से ज़्यादा तालियाँ और सहानुभूति बटोरकर ले जाता है, तो आम प्रेमी ऐसा क्यों नहीं कर सकता! टी शर्ट पर ''आय हैव किलर इंस्टिंक्ट''और ''कीप काम एंड रेप देम'' ''कीप काम एंड हिट हर'' जैसे नेगेटिव जुमले फहराने वालों की जमात में इज़ाफा हुआ। टी शर्ट पर 'सुनामी' 'टॉरनेडो' 'लाइटनिंग' जैसे हिसंक शब्द 'क्या कूल हैं हम' का पर्याय माने जाने लगे। ऐसे जुमलों वाली टी शर्ट एक ऑस्ट्रेलियाई गारमेंट फैक्टरी में तैयार की गई पर इनका आफ्टर एफेक्टल (असर) एशियाई देशों में ज़्यादा दिखाई दिया। दरअसल सांस्कृगतिक आदान-प्रदान और आयातित आधुनिकता अपने साथ बहुत सारा कूड़ा-कचरा और प्रदूषण भी लाती हैं और हर देश के जागरूक समाज को अपने तईं यह तय करना चाहिए कि उसे क्या लेना और क्या छोड़ना है।

विडम्बना यह है कि भारत में विदेशी उपकरणों और वस्त्रों की खरीद के लिए एक वर्ग के पास अकूत पैसा है पर इसका खामियाज़ा उस मध्यमवर्ग और निम्नर मध्यरवर्ग को उठाना पड़ता है, जो इस तरह की चकाचौंध के बीच एक सांस्कृतिक सदमे से गुज़रता है और तय नहीं कर पाता कि इस दौड़ में उसकी अपनी जगह कहाँ है।

कुछ महीने पहले पाकिस्तान में तेज़ाब हमले की शिकार लड़कियों की त्रासदी पर आधारित एक वृत्तचित्र-'सेविंग फेस' चर्चा में था, जिसे ऑस्कर मिला था। तेजाब का हमला हत्या से कमतर अपराध नहीं है। यह एक लड़की को जीवन भर के लिए विरूपित कर उसे हीनभावना से ग्रस्त कर देता है। ऐसी लड़कियों की अनगिनत कहानियाँ हैं और ये सभी पुरुष-वर्चस्व, पितृसत्ता और भारतीय पूंजीवाद के गर्भ से पैदा हुई हैं। ये कहानियाँ सिर्फ तथ्य नहीं हैं। ये हमारे समाज की उस बीमारी के कैंसर होते जाने की दास्तां हैं, जो संवैधानिक रूप से हमें लोकतन्त्र और बराबरी का दर्जा मिलने के बावजूद इतनी गंभीरता से हमारे जीवन को खोखला करती रही हैं कि इसके चलते सोच-संस्कृति और व्यवहार में हम लिंग, जाति, धर्म और क्षेत्र से बाहर एक मनुष्य की तरह सोच ही नहीं पाते। मनुष्य के रूप में हम कायदे से भारतीय भी नहीं हो पाये, विश्व-मानव बनना तो बहुत दूर का सपना है।

यह जानना भी ज़रूरी है कि स्त्री के संबंध में हमारा सामाजिक पर्यावरण कैसा है और उसमें लोकतन्त्र की सभी संस्थाएँ, विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका स्त्री के प्रति व्यवहार की कैसी नज़ीर पेश कर रही हैं? इससे हमारे युवा किस तरह की सीख ले रहे हैं ? इसे हम कुछ सामान्य उदाहरणों के माध्यम से समझ सकते हैं। कार्यस्थल पर यौन-शोषण और दुर्व्यवहार भारत में एक जाना-पहचाना मामला है। आमतौर पर स्त्रियाँ इससे बचती हुई अपनी आजीविका को बचाने की जुगत में लगी हैं। अमूमन वे या तो चुप्पी साध लेती हैं या समझौता करते हुए वहाँ बनी रहती हैं; लेकिन जो इस मामले के खिलाफ खड़ी होती हैं और इसे बाहर ले जाने का साहस करती हैं, उन्हें सबसे अधिक खामियाज़ा सामाजिक रूप से उठाना पड़ता है। चरित्र-हत्या और कुप्रचार के सहारे उन्हें इतना कमज़ोर कर दिया जाता है कि वे अक्सर अपनी लड़ाई अधूरी छोड़ देती हैं या बीच में ही थक कर बैठ जाती हैं। इसका सबसे नकारात्मक असर यह है कि जन-सामान्य, स्त्री के प्रति हुए अन्याय के खिलाफ खड़े होने की जगह, अपनी धारणा में उसे 'चालू' मान लेता है। यही धारणा लगातार विकसित होती रहती है, जो अपने जघन्य रूप में स्त्री के प्रति अपराध को रोज़मर्रा की एक सामान्य सी घटना बना देती है।

ऐसी स्थिति में पत्रकारिता अपना दायित्व कितना निभा रही है या सब कुछ बाज़ार की भेंट चढ़ गया है। मांग पूर्ति के नाम पर कुछ भी परोसा जा रहा है। जैसे छोटे परदे पर सास-बहू प्रसंगों, विवाहेतर संबंधों और कुटिल स्त्रियों के महिमामंडित पात्रों को दिखाकर यह कहा जाता है कि टी.आर.पी. की माँग यही है, वैसे ही महिला पत्रिकाएँ अपनी साठ पन्नों की पत्रिका में छह पन्ने भी स्त्री की त्रासदी के प्रति घरेलू गृहिणियों को जागरूक बनाने के लिए यह कहकर नहीं देतीं कि घरेलू औरतों की इन सबमें कहाँ कोई दिलचस्पी है। स्त्रियों के लिए ऐसी भयावह स्थितियों के बीच, हमारी रंगीन महिला पत्रिकाएँ अपना सामाजिक दायित्व भूलकर कब तक सेक्सी दिखने के तौर-तरीके और कामवासना को बाज़ार के नाम पर उस समाज के बीच परोसती रहेंगी, जहाँ हर दिन बच्चियों पर बलात्कार और युवा लड़कियों पर तेज़ाबी हमले हो रहे हैं। इन दो दुनियाओं में इतनी बड़ी खाई क्यों है और इसे पाटने का क्या कोई रास्ता है ?

पुलिस थानों और अदालतों में स्त्री के संबंध में संवेदनहीन रवैया मौजूद होना आम बात है। अपराधी वहाँ अपने पैसे और प्रभाव के बल पर पुलिस और क़ानून को अपने प्रति सहृदय बनाने की कोशिश करता है और अक्सर स्त्री को झूठी साबित कर दिया जाता है। हमारी युवा पीढ़ी में पैसे और प्रभाव का बोलबाला बढ़ा है। बेशक यह सब ऊपर से नीचे लगातार प्रसरण करता रहता है। लिहाज़ा कानून का उसे डर नहीं। जहाँ हर चीज़ पैसे से खरीदी जा सकती हो, वहाँ पुलिस, न्याय व्यवस्था सब कुछ सत्ताधारी को अपनी मुट्ठी में नज़र आता है, फिर डर किसका? कई समृद्ध, रसूख वाले पूंजीपति या राजनेताओं के अपराध के मामलों को जिस तरह पैसे के बूते दबा

दिया जाता है और गवाहों को खरीद लिया जाता है, उसके बाद इस वर्ग की मनमानी और बढ़ जाती है 7

जुर्म के मुकाबले अपर्याप्त सज़ा

एसिड अटैक की इन घटनाओं की क्रमवार शृंखला से निजात पाने के लिए जनता का एक बड़ा वर्ग कड़े कानून की मांग कर रहा है, लेकिन हमें इस विषय पर गंभीरता से विचार करना होगा कि अगर हमारी राजनीति और अर्थव्यवस्था सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर हरसंभव पशुता को ही बढ़ावा दे रही है तो मात्र कानून इस प्रवृत्ति से छुटकारा नहीं दिला सकता। हमें उस बिंदु तक पहुँचना होगा, जहाँ से ये सारी चीजें संचालित और नियंत्रित हो रही हैं। अगर सत्ता के करीबी वर्ग में जड़ जमा चुकी गड़बड़ियाँ, नीचे और हाशियाई वर्गों में फैलेंगी तो उसका परिणाम भयावह होगा ही। निश्चित ही लड़कियाँ हर कहीं इन स्थितियों की सबसे आसान शिकार (सॉफ्ट टारगेट) है।

हत्या के सभी औज़ारों में सबसे सस्ता, घातक और आसानी से उपलब्ध हथियार है-एसिड। तीस रूपये में एक बोतल मिल जाती है और आम तौर पर ऐसे तेज़ाबी हमला झेलने वालों की ज़िन्दगी की भयावहता और बाकी की त्रासद ज़िन्दगी के लिए लगातार हीनभावना, घुटन में जीने के बावजूद हमला करने वाले को हत्यारे की श्रेणी में नहीं रखा जाता। ज़्यादा से ज़्यादा दस साल की सज़ा और दस लाख तक के जुर्माने का प्रावधान है; जबकि तेज़ाबी हमले से विरूपित चेहरे की प्लास्टिक सर्जरी का खर्च तीस लाख से ज़्यादा होता है। जब एसिट अटैक का शिकार अपनी पूरी ज़िन्दगी एक विरूपित चेहरे, दैहिक तकलीफ़, मानसिक यातना, समाज से उपेक्षा को झेलते हुए जीता है, हत्यारा कुछ सालों की जेल और अपनी हैसियत भर जुर्माना भरकर बाकी की ज़िन्दगी को सामान्य तरीके से गुज़ारने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है। सबसे पहले ज़रूरी है कि एसिड की खुली बिक्री पर फौरन प्रतिबंध लगाया जाए। किसी भी लड़की को दैहिक, मानसिक और सामाजिक यातना से ताउम्र जूझने के लिए बाध्य करने वाले इस अपराध को क्रूरतम अपराध की श्रेणी में ही रखा जाना चाहिए। सभी एशियाई देशों में कड़े कदम उठाए जा चुके हैं।

बांग्लादेश में सन् 2002 में Acid Control Act 2002 और Acid Crime Prevention Acts 2002 के तहत एसिड की बिक्री पर प्रतिबंध लगाने के बाद तेज़ाबी हमलों का प्रतिशत एक चौथाई रह गया है। भारत इसमें पीछे है। यहाँ अब तक तेज़ाबी हमले को हत्याएँ जैसे संगीन अपराध की श्रेणी में नहीं रखा गया है; जबकि यह हत्या से कहीं ज़्यादा संगीन अपराध है। हमारे देश की न्याय व्यखवस्था, इन तेज़ाबी हमलों और इसके साथ अपना सब कुछ गंवाती लड़कियों के कितने आँकड़ों के बाद एक सख्त सज़ा मुकर्रर करने की दिशा में कदम बढ़ाएगी ?

तेज़ाबी हमले की शिकार प्रीति राठी की मौत ने हमारे संविधान और न्याय प्रणाली पर एक बार फिर बहुत सारे सवाल खड़े कर दिये हैं। दामिनी की तरह क्या प्रीति राठी भी भारतीय न्याय व्यवस्था के लिए एक चुनौती, एक सबक बनेगी? हमारी लचर न्याय प्रणाली के चलते अपराधियों की हिम्मत इतनी बढ़ जाती है कि वे एक ज़िन्दगी से जीने का अधिकार छीन लेते हैं! क्या तेज़ाबी हमला, हत्या जितना ही संगीन अपराध नहीं है ?

❐

गीत

राजस्थान आवासन मंडल में वरिष्ठ कार्मिक प्रबंधक पद से सेवा निवृत्त जया गोस्वामी के 'अभी कुछ दिन लगेंगे' एवं 'पास तक फ़ासले' नामक दो ग़ज़ल संग्रह, 'ये प्रवासी स्वप्न मेरे' गीत संग्रह हैं और दो गीत संग्रह एवं दो ग़ज़ल संग्रह शीघ्र प्रकाश्य और एक व्यंग्य संग्रह प्रकाशनाधीन है। देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, व्यंग्य, कविता, ग़ज़ल, गीत आदि का प्रकाशन।
संपर्क: 207, पद्मावती कॉलोनी (प्रथम), किंग्स रोड, अजमेर रोड, जयपुर-302019.
मोबाइल: 9829539330.
Email: jayasumedha@gmail.com

अन्तर्वासी गीत हमारे

अनगढ़ भाव लिए आ जाते
अन्तर्वासी गीत हमारे
फिर शब्दों में सजते जाते
लय विश्वासी गीत हमारे।

पड़ा हुआ था जो निष्कासित
छंदों का अनमोल खज़ाना
उठा लिया मेरे गीतों ने,
इस कौशल को जब पहचाना
गायत्री, स्रग्धरा, अनुष्टुप,
दोहा, रोला या चौपाई-
बींध लिया मोती सा उनका
अक्षर-अक्षर, दाना-दाना!
चित्र बना लेते सतरंगी
शब्द-विलासी गीत हमारे
दु:ख में डूब डूब कर निकले,
सुख विन्यासी गीत हमारे।

कभी ऋचाओं से लौ ले कर
गीत बसे जग के कण-कण में
कभी हुए चर्चित चातुर्दिक
प्रकृति चराचर के चित्रण में
कभी बने गंगा-लहरी तो
कभी गीत गोविन्द बन गए
वीत राग थे गीता में तो,
क्रौंच बन गए रामायण में

रसमय संरचना के पथ पर
हैं अधिशासी गीत हमारे
पर, दुर्गम अर्थन्यासों में
सब संन्यासी गीत हमारे!

गीत गुनोगे, लय के निर्झर
एक तरंग उठा जाएँगे
और नहीं तो भूली-बिसरी
कोई याद जगा जाएँगे
मृग-मरीचिका है भावुकता
यों तो तृष्णाओं के वन में
पर ऐसे क्षण आ जाएँ तो
मन की प्यास बुझा जाएँगे

दु:ख-मरुथल में सुख सपनों के
ये आभासी गीत हमारे
हर मौसम के फूल सुवासित
बारहमासी गीत हमारे !

-0-

आ जाओ एक बार

जो तुम आ जाओ एक बार
तो याद न आये बार-बार!

काँधों पर घटा उतर आए
पलकों पर मदमाता सावन
अधरों की कलियाँ मचल उठें
मौसम हो जाए मन भावन

फूलों पर छा जाये निखार !

सपनों को पंख लगें फिर से
कुछ देर भुलावे में बह लें
खुल जाएँ बंधन चुप्पी के
कुछ तुम कह लो कुछ हम कह लें

हट जाए मन का असह भार!

तुम आ जाओ तो राहत ले
यह मन अपनी अकुलाहट पर
यह धड़कन भी बेचैन न हो
छोटी से छोटी आहट पर

ये क़दम न जाएँ द्वार पार!
जो तुम आ जाओ एक बार।

❐

Dr.Rajeshvar K.Sharda MD FRCSC
Eye Physician and Surgeon
Assistant Clinical Professor (Adjunct)
Department of Surgery,McMaster University

1 Young St.,Suite 302, Hamilton On L8N 1T8
P: 905-527-5559 F:905-527-3883
Email: info@shardaeyesinstitute.com
www.shardaeyesinstitute.com

नवगीत

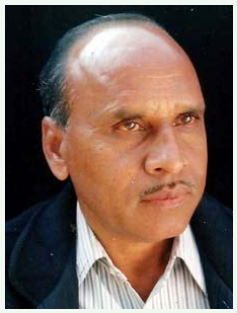

दैनिक विश्वमानव के पूर्व वरिष्ठ उपसम्पादक, कला अध्यापक पद से सेवा निवृत्त बरेली के रमेश गौतम के नवगीत, लघुकथा, बाल कविताएँ, विविध विषयों पर लेख, समीक्षा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। लघुकथा, नवगीत व दोहा संग्रह प्रकाशनाधीन। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन जिनमें उल्लेखनीय कथादृष्टि, लघुकथा फोल्डर अन्वेषण कविता फोल्डर, मायाभारती पत्रिका, तितली (बालपत्रिका) आर्यपुत्र आदि। काई सम्मानों से सम्मानित।
संपर्कःरंगभूमि, 78-बी, संजय नगर, बाईपास, बरेली। पिन-243005 (उ.प्र.)
फ़ोन नंबरः09411470604

गंगा

मत कहो
गंगा मुझे
मैं एक मटमैली नदी हूँ।

उज्ज्वला भागीरथी थी
देह से बाँधे रजतकण
हरितवसना सभ्यता के
साथ थे संवेदना-क्षण
थी कभी
अमृत-भरी मैं
अब हलाहल से लदी हूँ।

क्या कहूँ मैं पीर अपनी
बहुत लम्बी है कहानी
मर गया है आदमी की
आँख का जब आज पानी
कौरवों की
भीड़ में
अबला अकेली द्रौपदी हूँ।

पुण्य का व्यापार करते
घाट पर पण्डे-पुजारी
हर लहर के पाँव से
मोती जड़ी पायल उतारी,
इस नगर से
उस नगर तक
मौन बहती त्रासदी हूँ

अब न छेड़ो धार को
नत प्रार्थना में नयन गीले
घुस गए फिर निर्वसन ही
लोग हैं कितने हठीले
काग़जी
परियोजनाओं में
फँसी पूरी सदी हूँ
-0-

सागर-मन्थन

सागर-मन्थन
करने को निकले
मिलकर फिर पक्ष व विपक्ष

चौदह रत्नों में से केवल विष
देने को सभी हुए एकमत
अपने ही हिस्सों में बाँट लिए
अमृतघट, कामधेनु, ऐरावत
शोषण के नए
अर्थशास्त्र में
देव-असुर दोनों ही दक्ष

कन्धों पर ढोकर ही बड़े हुए
पाप-पुण्य का सारा विश्लेषण
पौराणिक आख्यानों के बने
हम केवल संशोधित संस्करण
अश्वमेध होते हैं
अब भी
चीखकर दधीचियों के वक्ष

गठबन्धन राजदीर्घाओं के
देते आश्वासन निर्जीव
अपनों की चिन्ता में लटके हैं
मोहग्रस्त आज गाण्डीव
मिलते हर बार हैं
हवाओं को
बन्द आत्माओं के कक्ष
-0-

हाथ में अवशेष हैं

मोरपंखी
प्रीत-पर्वों के लिए
अब नहीं मिलते कहीं सिंगार के क्षण।

परिक्रमाएँ कल्पतरुओं की फलीं कब
एक सूखे पेड़ से कुछ छाँव माँगी
दिन ढले लौटे मुसाफिर जब घरों को
रजनीगंधा कक्ष में फिर प्यास टाँगी
टूटना, गिरना, बिखरना,
छटपटाना
करवटों के साथ थे अंगार के क्षण।

ढह गई पुरुषार्थ की ऊँची इमारत
देख कर घायल हथेली की बुनावट
खंडहरों में ढूँढ़ती प्रारब्ध अपना
हो गई चुप चूड़ियों की खनखनाहट
नीड़ के निर्माण की
कारीगरी में
चुक गए सारे मधुर मनुहार के क्षण।

एक इठलाती नदी के बीच होकर
रोज़ श्रमजीवी कथा का भार ढोना
जीतना सम्भव कहा था इस भँवर को
डूबने की शर्त पर था पार होना
अब कहें किससे व्यथा
दुर्भाग्य की हम
हाथ में अवशेष हैं बस हार के क्षण

❐

नवगीत

अमेरिका निवासी शशि पाधा के तीन काव्य संग्रह हैं--पहली किरण, मानस मंथन, अनंत की ओर। 'शाश्वत गाथा' (संस्मरण संग्रह) प्रकाशनाधीन। देश एवं विदेश की प्रमुख पत्रिकाओं तथा ई पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। कविता, लघुकथा, आलेख, संस्मरण, प्रेरक प्रसंग, दोहा, हाइकु, माहिया कई विधाओं में लिखती हैं। वर्ष 2014 में काव्य संग्रह 'अनन्त की ओर' केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा संचालित हिन्दी लेखक पुरस्कार समिति की ओर से राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित। सम्प्रति : स्वतन्त्र लेखन।

सम्पर्क:10804, Sunset Hills Rd, Reston, Virginia. 20190 USA

दूरभाष : 203 589 6668

shashipadha@gmail.com

समझौतों की लिखा-पढ़ी

समझौतों की लिखा-पढ़ी में
अक्षर-अक्षर घाव हुआ
वेदन का घेराव हुआ।

ना थे कोई कंकर-पत्थर
ना थे पैने तीर कमान
शब्दों की थी घेरा बंदी
रक्षक खड़े रहे अनजान
झूठ सत्य का हुआ छलावा
शकुनि जैसा दाँव हुआ।

ईंट-ईंट और टुकड़ा-टुकड़ा
रिश्तों की पहचान बनी
छत दीवारें, बंटे चौबारे
सीमा बीच दालान बनी।

गठरी बाँधे पूछे देहरी
मोल मेरा किस भाव हुआ?
संस्कारों की पावन पोथी
पन्ना-पन्ना जली जहाँ
शीश झुकाए मर्यादाएँ
सीढ़ी-सीढ़ी ढली वहाँ
हाथ जोड़ता तुलसी चौरा
मूल्यों का दुर्भाव हुआ।

शून्य भेदती रह गई आँखें
ममता गुमसुम मौन खड़ी
बूढ़े बरगद की शाखों से
पत्ती-पत्ती पीर झरी
अधिकारों की महा प्रलय में
स्वारथ का टकराव हुआ।
अक्षर-अक्षर घाव हुआ।

-0-

मैंने एक बनाया घर

धरती अम्बर मोल ना माँगें
सागर ने पूछा ना दाम
नदिया पर्वत भरें ना कागज़
हवा ना पूछे क्या है नाम
बहुत सोच के इस नगरी में
मैंने भी बनवाया घर।

इस गाँव में ना पटवारी
साहू ना, कोई सेठ नहीं
ना कोई माँगे हिस्सेदारी
धन का दाँव पेंच नहीं
तिनके माटी घोल यहाँ की
मैंने एक बनाया घर।

चहुँ दिशा दीवारें होंगी
नील गगन की छत खुली
सागर का तट नींव सरीखा
धूप झरेगी धुली-धुली
शंख सीपियाँ जोड़ के मैंने
लहरों पे बनवाया घर।

कोई ना पूछे अता-पता क्या
किरणें सीधी राह चलें
चंदा सूरज लालटेन से
चौक-चौराहे आन जलें
तारे-जुगनू टांग डगर पे
मैंने भी बनवाया घर।

-0-

मौसम का डाकिया

इक ख़त बंद दे गया
भीनी सुगंध दे गया
मौसम का डाकिया।

नाम ना, पता नहीं
ना कोई मोहर लगी,
द्वार पर खड़ी-खड़ी
रह गई ठगी-ठगी
काँपते हाथ में
इक उमंग दे गया
मौसम का डाकिया।

किस दिशा, किस छोर में
जा छिपूँ, ले उड़ूँ
आँचल की ओट में
बार-बार मैं पढ़ूँ।
मौसमी गीत का
राग-छंद दे गया
मौसम का डाकिया।

मीत कोई देस से
क्या मुझे बुला रहा
बिन लिखे अक्षरों से
मुझे रुला रहा
अधर पे मुस्कान की
इक सौगंध दे गया
मौसम का डाकिया।

अधखुली परत में
छिपी थी फूल पंखुड़ी
देश काल लाँघ कर
याद कोई आ जुड़ी
मौन पतझार में
रुत वसंत दे गया
मौसम का डाकिया !!!!!

❐

कविताएँ

मलेशिया की राजधानी कुआलालंपुर में मनीषा श्री तेल एवं गैस अन्वेषण विभाग में भू-वैज्ञानिक के रूप में कार्यरत हैं। कहती हैं-मेरे लिए कविता लिखना सिर्फ़ एक शौक नहीं है, बल्कि यह मेरे जीवन में खुशी का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। मेरी कविताएँ बेहद सरल भाषा में होती हैं और भाषा की सरलता का मकसद इसे आम आदमी तक पहुँचाना है। कविताएँ ईमानदार कोशिश है।
संपर्कः maniparashar21@gmail.com

मैं चुप थी

आज मैं चुप थी
सिर्फ सुन रही थी
तुम्हारे हर आरोप पर
मौन खड़ी
खुद से लड़ रही थी।
जिह्वा मेरी भी मचल रही थी
अपना पक्ष रखने को
पर मन शांत था
नहीं चाहता था आज
किसी भी तरह का
ज़हर उगलने को।
तुमको चिल्लाता देख
अचम्भा नहीं हुआ
झूठ में ज़ोर तो
लगाना ही पड़ता है
अगर उसे सच बतलाना हो।
मेरी चुप्पी
मेरी कमज़ोरी नहीं
हमारे रिश्ते की मज़बूती है
मैं चुप हूँ
क्योंकि यह
हमारे रिश्ते को
ज़िंदा रखने के लिए ज़रूरी है।

-0-

मन की बात

कई किताबें लिख दी मैंने
भर-भर कर,
आज वही मेरे घर के
बुक शेल्फ की शान है।
खुद ही लिखती हूँ,
खुद पढ़ती
और
खुद ही सुनती हूँ,
बस इसी दायरे में
सुबह से शाम
और
शाम से सुबह तक
घूमती रहती हूँ।

मुझे मंच की
भूख नहीं
और ना ही
तालियाँ मुझे साँस देती हैं,
पर मेरे लिखने को
पहचान मिले
यह आस मुझमें
ज़रूर बस्ती है।

जब अपनी डायरी के
पन्ने पलटती हूँ,
और
अपनी कोई
कविता पढ़ते हुए
खुद ही मुस्कुरा देती हूँ,
तो उस पल, उस क्षण
अपने आपको
संसार के
बाकी सारे जीवित प्राणियों से
थोड़ा भिन्न पाती हूँ।

मेरे इस बर्ताव को
मेरा अहंकार ना समझें,
कागज़ और कलम से
मेरे प्यार को
एक बेबुनियादी
स्वाभिमान ना समझे।
उपकार नहीं है
आशीर्वाद है
भगवान् का,
जो मैं
अपनी सोच लिख पाती हूँ,
बस दर्द यह है कि
इसे सारी दुनियाँ को
नहीं सुना पाती हूँ।

चित्रकार का चित्र,
संगीतकार का संगीत,
और
कवि की कविताएँ
सम्पूर्ण तभी होती है,
जब दर्शकों की भीड़ उमड़ती है।

कला धन से नहीं उभरती,
वरना धन
बहुत है संसार में,
फिर
कला क्यों छिप रही है,
कितने स्नेह से
रची जाती है
कृतियाँ,
फिर क्यों
वो अपने घर से
नहीं निकल रही है,
क्योंकि
घर मे थोड़ा ही सही
उनका मान ज़रूर है,
बुक शेल्फ पर सजा हुआ
घर का सामान ज़रूर है
बाहर निकलीं तो
क्या पता उनके,
चिथड़े ना उड़ जाएँ
इसलिए
घर की एक कोने में
वे मौन हैं,
शांत हैं।

❐

कविताएँ

चीन निवासी, खुद का व्यवसाय कर रही, अनीता शर्मा ने गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी से बी.ए.एम.एस .किया, कास्मेटोलोजी में पी. जी. डिप्लोमा(गोल्ड मेडलिस्ट), शंघाई मैरीटाइम यूनिवर्सिटी से चाइनीज लैंग्वेज में कोर्स किया हुए है। कविता और कहानी दोनों विधाओं में लिखती हैं।
सम्पर्कः anitasmexico@hotmail.com
फ़ोन न.: 86-15821770829

अहंकार

न जाने क्यों
जब तुम सामने नहीं होते
बीएस आँखों से ओझल होते ही
कहीं अंदर जाकर बैठ जाते हो
और फिर अनजाने में
रग-रग में दौड़ने लगते हो।
पास रहते हुए
तुम्हारे कहे हुए शब्द
आदेश बनकर
जी को धमकाते हैं..
चाहकर भी मानते नहीं,
दूर होते ही
वही कथ्य
दिमाग से
दिल में उतर आते हैं.....
क्यों वही शब्द आदेश नहीं रहते
विचार और फिर आदत बन जाते हैं.....
यह क्या है?
दूर होकर
एक होने का अहसास
पास आते ही दो का अहंकार ?
-0-

लाज को लाज आए

दुःखती रग न छेड़
यह छेड़ी नहीं जाएगी
और न यह सहलाने से राहत पाएगी।
यहाँ आत्मा नहीं है भीतर
सामने तेरे लाश खड़ी है।
वह तो कब की मर खप गई
जिसे कहते थे जान ये सख्त बड़ी है।
पागल मुझको कहे जमाना
देखो तुम भी मत दोहराना।
नारी शक्ति हूँ कहकर
मुझको नहीं चिढ़ाना।
छलनी हुई ज़ख्मों से काया
बलात्कार का त्रास सह रही
बचे हैं या तो शव या दानव
लाज आए , यह लाज कह रही ....
❐

नागपुर, महाराष्ट्र की संध्या शर्मा यात्रा एक्सप्रेस की फीचर एडिटर हैं और शब्दों के अरण्य में एवं अरुणिमा संध्या जी का साझा काव्य संग्रह है। प्रारंभिक शिक्षा जबलपुर में और बरकतउल्ला विश्व विद्यालय भोपाल, म. प्र. से स्नातक हैं।
ईमेल-varsharani09@gmail .com

एक प्रश्न..

ईंट-पत्थरों ने
मुझसे एक प्रश्न किया
यही है तुम्हारी जात?
यही है तुम्हारा धर्म?
तुम जैसे जीवों से
हम निर्जीव भले?
बिना भेद-भाव के
पड़े रहते हैं राह में
जीवन भर खुद को घिसते
राह पर बिछकर
सबको सहारा देते
अपने ईमान पर अडिग.....
आज तक खोजती हूँ
उस प्रश्न का उत्तर
शायद मिल जाए कहीं
मिलेगा एक दिन
इसी आशा से...
-0-

आम खबर

ख़बरों का अम्बार
ख़बरों भरा अखबार
कहीं नरसंहार
कहीं बलात्कार
पुलिस का अत्याचार
अधिकारियों का भ्रष्टाचार
नेताओं के हथकंडे
सुरक्षा बलों के डंडे
संवाददाताओं के पुलिंदे
रतजगे उनींदे
रेल बस की लेट लतीफी
मध्यम वर्ग की मजबूरी
पक्ष की घोषणाएँ
विपक्ष की आलोचनाएँ
मंत्रियों के दौरे
आश्वासनों के सकोरे
वादों के कुल्हड़
दावों पर हुल्लड़
रसोई गैस-पेट्रोल का अभाव
उस पर बढ़ते भाव
आम आदमी परेशान
महँगाई से हलकान
सायकिल ओंटते हुए
पेट में भूख की जलन
अवसाद से भरा मन
मारा जाता है एक दिन
स्विस बैंक की रफ्तारी
चपेट में आकर
बन जाता आम आदमी
अखबारों की खबर.... !
❐

कविताएँ

उज्जैन के नीलोत्पल विज्ञान स्नातक हैं और पहला कविता संकलन 'अनाज पकने का समय' भारतीय ज्ञानपीठ से और दूसरा संग्रह 'पृथ्वी को हमने जड़ें दीं' बोधि प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। पत्रिका समावर्तन के 'युवा द्वादश' में कविताएँ संकलित। वर्ष 2014 का वागीश्वरी सम्मान से सम्मानित। सम्प्रति दवा व्यवसाय में हैं।

सम्पर्क: 173/1, अलखधाम नगर, उज्जैन, 456 010, मध्यप्रदेश

neelotpal23@gmail.com

मो.: 09826732121, 09424850594

खुले में

क्या हम कभी बाहर गए हैं
खुले में
जहाँ से आसमान, आसमान ही की तरह से नहीं
बल्कि लगता हो कि
कोई रास्ता हो जैसे अपने गाँव तक जाने का या कोई
नदी रहती हो
हमनें कभी बहाए हो फूल उसमें।

खुले में तो
चिड़ियाँ सिर्फ़ चिड़ियाँ नहीं रहती
वह एक विज़न है खोए हुए समय के लिए
या वह एक तर्क हो जहाँ से लौटना
नामुमकिन नहीं लगता।

खुले में हर चीज़ अपना ही अतिक्रमण है

कोई दावेदारी नहीं
ज़िद या नतीज़ा नहीं
घोषणा या अधिकार नहीं

चारों ओर बिखरी पृथ्वी
और उसमें कहीं से भी उग आते
प्रेम और विकर्षण के पत्ते और काँटे

खुले में
अपना घर अपना नहीं रह जाता
वह समुद्र की तरह दोलता है
और आकस्मिक रूप से
किनारों पर मिलते हैं मूँगे और शैवाल

लोगों बाहर निकलो
बाहर अपनाने के लिए
एक ओर समय है।
-0-

जड़े सुनती हैं

वहाँ जहाँ मैं रुका हूँ
सड़के खत्म होती नहीं दिखती
वे गीली चमकदार आँखों-सी
तैरती है किसी मृत सपने की तरह।

बसें बारिश की रफ़्तार के साथ
दौड़ती जा रही
चमकदार रोशनियाँ उनका पीछा करती हैं
अगले मोड़ तक।

यहाँ कोई अचानक पार करता है
सदियों से रीते समुद्र को
कोई उतरकर रख देता है सड़कों पर
अपने नंगे पैर
उनके गीले होते ही भर जाती है लहर
दिमाग में जंगलों में भींगी जड़ों की।

मैं सड़क के बायीं तरफ़
बैंक की छत के नीचे
भींगने से बचता हुआ
देखता हूँ सारा दृश्य-अदृश्य

दृश्यों को शब्दों और रंगों की भरपूर ज़रूरत है।

पानी से लदे पेड़ों में

जिनमें शहद नहीं, मधु मक्खियाँ नहीं
पंछी गीत नहीं गा रहे
फिर भी पेड़, पहाड़ पर
रखी धूप की तरह चमकते हैं।

खाली आकाश विदा लिए पक्षियों के घोंसलों को
ढांकता है गीली पत्तियों से
रोशनी के अधखाए छिलकों से।

ज़मीन में पिछले छोड़े हुए
कागज़ों, माचिस की जली तिलियों,
लकड़ी के बुरादे, चीटियों के बुरदों की
हल्की मद्धम आवाज़ें हैं
जड़े सुनती हैं इन्हें।

नन्हें मेंढक जिन्हें नहीं मालूम
उनकी उछाल दस्तक है मौसम की
वे घुस जाते हैं घरों और खेतों में
जैसे हर दृश्य एक-दूसरे में खोता
आँखें टकराती और विदा लेती हुई

इन सबके दरम्यान
मैं खुद से घबराता
दौड़ता हूँ जीवन की तरफ़
बारिश मुझे बचाती है
अपने पारदर्शी परदों से

दोहे

डॉ. सुरेश अवस्थी

चादर से बाहर हुए, नई सदी के पाँव।
भाई-भाई में चले, शकुनी वाले दाँव।।
0
बाबा देहरी पर खड़े, मन में करें विचार।
कौन खड़ी करके गया, आँगन में दीवार।।
0
बड़के को नथनी मिली, छुटके को जंजीर।
बिटिया के हाथ लगीं, अम्मा की तस्वीर।।
0
अलग अलग हमरे रचे,रिश्तों के भी हेतु।
बेटा कुल की नींव है, बेटी दो कुल सेतु।।
0
यान और इंसान में, रिश्ता एक महीन।
ज़मीं छोड़, ऊँचे उड़ें, उतरें छुएँ ज़मीन।।
0
धूप सयानी हो गई, बौनी होती छाँव।
रिंग रोड पर सोचते,कहाँ खो गया गाँव।।
0
पेड़ों ने सिर पर रखे, बादल पानीदार।
तड़प-तड़प बिजली करे,सौतन-सा व्यवहार।।
0
ओढ़ लबादे धुँए के, बादल ये जासूस।
फिरें बुझाते हवा संग, बिजली के फानूस।।
0
साईं इस संसार में ऐसे मिले फकीर।
भीतर से लादेन हैं, बाहर बने कबीर।।
0
गीत,गज़ल के नाम पर,खींची चार लकीर।
मीर,सूर,गालिब कहाँ, टिकते कहाँ कबीर।।
0
चोर-चरित, चित-कोबरा, ऐसे मारें दाँव।
कल तक छूते पाँव थे, आज घसीटें पाँव।।
0
रंग बदलने की कला, खूब जानते आप।
मंच छिना को दुश्मनी, मंच दिया तो बाप।।
0
ओस चाट सीचें अधर, बोलें सागर बोल।
औरन को उपदेश दें,कोर खर्च दिल खोल।।
0
कुहरा ओढ़ सूरज छिपा,धुंध पसारे पाँव।
खून शहर का जम गया, खाँस रहे हैं गाँव।।
❒

drsureshawasthi@gmail.com

संजीव सलिल

रश्मिरथी रण को चले, ले ऊषा को साथ
दशरथ-कैकेयी सदृश, ले हाथों में हाथ।
0
तिमिर असुर छिप भागता, प्राण बचाए कौन?
उषा रश्मियाँ कर रहीं, पीछा रहकर कौन।
0
जगर-मगर जगमग करे, धवल चाँदनी माथ
प्रणय पत्रिका बाँचता, चन्द्र थामकर हाथ।
0
धूप-दीप बिन पूजती, नित्य धरा को धूप
दीप-शिखा सम खुद जले, देखे रूप अरूप।
0
चिंतन हो चिंता नहीं, सवा लाख सम एक
जो माने चलता चले, मंजिल मिलें अनेक।
0
क्षर काया अक्षर वरे, तभी गुँजाए शब्द
ज्यों की त्यों चादर धरे, मूँदे नैन निःशब्द।
0
कथनी-करनी में नहीं, जिनके हो कुछ भेद
वे खुश रहते सर्वदा, मन में रखें न खेद।

मुक्ता मणि दोहा 'सलिल', हिंदी भाषा सीप
'सलिल'-धार अनुभूतियाँ, रखिये हृदय-समीप।
0
क्या क्यों कैसे कहाँ कब, प्रश्न पूछिए पाँच
पश्चिम कहता तर्क से, करें सत्य की जाँच।
0
बिन गुरु ज्ञान न मिल सके, रख श्रद्धा-विश्वास
पूर्व कहे माँ गुरु प्रथम, पूज पूर्ण हो आस।
0
साक्षी युग-इतिहास है, विजयी होता सत्य
मिथ्या होता पराजित, लज्जित सदा असत्य।
0
झूठ-अनृत से दूर रह, जो करता सहयोग
उसका ही हो मंच में, कुछ सार्थक उपयोग।
0
सबका सबसे ही सधे, सत्साहित्य सुकाम
चिंता करिए काम की, किन्तु रहें निष्काम।
0
संख्या की हो फ़िक्र कम, गुणवत्ता हो ध्येय
सबसे सब सीखें सृजन, जान सकें अज्ञेय।
0
दया न कर सर कुचल दो, देशद्रोह है साँप
कफन दफन को तरसता, देख जाय जग काँप।
0
पुलक फलक पर जब टिकी, पलक दिखा आकाश
टिकी जमीं पर कस गये, सुधियों के नव पाश।
❒

salil.sanjiv@gmail.com

ग़ज़ल

ज़हीर कुरैशी के सात ग़ज़ल -संग्रह प्रकाशित । ग़ज़लकार के ग़ज़ल-रचना अवदान पर दो आलोचना -पुस्तकें । हिन्दुस्तान के पहले ग़ज़लकार, जिनकी कुल 25 ग़ज़लें देश के दो अलग-अलग विश्वविद्यालयों के स्नातकोत्तर एम.ए. (हिन्दी पाठ्यक्रम के अंतर्गत निर्धारित । संप्रति - स्वतंत्र लेखन।)
संपर्क : 108, त्रिलोचन टॉवर, संगम सिनेमा के सामने, गुरबक्श की तलैया, भोपाल 462001
मोबाइल 09425790565
ईमेल :
poetzaheerqureshi@gmail.com

आँसू में जो नमक है,चखा उसका स्वाद भी
रोते हुए, कभी-कभी रोने के बाद भी
फिर भी, खिले हैं फूल पहाड़ों में हर तरफ
मिलती नहीं जहाँ कभी पौधों को खाद भी
जब से हुआ हमारी सहनशीलता का वध
छोटी-सी बात पर हुए खूनी विवाद भी
कोठे की ज़िन्दगी में भी आने लगा है रस
लाया था कौन, ये नहीं अब मुझको याद भी
उस दिन से गड़बड़ाने लगा वोट का गणित
जिस दिन से काम करने लगा जातिवाद भी
भरपेट हलवा-पूड़ी की दावत तो छोड़िये
भूखे को लोग देते नहीं प्रसाद भी
मरता है कौन 'धर्म' या 'भगवान' के लिए
अब कर रहा है लाखों का सौदा 'जिहाद' भी

0

फँसने लगी वो नींद न आने के डर के बीच
चौबीस घण्टे जागने वाले शहर के बीच
एक्वेरियम की जेल का कब तक करे विरोध
मछली किलोल करने लगी काँच - घर की बीच
तुमने नदी के क्रोध को देखा था बाढ़ में
हमने नदी के द्वंद्व भी देखे, लहर के बीच
चेतावनी के बाद भी उतरे समुद्र में
ख़ुद आ फँसे मछेरे सुनामी क़हर के बीच
विश्वास कर न पाया कोई आँख मूँद कर
अफ़वाह काम करने लगी है, खबर के बीच
अपराधियों के हौसले होने लगे बुलंद
होंगे कई कुकर्म इसी रात भर के बीच
कुछ इस तरह भी पंछी ने विस्फोट कर दिया
बम रख दिया मनुष्य ने पंछी के 'पर' के बीच

0

हवा के रुख़ को बदलते ही, हम पे वार हुए
हम अपने लोगों के षड्यंत्र के शिकार हुए
ये बात और, न वे लक्ष्य पर लगे, लेकिन
कुछेक तीर हमेशा ही आर-पार हुए
जो रुक गए , वो जलाशय का बन गए पानी
जो चल रहे थे निरंतर, नदी की धार हुए
दबे-छुपे हुए रिश्तों को वैध करना था
अवैध रिश्तों पे एकान्त में विचार हुए
ज़रूरतों के तहत तोड़नी पड़ी गुल्लक
हम अपनी फूल - सी बच्ची के कर्ज़दार हुए
गुनाह करने से पहले ही सैकड़ों चेहरे
स्वयं के भाव-जगत में गुनाहगार हुए
जो गुप्त-द्वार थे, खुलते रहे अँधेरे में
जो सामने थे,हवेली के मुख्य-द्वार हुए

0

आज के तेज़-रफ़्तार सीखे नहीं
पूरी फ़ुरसत से अभिसार सीखे नहीं
शुक्रिया,थैंक्स अथवा कहा धन्यवाद
भाव के साथ आभार सीखे नहीं
सोच अब भी है सीमित कुँए की तरह
लोग सागर -सा विस्तार सीखे नहीं
हम मिसाइल की शैली में ,घर बैठ कर
दूर से ....दूर तक मार सीखे नहीं
साल में एक कातिक अमावस को छोड़
हर अमावस पे उजियार सीखे नहीं
किस तरह काम करती है निष्पक्षता
इस सदी के तरफ़दार सीखे नहीं
लाभ या हानि के द्वैत में ....आज भी
लोग.....ताकत से प्रतिकार सीखे नहीं

0

जुबान फिसली तो संबंध डगमगाने लगे
कुटिल प्रसंग अचानक ही याद आने लगे
हमारे दुःख तो हमें रोज़ आज़माते थे
हमारे सुख भी हमें रोज़ आज़माने लगे
जो कल्पना से परे थे, जो डर थे फंतासी
अकेले होते ही, वे डर उन्हें सताने लगे
सभा में जिनको जुटाया गया था धन देकर
बिना प्रसंग ही, वे तालियाँ बजाने लगे
ये लग रहा था कि अस्मत बचाना मुश्किल है
वो चीख-चीख के 'रेपिस्ट' को डराने लगे
सुनामियों की तरह, भिन्न-भिन्न नामों से
हमारे मन में भी तूफान सिर उठाने लगे
तुम उनको चाहो तो 'सैडिस्ट' मान सकते हो
तरह-तरह से जो लोगों का दिल दुखाने लगे

0

जो अन्य लोगों के अनुभव उधार लेते हैं
कटार,वो कभी ख़ुद को भी मार लेते हैं
हमारे पास भी आती है ग़म की भीड़ कभी
हम अपने-आप को ग़म से उबार लेते है
कुछेक लोगों को मुश्किल है बात समझाना
जो एक बात के मतलब हज़ार लेते हैं
प्रशंसकों की ज़रूरत उन्हें कभी न रहीं
वो अपनी आरती ख़ुद ही उतार लेते हैं
ज़ुबान रहती है जैसे बतीस दाँतों में
हम उस तरह भी समय को गुज़ार लेते हैं
ये पाप- कर्म न अपराध में बदल जाए
लोग अपने मन में यहाँ तक विचार लेते हैं
वो करते रहते हैं संघर्ष कल्पनाओं में
वो कल्पनाओं में ही जीत-हार लेते हैं

0

अपनी पीड़ा स्वयं से छिपाते हुए
दुःख का बादल फटा, मुस्कुराते हुए
मन सहित उसको पाना असंभव लगा
देह के रूप में रोज़ पाते हुए
हर समय जीतना भी ग़लत है बहुत
ये पता चल गया, मात खाते हुए
तुमने महलों के अँधियार देखे नहीं
तुमने देखे महल जगमगाते हुए
उनके हाथों से 'अवसर' फिसलने लगे
छीनने के समय हिचकिचाते हुए
अंत में, लोग खुद भी तमाशा बनें
ज़िन्दगी को तमाशा बनाते हुए
एक दिन ..... हम सभी ख़र्च हो जाएँगे
ख़र्च होने से खुद को बचाते हुए

0

हाइकु

रमेश चन्द्र श्रीवास्तव

000

बसे हो मन
जब गाँठ बनके
भूलूँगा कैसे?

0

फूलों का प्यार
तितलियाँ समझें
उनको चूमें।

0

घर-घर में
माया की करतूत
घटी मिठास।

0

एकाग्र मन
बैठ गए जहाँ भी
वहीं ईश्वर।

0

इठलाती है
पहाड़ों से निकली
वधू-सी नदी।

0

लिखते हुए
उँगलियाँ झुलसी
तुम्हारे अर्थ।

0

कैसे हो गया
आदमी विषधर
दूध पीकर?

0

अकेला दीप
उजाले की ललक
जलाए तन।

0

दंगा भड़का
शहर की गलियाँ
हुईं विधवा।

❐

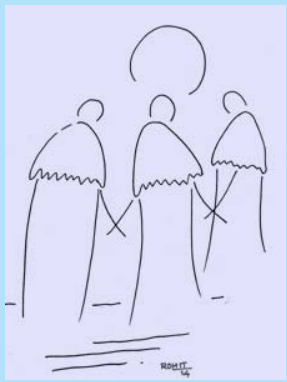

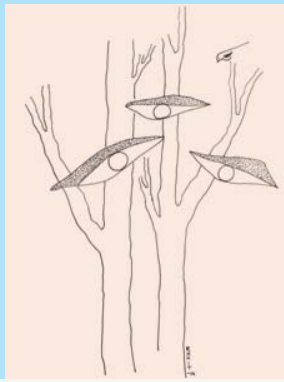

ताँका

डॉ. कुमुद बंसल

000

मधुर स्वर,
धुन है पहचानी
हे विहंगिनी!
तुझ-सा ही आनन्द
पाएगा मेरा मन।

0

चिनार-वृक्ष,
हिमरंजित वन,
धरा-वक्ष पे
घूमते बादलों की
मीठी-सी है छुअन।

0

भीनी-सी गन्ध
पीली-पीली सरसों
मंजरी-गुच्छ,
झरते बेला पुष्प
सूँघे मन बरसो।

0

सौ-सौ ठौर हैं
विचरण के लिए,
नभ छू कर
लौट आता है पिक,
तृण-नीड़ अपने।

0

कृश है काया,
मुट्ठी भर है मिट्टी,
छोटे-से पंख,
उड़ान गजब की,
गगन को हराती।

0

शाख पे बैठे
बतियाएँ परिन्दे,
गाते सुमन,
पग घुँघुरू बाँध
नाचता उपवन।

❐

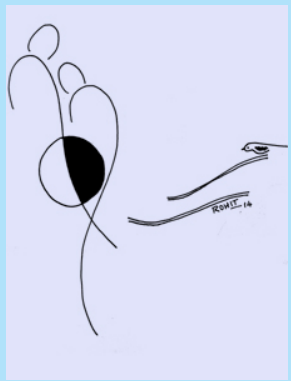

माहिया

डॉ. सरस्वती माथुर

000

प्रिय सावन में आना
मेघा बन करके
मन नभ पर छा जाना।

0

मन बौराया फिरता
तेरी यादों से
मन मेरा जब घिरता।

0

क्या बात लगी मन में
लौट के न आए
फिर से तुम जीवन में।

0

कैसे काटें रातें
यादों में आतीं
भूली-बिसरी बातें।

0

घर का रीता आँगन
तुम किस देस गए
लागे ना मोरा मन।

0

मन को कैसे थामें
सजन बता जाना
सूनी लगती शामें।

0

उड़ता मन का पाखी
तेरी यादों की
हाला मैंने चाखी।

0

नभ में सावन छाया
मुझसे मिलने को
साजन था घर आया।

0

पुरवा सीली-सीली
तेरी यादों ने
आँखें कर दी गीली।

❐

विश्वविद्यालय के प्रांगण से

(कॉन्कर्ड, नॉर्थ कैरोलाईना, अमेरिका के विद्यार्थी कश्यप पटेल की यह कविता अमेरिका में युवा पीढ़ी का हिन्दी के प्रति रुझान की देन है। कश्यप पटेल के शब्दों में-मातृ भाषा से अपने प्रेम और लगाव के कारण हिन्दी कविता को अपने जीवन का अहम हिस्सा मानता हूँ। कविता लिखना, पढ़ना और सुनना मेरे जीवन का महत्त्वपूर्ण भाग है।)

ज़िन्दगी तेरी खिदमत में

ज़िन्दगी तेरी खिदमत में
पेश यह नज़राना है,
चुनौतियों को तेरी मैंने
हिम्मत से नवाज़ा है।

देनी पड़ेगी दाद तुझे
ऐसा जुनून मैंने दिखलाया है,
तेरे ज़ुल्म-ओ-सितम को
मेरी मुस्कान ने पिघलाया है।

तू बोल उठेगी 'वाह'
ऐसा हुनर मैंने जुटाया है,
डटकर खड़े रहने का
वादा मैंने निभाया है।

दिखाया तूने हमेशा
आफ़त का दरवाज़ा है,
बनने को एक योद्धा
मैंने खुद को तराशा है।

❐

ksp255459@gmail.com

अविस्मरणीय

गिरिजाकुमार माथुर

आज जीत की रात
पहरुए! सावधान रहना
खुले देश के द्वार
अचल दीपक समान रहना।

प्रथम चरण है नए स्वर्ग का
है मंज़िल का छोर
इस जनमंथन से उठ आई
पहली रत्न-हिलोर
अभी शेष है पूरी होना
जीवन-मुक्ता-डोर
क्योंकि नहीं मिट पाई दुख की
विगत साँवली कोर

ले युग की पतवार
बने अम्बुधि समान रहना।

विषम शृंखलाएँ टूटी हैं
खुली समस्त दिशाएँ
आज प्रभंजन बनकर चलतीं
युग-बंदिनी हवाएँ
प्रश्नचिह्न बन खड़ी हो गईं
यह सिमटी सीमाएँ
आज पुराने सिंहासन की
टूट रही प्रतिमाएँ
उठता है तूफ़ान, इन्दु! तुम
दीप्तिमान रहना।

ऊँची हुई मशाल हमारी
आगे कठिन डगर है
शत्रु हट गया, लेकिन उसकी
छायाओं का डर है
शोषण से है मृत समाज
कमज़ोर हमारा घर है
किन्तु आ रहा नई ज़िन्दगी
यह विश्वास अमर है
जन-गंगा में ज्वार,
लहर तुम प्रवहमान रहना
पहरुए! सावधान रहना।

-0-

(जन्म: 22 अगस्त 1919,
देहावसान:10 जनवरी 1994)

❐

अम्बर बाँचे पाती: अनुभूतियों का इन्द्रधनुष

समीक्षक: डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा

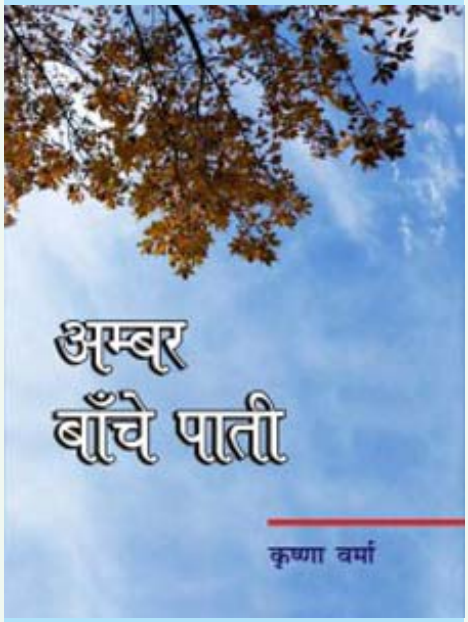

प्रकाशक-अयन प्रकाशन, 1/ 20,महरौली,
नई दिल्ली-110030,
मूल्य:220 रुपये, पृष्ठ:112,
संस्करण: 2014

डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा
टॉवर एच-604, प्रमुख हिल्स, छरवडा रोड, वापी ,
जिला -वलसाड (गुजरात) -396191

साहित्य और समाज का परस्पर सापेक्ष होना प्रायः देश कालादि की सीमाओं से परे एक शाश्वत सत्य ही है। साहित्य त्वरित रस निष्पत्ति से अनिर्वचनीय आनंद की अनुभूति कराता है। यह गुण उसे अखबार आदि की अपेक्षा विशिष्टता प्रदान करता है । और यही विशिष्टता उसके पाठकों को सामान्य पाठक से भिन्न सहृदय की उपाधि से विभूषित करती है।

प्रवासी महिला हाइकुकारों की शृंखला में कृष्णा वर्मा जी का एकल हाइकु संग्रह 'अम्बर बाँचे पाती' ऐसा ही सृजन है ,जो अपने पाठकों को अन्य की अपेक्षा अधिक उदात्त, निर्मल ,विशद ,सौंदर्य बोध से ओत-प्रोत सहृदय बना देने की सामर्थ्य रखता है ।वस्तुतः रस रूप परमानंद की प्राप्ति हेतु सत्साहित्य का सृजन होता रहा है । महाकाव्य,खंडकाव्य से लेकर लघु कलेवर दोहे तक विविध विधाओं में सुन्दर , कोमल भावाभिव्यंजनाएँ प्रस्तुत की गई हैं । परंतु 5-7-5 के क्रम में कुल 17 वर्णों में ऐसी चमत्कृति उत्पन्न करना सहज नहीं है । अम्बर बाँचे पाती में कवयित्री ने हाइकु के नन्हे कलेवर में प्रकृति के सुन्दर बिम्ब, ऋतुएँ, सामाजिक सरोकार,रिश्तों के उतार चढ़ाव, मानव मन और भारतीय उत्सवधर्मिता को बहुत सुन्दर और प्रभावी रूप में प्रस्तुत किया है । उजास हँसे, नभ का आँगन, रूप सलोना ,मौसम भेजे पाती, रिश्तों की डोर, जीवन तरंग और उत्सवा इन सात खण्डों में विभक्त विषय वस्तु वस्तुतः भारतीय जीवन दर्शन की सुन्दर झलक प्रस्तुत करती है ।

प्रकृति के चित्रण में रमी कवयित्री की प्रकृति ने सर्वथा नए और अनुपम बिम्ब उकेरे । सूर्य की राखी और धूप के सुनहरे पत्रे का मोहक बिम्ब देखिए -

उषा ने बाँधी/आकाश की कलाई/सूर्य की राखी ।
साँझ ढली तो/स्वर्ण धूप के पत्रे /हुए गुलाबी ।

क्यों न उमड़ पड़े ममता इन नन्हों की आँख मिचौनी देख -

खेलें सितारे /नदिया की छाती पे /आँख मिचौनी ।

चतुर्दिक विचरण करती कवयित्री की दृष्टि पर्यावरण के प्रदूषण से उत्पन्न परिस्थितियों पर चिंतित है -

कैसा उत्थान/छीनते परिंदों के /नीड़ व गान ।

मोहक फूलों की दिनचर्या और जिजीविषा दोनों पर पर्याप्त विचार करती कवयित्री की कलम ने टेसू, गुलाब,अमलतास,ढाक, गुलमोहर सबके ,क्या कहिए बहुत ही मनमोहक दृश्य प्रस्तुत किए -

गालों पर हया/अधरों पर लाली /टेसू की डाली ।
गुलमोहर /हथेली पर हिना /रचाता कौन ?
काँटों से घिरा /फिर भी निष्कंटक /खिले गुलाब ।

भारतीय ऋतु वर्णन में कवयित्री ने वैविध्यपूर्ण मौसम के चित्र-विचित्र आचरण को अपने शब्दों में इस प्रकार साकार किया कि वे बोल उठे । किन्तु शीत वर्णन ऐसा कि सन्नाटा छा गया ! देखिए-

छाया सन्नाटा /शीत ने मारा जब /सूर्य को चाँटा ।

मानवीय प्रकृति में रिश्तों की उलझन को सुलझाती कवयित्री ने माँ को बहुत मान दिया। इस प्रकार -

माँ की मुस्कान /हर लेती पल में /सारी थकान ।

मन के विश्वास और आँखों की नमी से रिश्तों की बंजर ज़मीं को सींचती कवयित्री ने जीवन में जिजीविषा को कभी कम नहीं होने दिया। उतार-चढ़ाव पार करती ज़िंदगी सीख ले परिंदों से -

हौंसला ज़िंदा/समंदर को लाँघे /नन्हा परिंदा ।

मानव जीवन है तो मानवीय कमजोरियाँ भी होंगी ।सुख-दुःख,राग-द्वेष तमाम विषमताओं के बीच अपने अकुंठ रूप में जीती भारतीय संस्कृति के प्राणों की संजीवनी है उसकी उत्सव धर्मिता । अपने देश से दूर यही उत्सव समय-समय पर कैसे अपनी मिट्टी से बन्धन अटूट रखते हैं, इसका सुन्दर निदर्शन पुस्तक का 'उत्सवा' खण्ड है । होली ,दिवाली, रक्षाबन्धन विविध पर्वों को मनाती कवयित्री की करकचतुर्थी पर भावनाएँ देखिए -

चाँद धरा का/ जिए चन्द्रमा संग /जन्मों तक ।

रक्षाबंधन पर भैया के लिए कहती है -

कोमल धागा/दुआओं से सींचा है /कलाई बाँधा।

कहना न होगा अपनी सुन्दर,उदात्त भावनाओं से परिपूर्ण रचनाधर्मिता से कवयित्री पाठक के हृदय को भी नभ सा निर्मल , विशद बनाने में समर्थ हैं ।आशा करती हूँ पुस्तक सहृदय पाठकों तक अपना भावप्रवण सन्देश पहुँचाने में सफल होगी ।

❐

पाल ले एक रोग नादाँ....
ज़िन्दगी की हमरक़्स गौतम राजरिशी की ग़ज़लें।

समीक्षकः पवन कुमार

ग़ज़ल का सफर यूँ तो सात सौ बरस पुराना है लेकिन मज़मून और मफ़हूम के स्तर पर इसमें मुसलसल तब्दीलियाँ होती रही हैं। ज़ुबान के तौर पर भी ग़ज़ल ने तब्दीलियों का एक तवील सफ़र तय किया है। ख़ालिस फ़ारसी से लेकर अरबी, उर्दू, हिन्दी,क्षेत्रीय भाषाओं तक में ग़ज़ल को ओढ़ा बिछाया गया है। ग़ज़ल में इन्हीं तब्दीलियों का एक दौर 1991 के बाद से देखा जा सकता है। इस दौर के शाइरों की सोच और उनकी अभिव्यक्ति को ग़ौर से देखें-परखें तो पाएँगें कि क़दीमी शेरी रिवायत से ये शायरी बिल्कुल बदली हुई है। तमाम व्याकरण पाबन्दियों को अपनाने के बाद भी इस दौर की ग़ज़लियात में सोच और ज़बान में ये परिवर्तन साफ झलकता है। इसी दौर और बदलते वैचारिक परिवर्तन की एक बानगी है 'पाल ले एक रोग नादाँ....' शेरी मजमूआ।

ये शेरी मजमूआ कर्नल गौतम राजरिशी की ग़ज़लों का है। चालीस साला गौतम राजरिशी एकदम नई सोच व नए लहजे के शायर हैं। बीते दिनों में तमाम अदबी पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। वर्चुअल वर्ल्ड /सोशल साइटस पर भी उनकी उपस्थित लगातार बनी रहती है। 'पाल ले एक रोग नादाँ....' पढ़ते वक्त शायर के विषय में कुछ ख़यालात पुख्ता होते हैं। गौतम की ग़ज़लें पढ़ते हुये सामान्य तौर पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे न केवल नई सोच के शायर हैं बल्कि ज़ुबान के तौर पर भी उन्होंने हिन्दी-उर्दू-अंग्रेज़ी की भाषाई त्रिवेणी के साथ देशज शब्दों का भी भरपूर इस्तेमाल किया है। ज़ाहिर है कि शायर की दिलचस्पी अपनी भावनाओं को व्यक्त करने में कहीं ज़्यादा है, बनिस्पत भाषा की बाध्यताओं को समझने के। गौतम इस मजमूअे में कई रंग बिखेरते हैं। उनकी शायरी में यह साफ झलकता है कि वे अपने दौर के कई शायरों से भाषायी, वैचारिक स्तर पर प्रभावित है। गौतम कई स्थानों पर बशीर बद्र, गुलज़ार जैसे लहजे में अपनी बात कहते हुए नज़र आते हैं, लेकिन उनका यह तरीका अनायास भी सम्भव है। गौतम की शायरी का एक मजबूत पक्ष नए-नए बिम्बों का इस्तेमाल भी है जो पाठकों को प्रभावित करता है।

ऐसी लफ़्ज़ियात जो ग़ज़ल में आम फहम नहीं मानी जाती है उसका बेरोक टोक प्रयोग गौतम की उस हिम्मत को दिखाता है कि फौज का सिपाही किस हद तक मोरचा ले सकता है। गौतम की ग़ज़लियात का विश्लेषण करें तो पाएँगे कि वे उस भाषाई ओवर लैपिंग की गिरफ्त में हैं जो आजकल की अवामी ज़ुबान है। वे ये परवाह नहीं करते कि कौन सा लफ़्ज किस ज़बान का है, उन्हें ज़िद है तो बस यह कि अपने भाव किस प्रकार अभिव्यक्त हो जायें। वे हिन्दी के कठिन शब्दों के साथ पापुलर अंग्रेज़ी शब्द की चाशनी बनाकर ख़ालिस उर्दू लफ़्ज़ियात का इस्तेमाल कर अपनी शायरी को मुख़्तलिफ़ ज़बानों को त्रिवेणी बना देते हैं। इसी प्रकार वे लोक जीवन के भी तमाम इलाकाई लफ़्ज़ों का भरपूर इस्तेमाल कर अपनी ग़ज़लों को समृद्ध बनाते हैं। नई लफ़्ज़ियात, जैसे-बटोही (पृ0 53), बरखरा (पृ0 47), इतउत (पृ0 40), तमक (पृ0 22), चुकमुक (पृ0 26), मसहरी (पृ0 26), नियम (पृ0 27), आयाम (पृ0 37),सपेरे (पृ0 77) इत्यादि उनकी ग़ज़लों का अभिन्न हिस्सा है जो उनकी वैचारिक अभिव्यक्ति में पाठकों तक सीधे रूप से अपने सम्पूर्ण अर्थों के साथ सम्प्रेषित होते हैं। वे इस बहस में भी नहीं पड़ते कि कहाँ उर्दू ग़ज़ल की सीमा खत्म होती है और कहाँ से हिन्दी ग़ज़ल शुरू हो जाती है। हिन्दी के काफियों का भरपूर इस्तेमाल उनके इस ग़ज़ल संग्रह में लगातार दिखाई पड़ता है।

बड़के ने जब चुपके-चुपके कुछ ख़ेतों की काटी मेड़, आये-जाये छुटके के संग अब तो रोज़ कचहरी धूप।
बाबूजी हैं असमंजस में, छाता लें या रहने दें, जीभ दिखाये लुक-छिप लुक-छिप बादल में चितकबरी धूप।

भाषाई विविधता का यह पराक्रम गौतम की शायरी में आगे भी निर्बाध रूप से जारी रहता है। अंग्रेज़ी के शब्दों जैसे-सिगरेट, शावर, स्टोव, बालकोनी, मोबाईल, बल्ब, न्यूज पेपर, सोफा,स्कूटी, सिम्फनी, सेंसेक्स, कार, गिटार के अतिरिक्त और भी न जाने कितने अंग्रेज़ी शब्द गौतम की शायरी में लगातार डूबते इतराते नज़र आते हैं। बानगी के तौर पर चन्द शेर मुलाहिज़ा हों-

'येल्लो पोल्का डॉट' दुपट्टा तेरा उड़े, तो मौसम भी चितकबरा हो जाता है।
इश्क़ का 'ओएसिस' हो या हो यादों का, 'धीरे-धीरे सब सहरा हो जाता है'

पाल ले एक रोग नादाँ....
लेखकः गौतम राजरिशी
मूल्यः 200 रुपये
शिवना प्रकाशन, पी.सी.लैब कॉम्पलेक्स बेसमेंट,
बस स्टैंड, सीहोर-466001 (म.प्र.)
फ़ोनः07562405545, 07562695918
Email-shivna.prakashan@gmail.com

Book Avaialable on :
http://www.amazon.in
http://www.flipkart.com

पवन कुमार
लेखक भारतीय प्रशासनिक सेवा में
उ.प्र. संवर्ग में कार्यरत हैं
संपर्क-09412290079
ई-मेल : singhsdm@gmail.com

चैक पर 'बाइक' ने जब देखा नज़र भर कर उधर,
कार की खिड़की में इक 'साड़ी' सँभलती रह गई।
एक कप कॉफ़ी का वादा भी न तुमसे निभ सका,
कैडबरी रैपर के अंदर ही पिघलती रह गई।

काफिया पैमाई भी गौतम की ग़ज़लियात का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। कलर के साथ हुनर, सीलन के साथ रोमन और इंजन का काफिया इस्तेमाल करना गौतम की कामयाबी का प्रतीक है। आशिक-माशूक के ज़ाविये से देखा जाए तो एक उदास नायक तन्हाई में किस तरह अपने इश्क के विषय में सोचता है, यह अन्दाज़ उनके शेरी कैनवास में कई रंग बिखेरता है। गौतम फ़ौज में अफसर हैं और उन्होंने अपनी नौकरी का एक बड़ा वक्त अपने परिवार समाज से दूर रहकर दुर्गम पहाड़ों और ऐसी स्ट्रेटेजिक लोकेशन्स पर गुज़ारा है जहाँ जीवन जीना आसान नहीं। मुश्किल परिस्थितियों से एकाकार होते हुए उनका यह एकाकीपन पाठकों को सहज ही आकर्षित करता है-

फुरसत मिले अगर तेरी यादों से इक ज़रा,
तब तो कहूँ कि 'हाय रे फ़ुरसत नहीं मुझे'।
लुफ़्त अब देने लगी है ये उदासी भी मुझे,
शुक्रिया तेरा कि तूने जो किया, अच्छा किया।
लिखती हैं क्या क़िस्से कलाई की खनकती चूड़ियाँ,
जो सरहदों पर जाती हैं, उन चिट्ठियों से पूछ लो
सुलगी चाहत, तपती ख़्वाहिश,
जलते अरमानों की टीस,
एक बदन दरिया में मिलकर सब तूफ़ान उठाते हैं।

'पाल ले एक रोग नादाँ.....' गौतम की उन कजरारी यादों का एक संकलन है, जिन्हें वे तमाम दुर्गम परिस्थितयों के बीच भी गुनगुनाना नहीं भूलते। यही गुनगुनाहट ग़ज़लों का रूप धर लेती है-

सुलगती हुई उम्र की धूप में,
यूँ ही ज़िन्दगी सांवली होती है।
छू लिया उसने ज़रा मुझको तो झिलमिल हुआ मैं,
आस्माँ ! तेरे सितारों के मुक़ाबिल हुआ मैं।
काँपती रहती हैं कोहरे में ठिठुरती झुग्गियाँ,
धूप महलों में न जाने कब से है अटकी हुई।
होती है गहरी नींद क्या, क्या रस है अब के आम में,
छुट्टी में घर आई हुई इन वर्दियों से पूछ लो।

मजमूअे के कवर पेज से ही एक आकर्षण पाठकों को अपनी ओर खींचने लगता है। कई मर्तबा महसूस होता है कि सिगरेट के धुँओं के छल्ले में फँसी तमाम फ़िक्रों का नाम ही है 'पाल ले इक रोग नादाँ.....।' अनेकानेक शेरों में प्रयोग किये गए कुछ अल्फ़ाज़ गौतम की नितान्त अपनी क्रियेटिविटी का नमूना हैं-

इक तो तू भी साथ नहीं है, ऊपर से ये बारिश उफ,
घर तो घर, सारा-का-सारा दफतर नीला-नीला है।
उबासी लेते सूरज ने पहाड़ों से जो माँगी चाय,
उमड़ते बादलों की केतली फिर खौलती उट्ठी।
धूप शावर में जब तक नहाती रही
चाँद कमरे में सिगरेट पीता रहा।
है चढ़ने लगी फिर से ढलती हुई उम्र
तेरी शर्ट ये जाफ़रानी कहे है।

बहरहाल गौतम की ग़ज़लों को पढ़ते हुए रगों में कभी सिहरन सी दौड़ जाती है तो कभी दिमागी नसें कुलबुलाहट करने लगती हैं। उनकी ग़ज़लों को पढ़ते वक्त यह अहसास होता है कि बर्फीली वादियों में चीड़ के पेड़ों के साये में सन्नाटे को तोड़ती हर आवाज़ सरहद पार से आने वाली जानलेवा गोलियों की आशंका से लिपटी हुई होती है, और इन्हीं आवाज़ों के दरम्यिान कोई फ़ौजी जीवन के तमाम अहसासात को कुछ इस तरह अपनी जुबान दे रहा होता है-

रगों में गश्त कुछ दिन से
कोई आठों पहर दे है।
एक सिगरेट-सी दिल में सुलगी कसक,
अधजली, अधबुझी, अधफुकी ? हाँ वही।
फोन पर बात तो होती है खूब यूँ
तिश्नगी फोन से कब बुझी ? हाँ वही।
चीड़ के जंगल खड़े थे देखते लाचार से,
गोलियाँ चलती रहीं इस पार से उस पार से।

'पाल ले इक रोग नादाँ ज़िन्दगी के वास्ते.....' यूँ तो फ़िराक ने यह ग़ज़ल कोई चालीस-पैंतालीस साल पहले लिखी थी लेकिन गौतम ने इस मिसरे को इस कदर अपनी ग़ज़लों में जिया है कि यह मिसरा उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का अभिन्न हिस्सा सा लगने लगा है-

अहमियत सन्नाटे की क्या है बगैर आवाज़ के
अब करो कुछ शोर यारों खामुशी के वास्ते
थोड़े आँसू भी निकलते हैं हँसी के वास्ते
'पाल ले इक रोग नादाँ ज़िन्दगी के वास्ते।'

शिवना प्रकाशन ने कर्नल गौतम की इस कृति को पाठकों के सामने लाकर न केवल मनन बल्कि गर्व करने का अवसर भी दिया है कि कश्मीर और ऐसे ही अनेकानेक दुर्गम स्थलों पर देश की रक्षा में अपने जीवन को दाँव पर लगाने वाले सैनिकों के साहस में कहीं न कहीं मासूम सी भावनाएँ भी होती हैं। इन भावनाओं को वे बेशक अभिव्यक्त न कर पाते हों मगर उन्हें भावशून्य नहीं माना जा सकता। गौतम की ग़ज़लें सिर्फ एक सैन्य अफसर की रचनाएँ नही हैं, दरअसल वे भारतीय सेना की उन धड़कनों की आहटें हैं जो बेशक अभिव्यक्त नहीं है, लेकिन महसूस करिये तो वे आपकी धड़कनों के साथ हमआहंग हो जाती हैं।

डा0 राहत इन्दौरी के लफ़्ज़ों में गौतम की ग़ज़लों में शुरू से आख़िर तक एक उदासी की फ़ज़ा पसरी हुई है और इस रूमानी उदासी से ग़ज़ल का आँगन महक रहा है।

मुनव्वर राना की यह बात भी यहाँ उल्लेखनीय है कि कश्मीर के बर्फीले पहाड़ से आईं ये ग़ज़लें अपनी नज़ाकत और अपने नए लहजे से जहाँ एक ओर हैरान करती हैं, वहीं दूसरी ओर बहुत आश्वस्त भी करती हैं कि ग़ज़ल हमारे बाद की पीढ़ी के सशक्त हाथों में महफ़ूज़ है।

कुछ करवटों के सिलसिले, इक रतजगा ठिठका हुआ,
मैं नींद हूँ उचटी हुई, तू ख़्वाब है चटका हुआ।

❐

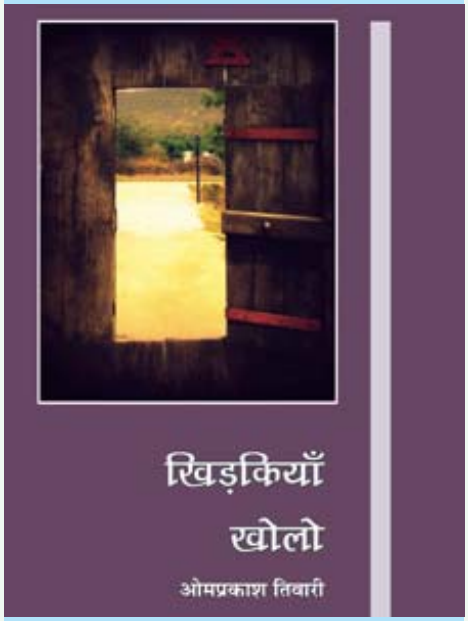

खिड़कियाँ खोलो : संवेदनशील पाठकों को संतुष्ट करने की आश्वस्ति

समीक्षकः सौरभ पाण्डेय

गीत-संग्रह-खिड़कियाँ खोलो..
नवगीतकार-ओमप्रकाश तिवारी
प्रकाशन-बोधि प्रकाशन, जयपुर
मूल्य-रु. 90/, पृष्ठ-120

प्रस्तुत संग्रह नवगीतकार की पहली पुस्तक है। ओमप्रकाशजी ने अपने पहले संग्रह में बेशक तनिक समय लिया है, किन्तु इस संग्रह से गुजरने के बाद इस बात की आश्वस्ति होती है कि उन्होंने न केवल मनोयोग से आवश्यक तैयारी की है, बल्कि प्रस्तुतियों की संप्रेषणीयता के अन्यान्य पहलुओं पर अपनी समझ को सदैव केन्द्रित रखा है। काव्य की इस विधा के प्रति ओमप्रकाशजी के लगाव का विस्तार जितना क्षैतिज है, साहित्यिक समझ, विशेषकर वैधानिक, निर्विवाद रूप से उतनी ही गहरी है। इस तथ्य का अनुमोदन करते हुए इसी संग्रह की भूमिका में डॉ. रामजी तिवारी खुले मन से स्वीकारते हैं-आपकी काव्य की सृजन-साधना बहुत पहले से चली आ रही है। सहज बोलचाल की भाषा का काव्यात्मक प्रयोग कवि की रचनाशक्ति को प्रमाणित करता है। इसी भूमिका में एक स्थान पर डॉ. रामजी तिवारी का कहना है-ओमप्रकाशजी अपनी कविताओं का उपजीव्य चतुर्दिक व्याप्त परिवेश से ग्रहण करते हैं। जो भी घटना, प्रसंग या व्यक्ति आपकी सृजनशील संवेदना को आंदोलित करता है, वही उनके लिए संप्रेष्य बन जाता है। इसे स्वीकरना अन्यथा न होगा कि, बिना अधिक शोर-शराबा के ओमप्रकाश जी सतत कार्यरत रहने वाले रचनाकर्मियों में से हैं।

आप सामाजिक विसंगतियों के प्रति अत्यंत संवेदनशील तथा प्रतिकारी दिखते हैं। नवगीतों में प्रयुक्त होने वाले शब्दों तदनुरूप अपनाये गये बिम्बों के प्रति आपकी तार्किक ग्राह्यता गहन है। अर्थात ओमप्रकाशजी नवगीतों के लिए अपने आस-पास के उर्वर वातावरण में उपलब्ध, किन्तु, सक्षम बिम्बों और शब्दावलियों का चयन करते हैं। नवगीतों का वैधानिक मूल इसी व्यवहार का हामी भी रहा है। क्योंकि नवगीत का स्वरूप कभी वायव्य रहा ही नहीं है। यथार्थ को प्रस्तुत करने के क्रम में नवगीत कोई समझौता नहीं करते। वस्तुतः इसी विन्दु के कारण नवगीत सामान्य गीतों से प्रच्छन्न इकाई का स्वरूप ग्रहण पाते हैं।

ओमप्रकाशजी आम-जन के दैनिक क्रियाकलाप, उसके सुखों-दुःखों, उसकी कोमल भावनाओं, उसके समाज की तमाम विसंगतियों को खूब बूझते हैं। उनमें समरस रहते हुए, अपने नवगीतों में उभारते हैं। आपका पहला संग्रह आपके गीतकार के विभिन्न पहलुओं, यथा, वैयक्तिक, सामाजिक, मानवीय, मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक आदि, को परखने के क्षण उपलब्ध कराता है। तभी तो यह तथ्य निर्विवाद रूप से सामने आता है कि आप जहाँ अपने बहुआयामी अनुभवों की दृष्टि से घटनाओं और उसके कारकों को परखते हैं, वहीं इस

सौरभ पाण्डेय
एम-II/ए-17,
ए.डी.ए. कॉलोनी, नैनी, इलाहाबाद-211008
संपर्क-09919889911
ई-मेल : saurabh312@gmail.com

भूभाग की समृद्ध परंपराओं के उज्ज्वल पक्ष को सहज स्वीकार करने-करवाने के आग्रही भी हैं।

आपके गीतों का स्वर रह-रह कर व्यंग्यात्मक हो जाता है। इस तथ्य को रेखांकित करते हुए डॉ. रामजी तिवारी इस संग्रह की भूमिका में कहते हैं-विसंगति और विद्रूप व्यंग्य के अधिष्ठान हैं। श्री तिवारीजी का स्वर भी समय-सापेक्ष होने के कारण अनेक अवसरों पर व्यंग्यात्मक हो गया है। व्यंग्य का स्वर अभिव्यक्ति को धारदार बनाता है।

डॉ. रामजी तिवारी के इस कथन से असहमत हुआ ही नहीं जा सकता। इन पंक्तियों से इस तथ्य को बखूबी समझा जा सकता है-कलावती के गाँव पधारे राजाजी ! / धूल उड़ाती आयीं दो दर्जन कारें / आगे-पीछे बन्दूकों की दीवारें / चमक रहा था चेहरा जैसे संगमरमर / गूँज रही थीं गगन फाड़ती जयकारें / धन्य हो गया / दुखिया का दरवाजा जी !

या फिर, परिवारों में अपनी अहम मौजूदगी बना चुके टीवी चैनलों पर ये पंक्तियों को देखें-चाहे जितना चैनल बदलो / दिखता सिर्फ बवाल। / ज्योतिष पारंगत सुन्दरियाँ / दिखें पलटती ताश / कहीं खिलाये निर्मल बाबा / हमें समोसा-सॉस / कथा बाँच कर पीट रहे हैं / लोग दनादन माल।

कविकर्म को भले ही सामाजिक विसंगतियों पर आज सपाट ढंग से रपट प्रस्तुत करने जैसा कोई कार्य समझ लिया जाता हो। परन्तु, एक कवि समाज का सबसे जागरूक संज्ञा हुआ करता है। इस क्रम में ओमप्रकाशजी की जागरूकता समाज को उसके अनुत्तरदायी व्यवहार पर लताड़ भी लगाती है-पाँच बरस तक हरदम रोना / वोटिंग के दिन जम कर सोना / अगर गये भी मत देने तो / जात-पाँत के नाम डुबोना / लेकिन हमको नेता चाहिए / बिल्कुल जिम्मेदार !

ओमप्रकाशजी की भाषा चटक है। उसमें देसी मुहावरों तथा लोकोक्तियों का समीचीन तथा सार्थक प्रयोग रचनाओं को धारयुक्त कर देता है। सिवई में नींबू निचोड़ा जाना; चने का लोहे में तब्दील हो जाना, मुँह में दही जमना आदि मुहावरों का प्रयोग देखते ही बनता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि आपकी रचनाओं में नवगीतात्मकता वैधानिक रूप से समस्त स्वीकार्य विन्दुओं को संतुष्ट करती हुई उभर कर आयी है। आपकी प्रस्तुतियाँ मानवीय मन के उल्लास और संत्रास तथा परिवर्तनजन्य स्थितियों-परिस्थितियों को समान रूप से अभिव्यंजित करती हैं। गीतों में गेयता वस्तुतः शब्दों के विन्यास में सुगढ़ मात्रिकता के कारण संभव हो पाती है। मात्रिकता के सचेत निर्वहन के कारण ही गीत सरस तथा कर्णप्रिय होते हैं। रागात्मकता के आयाम में रह कर प्रयोगधर्मिता को दिया जाता सम्मान, यही तो नवगीतकारों का प्रयास तथा हेतु हुआ करता है। कहते ही हैं, जहाँ अनुभूति-संप्रेषण के लय, तान, शैली, तथा संवेदना-संप्रेषण में नव्यता हो, नवगीत संभव हो जाता है। संग्रह की इन पंक्तियों से इस तथ्य को समझा जा सकता है-चेहरा पीला आटा गीला / मुँह लटकाये कंत / कैसे भूखे पेट ही गोरी / गाये राग वसंत / .. / मंदी का दौर है / नौकरी अंतिम साँस गिने / जाने कबतक रहे हाथ में / कब बेबात छिने / सुबह दिखें खुश, रूठ न जायें / शाम तलक श्रीमंत !

ओमप्रकाशजी अपने आस-पास के जीवन-प्रवाह को महसूस ही नहीं करते हैं, बल्कि उसी को मानो जीते हैं। पर्व-त्योहारों, समाज, मौसम आदि से विन्दु उठा कर सहज मानवीय आग्रहों को शाब्दिक करना आपकी भविष्य की रचनाओं के प्रति और अधिक आश्वस्त करता है। समाज में धर्म के नाम पर व्याप चुके ढोंग पर आपकी ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-दस प्रपंच में उलझा है मन / काहे का वैराग रे ! / हाथी-घोड़े-ऊँट सवारी / महँगी-महँगी मोटर-गाड़ी / ठाट-बाट पेशवा सरीखे / राजा लगते भगवाधारी / सिर्फ गेरुए वस्त्र पहनना / कहलाता न त्याग रे !

जिस लिहाज से ओमप्रकाशजी ने ज़िन्दगी को अपनी रचनाओं में उकेरा है, वे विभिन्न अनुभवों की अतुल्य समृद्धि के धनी न हों, यह हो ही नहीं सकता है। सीखे और समझे हुए को साझा करना मानवीय कर्तव्य का सबसे सकारात्मक पहलू है। विशद अनुभूत को साझा करने में भाषा अक्सर स्वतंत्र हो जाती है, अंदाज़ फक्कड़ हो जाता है। राजनीति का हालिया दौर इसी कारण बार-बार आपकी संवेदना को झकझोरता है। समाज और तंत्र में व्यापी अव्यवस्था से आपकी संवेदना अपनी दृष्टि नहीं फेरती। यही तो एक सचेत साहित्यकार का समाज के प्रति दायित्वबोध है-महामहिमजी न्याय चाहिए ! / ऐसे ज़ुल्म जबर्दस्ती का / अब हमको पर्याय चाहिए।

या फिर, कर्ज़ लेकर / फ्लैट-बँगला, कर्ज़ से ही कार है / जो बचे वो कर समझ कर काटती सरकार है / किस तरह सपने सजाऊँ ?

हताशा, उत्साह या अपेक्षाओं को विवेचित करने के क्रम में ओमप्रकाशजी इसके मूल कारणों को बूझने का प्रयास करते हैं। इसका कारण आपकी आध्यात्मिकता ही हो सकती है। आध्यात्मिकता व्यक्ति और समाज को झूठे दिलासों के आवरण नहीं दिया करती, जैसा कि अपने समाज में एक स्कूल द्वारा बहुप्रचारित कर इसकी अवधारणा पर ही सायास आघात किया जाता रहा है। बल्कि यह आध्यात्मिकता ही है जो आम-जन को सफलता एवं असफलता को स्वीकारने की चैतन्य क्षमता देती है।

आपकी पंक्तियों के माध्यम से हम पौराणिक पात्रों के आधुनिकीकरण को समझने का प्रयास करें-यूँ ही नहीं / राम जा डूबे / सरजूजी के घाट ! / दिनभर राजपाट की खिटखिट / जनता के परवाने / मातहतों का / कामचोरापा, फिर, धोबी के ताने / लोग समझते राजाजी तो / भोग रहे हैं ठाट !

संग्रह की रचनाओं से गुजरते हुए यह महसूस होता है, कि क्लिष्ट विसंगतियों के विरोध को सहज शाब्दिक स्वरूप मिला है। कई-कई बार तो कथ्य की स्पष्टता इतनी मुखर हो जाती है कि प्रस्तुतियों की पंक्तियों में सपाटपन का भ्रम हो जाता है। इसके प्रति ओमप्रकाशजी को सचेत रहना होगा। उधर, आग्रही पाठकों को प्रस्तुतियों के ये अंदाज़ समझने भी होंगे। यह अवश्य है कि हमारे आस-पास पसरे विस्तृत जीवन के कई-कई आयाम हैं, जिनकी अवगुंठित पँखुड़ियाँ आने वाले समय में आपके नवगीतों का रूप धरे एक-एक कर खुलती जायेंगीं। संग्रह में गीत की संप्रभुता पूरी धमक के साथ द्रष्टव्य है।

यह अवश्य है कि कई रचनाओं के कथ्य-चयन में ही नहीं, बल्कि रचनाओं की शैली में भी दिख रही पुनरावृत्तियों के कारण कई बार 'वही-वहीपन' हावी हो गया दिखता है। बिम्बों का उन्मुक्त इंगित तथ्य की तो सार्थक विवेचना करता है, परन्तु, कई बार तार्किकता छूट भी जाती दिखी है। कहना अनुचित न होगा, कि 'काली' के साथ 'महिषासुर' का बिम्ब उचित नहीं लगता। यहाँ 'रक्तबीज' को उद्धृत करना था। मात्रा के अनुसार दोनों शब्द 'षटकल' हैं। 'रक्तबीज' शब्द के तौर पर 'विषम पर विषम' की अनिवार्यता को संतुष्ट भी करता है।

ऐसी बारीक स्थितियाँ स्वीकार कर ली जायँ तो ओम प्रकाशजी का 48 नवगीतों का यह संग्रह 'खिड़कियाँ खोलो..' संवेदनशील पाठकों को अवश्य संतुष्ट करने की आश्वस्ति देता है। नवगीतों का संसार आपके रचनाकर्म से और समृद्ध होगा, इसमें दो राय नहीं है।

❐

दस प्रतिनिधि कहानियाँ
लेखिकाः सुधा ओम ढींगरा
मूल्यः 100 रुपये
शिवना प्रकाशन, पी.सी.लैब कॉम्पलेक्स बेसमेंट,
बस स्टैंड, सीहोर-466001 (म.प्र.)
फ़ोनः07562405545, 07562695918
Email-shivna.prakashan@gmail.com

Book Avaialable on :
http://www.amazon.in
http://www.flipkart.com

एम.फिल. हिंदी
अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली
pooja.prajapati85@gmail.com
0-9711254428

सामाजिक कसमसाहट की दस प्रतिनिधि कहानियाँ

समीक्षकः पूजा प्रजापति

जैसे ही विदेश, प्रवासी या विदेशी शब्द ज़हन में आते हैं तो, एक ही बात ध्यान में आती है कि वह संस्कारहीन, आर्दशहीन होते हैं। क्या, यह सिर्फ एक धारणा है या एक मिथ्या भ्रम? संभवत हो सकता है कि यह सत्य भी हो, लेकिन क्या यह तय कर लेना उचित है कि सभी विदेशी और प्रवासी संस्कारहीन और आदर्शहीन ही होते हैं? हमारे हाथ की पाँचों उँगलियों में से अगर एक उँगली सबसे छोटी है तो क्या सभी छोटी कही जा सकती हैं? नहीं न फिर, यही तार्किकता विदेश, प्रवासियों और विदेशियों पर बात करते वक्त कहाँ चली जाती है? प्रायः कहा जाता है कि विरहावस्था में ही प्रेम पराकाष्ठा तक पहुँचता है। ठीक ऐसे ही भारत से दूर रह रहे हमारे भारतीय जब विदेश में चले जाते हैं तब उन्हें, भारत से और अधिक लगाव हो जाता है। वह लोग वहाँ जाकर पूरी तरह से विदेशी नहीं बन पाते हैं, क्योंकि उनके भीतर संस्कारों का बीज फल-फूल चुका होता है। उनके भीतर एक कसमसाहट रहती है, जिसके चलते वह दोनों संस्कृतियों की तुलना करते हुए, अपने को उससे जुदा रखने की कोशिश करते हैं। उनकी यही कोशिश उन्हें कभी पूर्णतः विदेशी नहीं बनने देती। प्रवासी साहित्य में प्रायः संस्कृति और मूल्यों की टकराहट के बीच फँसे व्यक्तियों के अंतर्द्वंद्व को दिखाया गया है। साथ ही, विदेशी पृष्ठभूमि पर होने वाले सामाजिक बदलावों की नींव तक पहुँचने की कोशिश भी की गई है।

जीवन के अनेक पहलूओं को चित्रित कर, भारतीय प्रवासी लेखिका सुधा ओम ढींगरा अपनी कहानियों में उस सच को प्रस्तुत करती हैं; जो शायद, आधुनिकता की चकाचौंध तथा भावनाओं की मृत्यु शय्या में कहीं दफ़न हो गया था। इनकी कहानियों में केवल स्त्री ही केंद्र में नहीं बल्कि पुरुष के साथ-साथ हर वह पीड़ित तबका भी है, जिसे किसी न किसी ने शोषित किया हो। फिर वह शोषक चाहे उसके अपने परिजन हों या कोई प्रतिष्ठित संस्था। विवाह भी एक ऐसी ही संस्था है; जिसने कई व्यक्तियों की ज़िदगी का भरपूर शोषण किया है। लेखिका अपनी कहानियों में इस सच को भी बखूबी चित्रित करती हैं। इनकी कहानियाँ विश्वासघात, झूठ, दर्द, सिसकियों, जालसाज़ी, और कुंठा से घायल मनों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती हैं। रिश्ते किस प्रकार स्वार्थ की वेदी पर बलि चढ़ते हैं, यह इनसे समझा जा सकता है। स्वार्थ के आगे न माँ-बाप, न पति-पत्नी, न बहन-भाई कोई अपना नहीं होता। ऐसे में हर इंसान संभवत यही सोचने को मजबूर हो जाता है कि रिश्तों के इस विश्वव्यापी धरातल में कौन सी ज़मीन अपनी है? इनके प्रायः सभी पात्र उन्हीं मानवीय मूल्यों की ज़मीन पर पैर टिकाए रखना चाहते हैं जिनसे, हमारा नाता भूमंडलीकृत होने से पहले खूब रहा था।

शिवना प्रकाशन से प्रकाशित समर्थ लेखिका सुधा ओम ढींगरा की पुस्तक 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ' श्रेष्ठ कहानियों का संकलन है। 'बेघर सच', 'कमरा नंबर 103', 'आग में गर्मी कम क्यों है?', 'सूरज क्यों निकलता है', 'क्षितिज से परे.', 'विष-बीज', 'कौन सी ज़मीन अपनी', 'टॉरनेडो', 'वह कोई और थी', 'पासवर्ड', इत्यादि कहानियाँ संवेदना और शिल्प की सम्पूर्णता लिये हुए हैं। इस कहानी संग्रह के शुरूआत में हिन्दी के युवा प्रतिष्ठित लेखक पंकज सुबीर द्वारा लिखी विस्तृत भूमिका कहानियों पर बेहतर प्रकाश डालती है। इन्होंने विस्तृत रूप से कहानियों का आलोचनात्मक विश्लेषण कर लेखिका के कहानी-कौशल पर भी चर्चा की है। साथ ही, प्रतिष्ठित रचनाकारों द्वारा लेखिका सुधा ओम ढींगरा

की कहानियों तथा उनके कथा-संसार पर की गई संक्षिप्त टिप्पणियों को भी संगृहीत किया गया है।

'बेघर सच' कहानी में रंजो के माध्यम से लेखिका ने एक स्त्री के अस्तित्व की खोज की है। प्रायः बेटी के रूप में स्त्री को पराया धन कह कर अपने से मानो जैसे अलग कर दिया जाता है। मायके में दूसरे की अमानत और ससुराल में दूसरे घर से आई स्त्री का बिल्ला उसके दामन से कभी नहीं हटता। संस्कृति की वाहक मानी जाने वाली स्त्री प्रायः किसी न किसी कला की स्वामिनी भी होती है। ऐसे में जब वह उसी कला के साथ ससुराल में आती है, तो उसकी कला को निष्प्राण करने की भरसक चेष्टा की जाती है। इस कार्य में कई बार ससुराल पक्ष की जीत होती है, लेकिन उस आने वाली बहू की कला की असामयिक मृत्यु। क्या, स्त्री के शादी कर लेने का अर्थ खुद को तथा अपनी प्रतिभा को हमेशा के लिए तिलांजलि दे देना है? इस कहानी में लेखिका की दृष्टि स्त्री-मन का मानो कोना-कोना झाँक आई है। स्त्रीवादी विमर्श में इन सभी मुद्दों को ही उठाया जाता है, यह कहानी एक ऐसी ही दिशा में सोचने को मजबूर करती है। संजय द्वारा कहानी के अंत में माँ की स्मृतियों के रूप में उनकी बनाई बेशकीमती मूर्तियाँ तोड़ डालना पितृसत्ता के वर्चस्व का प्रतीक है। आद्यंत कहानी में पितृसत्ता का बोलबाला है। स्त्री-अस्तित्व से जुड़े कई अन्य अहम सवालों को भी इस कहानी में उठाना लेखिका नहीं भूलती।

'कमरा नंबर-103' में लेखिका ने बड़ी कुशलता से मुख्य पात्र (मिसेज वर्मा) को संवादहीन रखते हुए भी उसकी पीड़ा को मुखरता प्रदान की है। बार्नज़ अस्पताल की नर्सें टैरी और ऐमी की वाक्पटुता, मिसेज वर्मा की चुप्पी के साथ मिलकर एक नए किस्म की संवाद शैली को जन्म देती है। नर्सें टैरी और ऐमी के बीच का संवाद कहीं भी मिसेज वर्मा की चुप्पी से टूटता-बिखरता नहीं है। दोनों संवाद ऐसे घुल-मिल जाते हैं, जैसे तीनों आपस में ही कर रहे हैं। प्रवासी परिवेश की इन कहानियों में भागती-दौड़ती ज़िंदगी के बीच उस भाईचारे और सौहार्द के भी संकेत मिलते हैं, जिनके अब भारतीय भूमि से नामोनिशाँ तक मिटने लगे हैं। भारतीय अस्पतालों की अगर बात करें तो वहाँ नर्सें इतने रुखे व्यवहार से पेश आती हैं कि जैसे मरीज़ का खर्चा वही उठा रही हों। मरीज़ के शरीर की देखभाल तो क्या भर्ती होने पर उनसे आप अपनी दवाई भी दुबारा नहीं पूछ सकते। इस तरह विदेशी सरकारी अस्पतालों की इस खूबी को यह कहानी प्रस्तुत करती है।

'आग में गर्मी कम क्यों है?' कहानी में जेम्ज़ के साथ संबंध रखने वाला शेखर अपनी मृत्यु के बाद साक्षी के लिए कई सवाल छोड़ गया। वह सब कुछ स्वीकार करते हुए भी जानना चाहती है कि उसके प्यार में कहाँ कमी रह गई थी। यहाँ एक सही मायने में आधुनिक स्त्री के रूप में साक्षी का चित्रांकन हुआ है। यह वो आधुनिक स्त्री है; जो हर परिस्थिति को झेलने को तैयार है, जो पति से सवाल पूछने का अधिकार रखती है। जो पति के समलैंगिक संबंध को भी स्वीकार कर लेती है, जो हार्मोन्ज़ के विज्ञान को समझती है। इस कहानी में समाज के उन मूल्यों की बात की गई है, जो एक स्थान विशेष पर वैधता प्राप्त करते हैं और अन्य स्थान पर वह वर्जना बन जाते हैं। पति के समलैंगिक सम्बम्ध को इतनी सहजता से एक पत्नी की स्वीकृति मिलना अपने परिवार को बचाए रखने की पुरज़ोर कोशिश का ही परिणाम है। यह भारतीय और यूरोपीय संस्कृति के मेल की कहानी है। भारतीय स्त्री साक्षी अपने बच्चों पर पिता के साए को बरक़रार रखने की चाह में, भारतीय समाज में वर्जित इस अनैतिक संबंध को भी स्वीकार करती है। इस तरह साक्षी बौद्धिक रूप से अपने परिपक्व होने का परिचय देती है। जेम्ज़ से जुड़ने के बाद शेखर के व्यवहार में आया अलगाव साक्षी को दंश की तरह चुभता रहता है। वह संबंधों में मादकता की तपिश में शेखर की ओर से कुछ शिथिलता का एहसास पाती है। इसी सच्चाई को कहानी सार्थक सिद्ध करती है।

लेखिका ने अपनी अगली कहानी 'सूरज क्यों निकलता है ?' में होमलेस और गरीबी रेखा से नीचे बसर करने वालों को सरकार द्वारा प्राप्त होने वाली सुविधाओं का होता गलत इस्तेमाल इसमें प्रस्तुत किया गया है। बैठे-बिठाए मिलने वाली दो जून की रोटी का जुगाड़ लोगों को गतिविहीन, मक्कार, धोखेबाज़ बना देता है। पीटर और जेम्ज़ खाना खाने के लिए मिलने वाले कूपन को बेचकर शराब से गला तर करना और जवानी की रंगत से आँखें चमकाना ज़्यादा बेहतर समझते हैं। प्रस्तुत कहानी एक ऐसे बड़े समुदाय को सीख देती है; जो माँगने वाले लोगों की हैल्प कर गुप्तदान से अपना जन्म सुधारते हैं। हम किसी के मुँह में निवाला देकर उसकी मदद के साथ-साथ उसे परिश्रम करने से भी रोकते हैं। कहानी में पीटर और जेम्ज़ का जीवन ऐसे लोगों का प्रतिनिधित्व करता है, जिन पर बदतर हालात पर भी रहम नहीं करना चाहिए। ऐसे लोग अपनी गरीबी हमेशा बनाए रखना चाहते हैं, जिससे उनकी मदद होती रहे और उन्हें मेहनत न करनी पड़े।

'क्षितिज से परे..' कहानी में लेखिका ने स्त्री के अस्तित्व की लड़ाई को पेश किया है। इसमें उन्होंने मानसिक और शारीरिक पीड़ा झेलती रहती उन स्त्रियों से संवाद किया है जो, समाज के डर से खुद को पीड़ित होने देती हैं। बचपन से समाज उन चार लोगों का डर घुट्टी की तरह पिला देते हैं जिसे फिर, दिमाग से या कहूँ तो अपने अस्तित्व से निकाल पाना नामुमकिन होता है। यही अदृश्य डर कई ज़िंदगियों के लिए मात्र ज़हर से बढ़कर कुछ भी नहीं। सारंगी जिसने अपने 40 साल पति के साथ बिताए या कहूँ तो घसीटे उसके लिए अब निभा पाना मृत्यु से कम नहीं था। हाँलकि वह, मर तो रही थी हर पल। लेकिन अब पानी सर से ऊपर जा चुका था। अब वह केवल 10 वीं पास एक मामूली स्त्री नहीं बल्कि एक प्रोफेशनल पेंटर, समाजसेवी नर्स तथा परिजन बन कर एक व्यापक परिवार का हिस्सा बन चुकी थी। अब उसकी प्राथमिकताएँ पहले जैसी चारदीवारी में कैद नहीं थीं, अब वह क्षितिज से परे खुले आकाश में स्थापित हो चुकी थी। उसका पति सिर्फ एक मशीन बनकर रह गया था, जो सिर्फ ज़रूरत पड़ने पर पैसे तो दे सकता है लेकिन, किसी के दुःख-दर्द से पीड़ित नहीं हो सकता बिल्कुल, ए.टी.एम. जैसा। विदेश में जाकर नए परिवेश में बसने के संघर्ष को दोनों झेलते हैं लेकिन, दोनों का संघर्ष अलग-अलग और महत्त्वपूर्ण है। इसी बात को उसका पति समझना नहीं चाहता। अनगिनत अत्याचार सहकर भी शादी से बँधे रहना, इस तरह के दकियानूसी विचारों का मोह केवल लोगों के जीवन को तबाह कर सकता उन्हें आबाद नहीं। स्त्री-शक्ति को चित्रित करती यह कहानी बेहद सशक्त कहानी है।

'विष-बीज' इस कहानी में एक बलात्कारी बनने की प्रक्रिया, उसका हवसभरा जीवन और फिर बाद में उसका इकबाल-ए-जुर्म है। यह कहानी कई सवाल खड़े करती है, जिनमें से प्रमुख हैं-क्या सभी हालात द्वारा निर्मित मानसिकता से ही बलात्कारी होते हैं? क्या, हर बलात्कार के पीछे केवल बलात्कारी ही दोषी होता है, समाज की उसमें कोई भी भूमिका नहीं होती है? इसमें लेखिका ने उस मानसिकता की गहराई में पड़ताल करने की कोशिश की है, जिसके चलते बलात्कारों की घटनाएँ अब हमारी रोज़मर्रा का हिस्सा बन गई हैं। बलात्कार द्वारा पितृसत्ता ने अपने हाथों में

शक्ति ली है और उसे समाज को नियंत्रित करने के लिए इस्तेमाल कर रहा है। यह कहानी बलात्कारियों की हिंसक प्रवृत्ति की उसके आस-पास के समाज की तहकीक़ात करती है। साथ ही उस फ़ैक्टरी की तलाश भी करती है; जहाँ से बलात्कारी मैन्यूफेक्चर होते हैं? रोज़मर्रा की सहचर होती बलात्कारों की घटनाओं के चलते कई लोग बलात्कारियों के अंग-भंग की माँग करते हैं, जिससे संभवतः इनके रुकने तथा कम होने के आसार लगते हैं। कहानी में इस अहम मांग को भी उठाया गया है। इस कहानी के द्वारा ऐसे कई संस्थानों का पर्दाफाश भी किया गया है;जो अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए सरकार से अनुदान प्राप्ति के लिए कई ज़िंदगियों से खिलवाड़ करते हैं।

'कौन सी ज़मीन अपनी' हमारे अपने खास रिश्ते जिन्हें हम संभवतः पूजते हैं, उन रिश्तों के द्वारा मिलने वाले विश्वासघात की कहानी है। एक बड़ी कहावत है जर, जोरू और ज़मीन यह तीनों फसाद की जड़ हैं। इस कहानी का यही केंद्र कहा जा सकता है। मनजीत सिंह, अमेरिका का ग्रीनकार्ड होल्डर लेकिन उसका मन पूर्णतः भारत का नागरिक। मनजीत सिंह बचपन से लेकर जवानी तक की सभी खट्टी-मिठ्ठी यादों को अमेरिका की सुख-सुविधा से परिपूर्ण ज़िन्दगी में भी याद करता है। मनजीत सिंह एक ऐसे कल्पनालोक में जीता है; जिसमें केवल और केवल रिश्तों का आदर्श रूप ही उस लोक का अधिष्ठाता है। इस कहानी में एक ऐसे मध्यवर्गीय परिवार की विडंबना को चित्रित किया गया है, जो अपनी गरीबी मिटाने के लिए एन.आर.आई. बहू को तो अपना लेते हैं, लेकिन उसे हमेशा बेटे को दूर करने वाली करमजली से ज़्यादा मान नहीं देते हैं। अपने सगे-रक्त-संबंधियों के लिए मनजीत केवल ए. टी. एम. मशीन है; जो समय-समय पर कभी ज़मीन तो कभी पैसा उगलती है।

'टॉरनेडो' कहानी में जैनेफर पश्चिमी सभ्यता में ढली एक आधुनिक स्त्री है। जैनेफर का अत्यधिक स्वछंद और स्वतंत्र व्यक्तित्व क्रिस्टी को पसंद नहीं। इस कहानी में पत्नी के विभिन्न स्वरूपों के द्वारा दो संस्कृतियों तथा सामाजिक वर्जनाओं का टकराव दिखाया गया है। जैनेफर अपनी भावनाओं, इच्छाओं और देह के प्रति सजग रहते हुए बस इन्हें पूरा करने पर बल देती है। वहीं वंदना संयमित रुप से जीवन जीते हुए सोनल और क्रिस्टी के लिए हर तरह से सही मायनों में माँ की भूमिका अदा करती है। वंदना जैसी स्त्रियों के लिए इसलिए वह तथाकथित समाज एबनॉर्मल जैसा सम्बोधन इस्तेमाल करता है। इसी मानसिकता को ध्वस्त करने वाली यह कहानी अपने आप में एक विमर्श लेकर प्रस्तुत होती है। अक्सर स्त्रीवादियों पर यह आरोप लगाया जाता है कि वह स्वछंद यौनाचार के लिए पैरवी कर रही हैं। जबकि वह स्त्री-पुरुष सम्बंधों के दौरान खुद को सिर्फ मादा देह नहीं बल्कि मानवीय गुणों से परिपूर्ण इंसान समझे जाने की लड़ाई लड़ रही है। वंदना ऐसी ही स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है; जो स्वतंत्र विचारों की होते हुए भी अपनी ज़िम्मेदारियों से अलग नहीं है, वह स्वतंत्र है लेकिन स्वच्छंद नहीं।

'वह कोई और थी' कहानी सिक्के के उस पहलू को दिखाती है; जो विदेश की चमक-धमक के आगे प्रायः छिप जाता है। यह कहानी पैसों के बल पर ऐयाशियों के चाबुक से पीड़ित भारतीयों के दर्द का सच बयान करती है। भारतीयों को विदेश का लालच देकर अपने यहाँ, खरीदा हुआ नौकर बनाना इन ऐयाशों के लिए आम बात है। उन्होंने इस सच की हर परत हटा कर इसके, विद्रूप यथार्थ को चित्रित किया है। अपने संस्कारों से गिरने और संस्कारों के साथ जीने की जद्दोजहद कहानी के पात्रों में मिलती है। अवसरवादी युग में किसी के लिए किसी भी चीज़ की कोई अहमियत नहीं है। किसी भी कीमत पर और जैसे भी किसी से अपना काम निकले, उसे निकलवा लो, यही सपना और उसके डैडी श्याम कनौजिया की मानसिकता है। अभिनंदन वत्स उर्फ नंदू संस्कारों से घिरा अपना घर हर कीमत पर बचाए रखना चाहता है, लेकिन अंततः अपने घुटने टेक ही लेता है। वह अपनी सपना को ढूँढ़ ही नहीं पाता। दो तथा दस वर्षीय ग्रीन कार्ड और वर्क परमिट स्थाई और शीघ्र कामयाबी का एक ऐसा अहम लालच है, जिसके लिए न जाने कितनी ज़िंदगियाँ कुर्बान होती हैं। कई ज़िंदगियों को विदेशों में नौकरों की तरह रहना पड़ता है। यहाँ उनके परिजनों को लगता है कि वह वहाँ शादी कर खुश होंगे या बड़े अफसर के रूप में, देश की शान बढ़ा रहे होंगे लेकिन, सच्चाई कुछ और ही होती है। इसी सच्चाई पर लेखिका की नज़र गई है।

'पासवर्ड' कहानी में लेखिका ने उन मध्यवर्गीय लोगों को चित्रित किया है जो विदेश का वीज़ा प्राप्त करने के लिये लालायित रहते हैं। एन. आर. आई. लोगों से शादी कर उन्हें ग्रीन कार्ड पाने की जल्दी रहती है। ऐसे मध्यवर्गीय लोगों की जालसाज़ी का पर्दा फाश कर लेखिका ने अपनी कथ्य-विभिन्नता की विशेषता को समृद्ध किया है। स्त्री की उस छवि को चित्रित किया गया है, जो अपने प्रेमी के साथ मिलकर षड्यंत्र रचती है। वह अपने पति को संबंध बनाने नहीं देती; लेकिन उससे मिलने वाले ग्रीन कार्ड का भरपूर फायदा लेना चाहती है। स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों को देखते हुए उनकी सुरक्षा के लिए कानून समय-समय पर कई संशोधन करता आया है। इन संशोधनों के प्रयोग से कई घर जहाँ टूटने से बचे भी हैं तो वहीं कई टूटे भी हैं; क्योंकि हर वस्तु, नियम का गलत और सही दोनों तरह से इस्तेमाल किया जा सकता है। यहाँ भी कुछ ऐसा मामला है। यहाँ स्त्री-अधिकारों का उपयोग अपनी ही स्वार्थ सिद्धि के लिए हो रहा है।

विदेश में प्रवास के दौरान लिखी गई इन कहानियों में भारतीय संस्कृति के मूल्यों, आदर्शों को विदेशी माहौल में जीवित रखने की एक द्वंद्वात्मक स्थिति मिलती है। इन कहानियों में दो संस्कृतियों तथा दो देशों की टकराहट व परंपरागत मूल्यों के निरंतर ह्रास को देखकर उत्पन्न हुई पीड़ा मिलती है। यह विशेषता भारतीय भूमि पर लिखे हिन्दी साहित्य की कहानियों में प्रायः नहीं मिलती। लेखिका सुधा ओम ढींगरा किसी एक वर्ग (स्त्री-पुरुष) की पक्षपाती नहीं, बल्कि शोषण के विरुद्ध पीड़ित वर्ग के साथ दिखती हैं। ये सभी कहानियाँ रिश्तों के बीच की कसमसाहट को जीने वाले पात्रों का जीवंत कच्चा चिट्ठा है। यहाँ रिश्तों में आई कड़वाहट, ऊब, घुटन, बेचैनी, कसक, अनिच्छा, बोझिलता, पीड़ा, उदासीनता, उपेक्षा, खुदगर्जी, शून्यता इत्यादि स्पष्टतः देखी जा सकती है। लेखिका अपनी सभी कहानियों के पात्र तथा वातावरण विदेशी रखकर भी उसे कहीं बोझिल बनने नहीं देती। कहानियों को पढ़कर कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि यह सभी कहानियाँ विदेश की हैं, क्योंकि इनमें आए पात्र और समस्याएँ हमारे आस-पास ही मौजूद हैं। लेखिका की भाषा शुरू से ही पाठक को अपने साथ जोड़े रखती है। इनकी सहज, सरल और पात्रानुकूल भाषा कहानी में निरंतर कौतूहल बनाए रखती है। प्रवासी लेखिका सुधा ओम ढींगरा की इन दस प्रतिनिधि कहानियों को पढ़कर आप यह नहीं कह सकते कि यह दलितवादी या स्त्रीवादी लेखिका हैं। इन्होंने इन सभी कहानियों में विषय-वैविध्य को बनाए रखा है। समाज में जो जैसा, जितनी विद्रूपता को ओढ़े हुए सच विद्यमान है; इन्होंने उसे वैसा ही बिना छिपाए और अतिशयोक्ति प्रस्तुत किया है। यही विशिष्टता लेखिका की कहानियों की अपनी खास पहचान है।

❐

कसाब.गांधी@यरवदा.इन
लेखकः पंकज सुबीर
मूल्यः 150 रुपये
शिवना प्रकाशन, पी.सी.लैब कॉम्प्लेक्स बेसमेंट,
बस स्टैंड, सीहोर-466001 (म.प्र.)
फ़ोनः07562405545, 07562695918
Email-shivna.prakashan@gmail.com

Book Avaialable on :
http://www.amazon.in
http://www.flipkart.com

कसाब.गांधी@यरवदा.इन : लेखक के लेखन कौशल का चरम

समीक्षकः वंदना गुप्ता

पंकज सुबीर एक जाना पहचाना नाम है; जिनके लेखन से सभी परिचित हैं, जो आज किसी पहचान का मोहताज नहीं। एक अलग सोच के धनी हैं लेखक, जहाँ कहानियों में एक तिलिस्म बुनने की कोशिश की होती है, जो पाठक को पढ़वा ले जाती है। लेखक पात्रों का चित्रण इस तरह करता है यूँ लगता है शायद वो उसी की ज़िन्दगी का कोई पहलू हो या बहुत पास से लेखक उन पात्रों से गुज़रा हो और यही लेखन की सफलता होती है।

कसाब. गाँधी@यरवदा। इन संग्रह की पहली कहानी ही अपने तिलिस्म में पाठक को कैद करती है। दो नंबरों के माध्यम से संवाद प्रक्रिया उन पहलुओं पर कटाक्ष करती है जिनकी अक्सर अनदेखी की जाती है या पता होता है मगर अंजान बने रहना चाहते हैं हम और लेखक ने उसी पक्ष को कहानी के माध्यम से उभरा है जहाँ सी-7096 और 189 दो नम्बर बतिया रहे हैं। सी-7096 को कसाब और 189 को गाँधी का प्रतीक बना एक दर्द को उकेरा है तो कहीं एक गलत निर्णय कैसे प्रभावित करता है सारे आन्दोलन को उस पर प्रहार किया। फाँसी से पहले की रात में किस मानसिकता से गुज़रा होगा कसाब, उसका दिग्दर्शन तो कराया ही है साथ में उसके हाव-भाव, उसकी सोच, उसका प्रतिपल पहलु बदलना हो या सामने वाले को आँकना, छोटी छोटी चीज़ों से दर्शाना लेखक का खुद को पात्र को आत्मसात किये बिना लिखना मुनासिब नहीं था। बेशक दोनों अपनी-अपनी परिस्थितियों में लिए गए निर्णयों को सही जता रहे हैं; लेकिन शायद अन्दर से जानते हैं कि वो कहाँ ग़लत थे और कहाँ सही मगर अहम् की परतों के नीचे दबा देते हैं निर्णयों को और चल पड़ते हैं उन राहों पर जो किसी के लिए सँकरी हो जाती हैं तो किसी के लिए बंद।

वहीं इस कहानी में गाँधी से वार्तालाप करते हुए कहीं न कहीं कसाब कहो या सी-7096 को बोध होता है, उसकी आत्मा जानती है कि वो गलत है और शायद यही वो पल होता है जब वो स्वीकारता है अंतिम सत्य और यही लेखक का मुख्य मकसद रहा कि दोषी को सही गलत की पहचान हो। शायद मौत सामने खड़ी होती है जब तब सही और गलत की हर बुरे से बुरे इंसान को पहचान हो जाती है और वो अपनी सज़ा को फिर खुले दिल से स्वीकार पाता है। उससे पहले अपने तर्कों से खुद को सही सिद्ध करने की कोशिश करता है अपनी ही नज़र में फिर वो गाँधी का आभास का रूप ही क्यों न हो और यही लेखक ने दर्शाने की कोशिश की है कि जीवन भर चाहे तुम कितना ही अपने अच्छे बुरे कामों को स्वीकृति देते रहो कि तुम सही हो मगर अंतिम सत्य यही होता है जब तुम अपनी आत्मा की तुला पर खुद को तोलते हो और अपने ही पलड़े में खुद को हल्का पाते हो, तब तुम अपनी कमियों और कमज़ोरियों को स्वीकारते हो, सही गलत का निर्णय लेते हो और वो ही जीवन का अंतिम सत्य है जब इंसान अपनी गलती स्वीकार ले, न उससे पहले न उसके बाद कोई सत्य कहीं बचता है और ऐसा करना ही सबसे बड़ा उसका प्रायश्चित होता है।

जहाँ तक कहानी को लिखने का कौशल है उसमें तो लेखक सिद्धहस्त हैं। दोनों पात्रों के बीच बातचीत एक ऐसे माहौल में कराना और उसके लिए माहौल बुनना, पाठक आश्चर्य में डूबा अंत तक पढ़ता जाता है कि आख़िर कहानी के माध्यम से लेखक कहना क्या चाहता है यानि जहाँ सम्भावना का अंत हो रहा है वहीं से एक नयी सम्भावना को जन्म देना ही लेखक के लेखन का कौशल है। इस कहानी के बारे में जो लिखा जाए कम ही रहेगा

वंदना गुप्ता
डी-19, राणा प्रताप रोड
आदर्श नगर, दिल्ली 110033
rosered8flower@gmail.com
मोबाइल : 9868077896

क्योंकि संवाद की शैली और प्रश्नोत्तरी ही पाठक के मनो मस्तिष्क को मथने को काफी है, उस पर कुछ गहरे राज़ खोलना कहानी में रोमांच पैदा करता है साथ ही संवाद अदायगी मानो रंगमंच पर सामने ही कलाकार हों और दर्शक उस प्रक्रिया को घटित होते देख रहा हो, तो कहानी अपने बहुआयामी रंगों को संजोये लेखन को सफल बनाती है।

'मुख्यमंत्री नाराज़ थे' आज के नेताओं के चरित्रों का कच्चा चिट्ठा खोलती है जो मौत को भी अपनी सफलता का माध्यम बना लेते हैं, संवेदनहीनता की पराकाष्ठा को दर्शाती है कहानी। डी डी मित्तल कहानी का मुख्य किरदार जो मुश्किल से पद प्राप्त करता है लेकिन एक गलती से उसे खोने की कगार पर पहुँच जाता है तो अपनी माँ की मौत को ही एक बार फिर कुर्सी पाने का माध्यम बना लेता है, माँ की अंतिम इच्छा के रूप में प्रचार प्रसार कर कुर्सी बचा लेना घटते जीवन मूल्यों और बढ़ती असंवेदनशीलता को तो दर्शाती है साथ ही समाज और सिस्टम में व्याप्त मानसिक भ्रष्टाचार को भी दर्शाती है। 'पुत्रियाँ बचाओ योजना' प्रदेश के मुख्यमंत्री द्वारा चलाई योजना को हथियार बना लिया अपनी माँ की अंतिम इच्छा बता, जो दर्शाती है कैसा चरित्र हो गया है आज के नेताओं का तो कैसे समाज का निर्माण होगा ? ये प्रश्न हवा में तैरता नज़र आता है। स्वार्थ की पट्टी आँख में बाँधना कुर्सी प्राप्त करने की पहली शर्त है मानो आज के नेता ये सन्देश दे रहे हों क्योंकि यदि आपको सिस्टम में टिके रहना है तो मुख्यमंत्री को खुश रखना ज़रूरी है, मुख्यमंत्री का नाराज़ होना ..... शामिल नहीं है सिस्टम में टिके रहने को। लेखक द्वारा राजनीती में फैले भ्रष्टाचार पर एक कटाक्ष है ये छोटी सी कहानी जो गहरा वार करती है और राजनीति के दांव पेंचों और उठा पटक से अवगत कराती है। राजनीति के येन केन प्रकारेण कुर्सी बचाओ अभियान का स्याह पक्ष उकेरने में सक्षम है कहानी तो कहने में सफल है लेखक।

लव जिहाद उर्फ़ उदास आँखों वाला लड़का ..... लेखक का हर बार शीर्षक के माध्यम से पाठक को आकर्षित करना कहानी लेखन का पहला आकर्षण होता है उसके बाद कहानी का नम्बर आता है। सांप्रदायिकता की आग में झुलसती मानवता और उसके बीच पनपे प्रेम का हश्र क्या होता है उसका चित्रांकन है पूरी कहानी, जहाँ दो जाने माने धर्मों को प्रतीकों के माध्यम से दर्शाते हुए कहानी को लेखक आगे बढाता है, हरा रंग और सिन्दूरी रंग सारी कहानी को कह जाता है, एक तनाव भरे माहौल में प्रेम में दो प्रेमियों का पड़ना और फिर उसका आकार लेना और अंत में उसका हश्र जो अक्सर होता है बिछुड़ना यूँ एक आम ही कहानी है, इसीलिए लेखक ने लड़के और लड़की को कोई नाम नहीं दिया, यहाँ तक कि किसी पात्र का कोई नाम नहीं है फिर लड़के का पिता, लड़की का पिता और माता आदि संबोधन दे कहानी को लेखक बढ़ाता गया क्योंकि वो लड़का और लड़की कोई भी हो सकते हैं और उनकी कहानी का अंत क्या हो सकता है ज़्यादातर सभी जानते हैं कि कैसे ऐसी बातों को दबाया जाता है और प्रेम करने वालों को अलग किया जाता है फिर चाहे उसके लिए लड़की उम्र भर दोजख की आग में जले और लड़का एक कट्टर सांप्रदायिक बन जाए, उसी को लेखक द्वारा व्यक्त किया गया है। कोशिशें काफी की जाती हैं, लड़के के संप्रदाय को भड़काने की लेकिन जिस हद तक चाहा होता है वैसा हो नहीं पाता बेशक कुछ अपने मारे जाते हैं लेकिन स्थिति को नियंत्रण में दिखा दिया जाता है।

'चिरई-चुरमुन और चीनू दीदी' बचपन से यौवन की तरफ बढ़ते युवा के मन मस्तिष्क और शारीरिक बदलाव के साथ अधकचरे ज्ञान से फैले अन्धकार का चित्रण है। यूँ कहानी के पात्रों के नाम हैं लेकिन वो खुद को चिरई-चुरमुन कहते हैं क्योंकि यहाँ पात्र बहुत हैं यानि युवा होते लड़के जो बचपन से नानी दादी से कहानी सुनते बड़े होते हैं, जिन्हें अभी पता भी नहीं होता स्त्री पुरुष संबंधों का, ऐसी अपरिपक्वता के साथ जीते बच्चों को ज़रूरत होती है सही मार्गदर्शन की लेकिन जब उन्हें सही मार्गदर्शन नहीं मिलता तो उनकी सोच वहीं जाकर रुक जाती है हर बार आख़िर उनसे क्या छुपाया जा रहा है और क्यों ? जो वो देखते हैं सुनते हैं उसके बारे में जानकारी चाहते हैं लेकिन जानकारी के बदले यदि मार पड़े या डांट तो जिज्ञासा के जंतु कुलबुलाने लगते हैं और अपनी अधकचरी सोच के माध्यम से अपने अपने अर्थ वो निकालते हैं,जब ऐसे माहौल में वो बड़े होते हैं तो जो भी खुद से ज़्यादा समझदार दिखे उसके दिखाए रास्ते पर ही चलने लगते हैं और उसे ही सही समझते हैं ....ऐसा ही लेखक ने उन बच्चों के माध्यम से दर्शाया है कैसे कुछ सवालों के जवाब नहीं मिलते तब बड़े स्कूल में जाने पर अपने से सीनियर उन पर अपना ज्ञान बघारते हैं तो उसी को सत्य समझते हैं, अश्लील किताबों से मिलता अधकचरा ज्ञान ही फिर सहायक होता है जो उनके लिए संसार के आठवें अजूबे से कम नहीं होता क्योंकि एक दबे ढके माहौल में रहने वालों को अचानक आज़ादी की हवा उड़ाने लगे तो संभालना आसान नहीं होता ऐसा ही उनके साथ होता है, जो देखा जाना पढ़ा वो अधूरा ही है जब तक उसकी अनुभूति से न गुज़रा जाए तो चिरई-चुरमुन गैंग द्वारा योजना बनाना कि कैसे कार्य को अंजाम दिया जाए और उस अनुभूति से गुज़रा जाए इसका खालिस चित्रण है कहानी। चीनू का गाँव में आना, उसके लिए आग शब्द का प्रयोग किया जाना उनके कार्य में सहायक सिद्ध होता है क्योंकि बचपन से यही शब्द उनकी सोच की हांडी को पकाता रहा था कि आख़िर इस आग शब्द का वास्तविक अर्थ है क्या लेकिन जब पत्रिका के दृश्यों से अवगत हो जाते हैं और चीनू के लिए उन्हीं शब्दों को सुनते हैं तो उन्हें उसे असलियत तक ले जाने की इच्छा होती है और उसी को अंजाम देने के लिए भरसक प्रयत्न करते हैं और जब उसका लाइव प्रसारण देखते हैं तो नीली फिल्म हो या सचित्र पत्रिका दोनों सम्मुख उपस्थित हो जाते हैं लेकिन हाथ कुछ नहीं आता वो खाली ही रह जाते हैं क्योंकि खीर तो कौआ खा जाता है।

मुख्य कहानी तो सिर्फ यही है लेकिन एक बार फिर लेखक ने मानव मनोविज्ञान को पकड़ा है, उसकी जिज्ञासा को उकेरा है और साथ ही एक सन्देश भी दिया है कि जो युवा होते बच्चों को सही मार्गदर्शन न मिले या सेक्स का ज्ञान न हो तो कैसे अधकचरी जानकारी से प्रेरित हो वो किसी भी हद तक जाने को तैयार हो जाते हैं। कहानी पढ़ते हुए पाठक को पात्रों से सहानुभूति भी होती है और तरस भी आता है कि हमारे समाज में सेक्स को वर्जित विषय बनाकर पेश किया जाता है जिस कारण युवा गलत संगत में पड़कर भटक भी सकता है। यूँ कहानी का कथ्य रोचक है उस पर विषय ऐसा हो तो जिज्ञासा चरम पर पहुँचकर स्खलित हो जाती है। एक एक पात्र, उसकी मनोदशा, गाँव का ठेठ मिजाज़ सब मिलकर कहानी को रोचकता के चरम पर ले जाते हैं जहाँ अश्लील कुछ नहीं है क्योंकि संकेतात्मक ध्वनि ही काफी है रोचकता को बनाए रखने को और उस कार्य को अंजाम देने में लेखक पूरी तरफ सफल रहा है। एक पढ़ी जाने योग्य कहानी लेखक के लेखन कौशल का चरम है।

'आषाढ़ का फिर वही एक दिन' शीर्षक आकर्षित करता है और पाठक उस तिलिस्म में घुसता है कुछ ढूँढने। भार्गव बाबू नाम के भ्रष्टाचारी किरदार की जीवन चर्या को दर्शाना भर रहा है इसमें लेखक का मंतव्य। बेशक कैसे भ्रष्टाचार व्याप्त होता है उसका

चित्रांकन है, ऐसे लोग कैसा जीवन जीते हैं वो ही दर्शाया है और कितने खडूस होते हैं, एक आम ज़िन्दगी की दिनचर्या भर के प्रस्तुतीकरण को कहानी का आकार दे दिया गया है ।

'हर एक फ्रेंड कमीना होता है' एक संवेदनशील कहानी है। कैसे गलतफहमियों का शिकार हो एक दोस्त अपने दोस्तों की ज़िन्दगी में ज़हर घोल देता है और उनकी दोस्ती टूट जाती है। उस उम्र का आकर्षण कैसे सिर्फ एक खास चेहरे की चाह में झूठे सच्चे बयाँ देता है और सोचता है शायद वो जीत जाएगा, लेकिन ऐसा नहीं होता तब उसे अपनी गलती का अहसास होता है और एक उम्र के बाद जब वो अपने गिल्ट से उबर नहीं पाता तो अपनी गलती को ईमेल के माध्यम से पत्र भेज स्वीकारता है, जबकि जानता है ये सत्य कि इसके बाद उसका अपने सभी दोस्तों से रिश्ता हमेशा के लिए ख़त्म हो जाएगा। वैसे नया कुछ नहीं है ऐसा अक्सर होता है लेकिन नया है तो लेखक का प्रस्तुतीकरण, घटनाओं को केमिस्ट्री से जोड़ प्रस्तुत करना। फासिल्स को आधार बना पूरी कहानी रच देना और उसके इर्द गिर्द ही घुमा कर ले आना ही कहानी का तिलिस्म है। इस सबके साथ कहानी के शीर्षक को जस्टिफाई करता है लेखक मानो कहना चाहता हो अंधविश्वास किसी पर नहीं करना चाहिए क्योंकि कब कौन आपकी सारी जानकारियाँ जुटाकर आपको धोखा दे जाए आप सोच भी नहीं सकते और यही है कहानी का मुख्य उद्देश्य।

'कितने घायल हैं, कितने बिस्मिल हैं .....' लिव इन पर आधारित कहानी है जहाँ आपगा और अजिंक्य दो पात्र हैं जो सिर्फ शरीर तक ही सीमित हैं, जिनमें और कोई एक दूसरे के लिए भावनाएँ हैं ही नहीं खास तौर से आपगा में। उसके लिए देह सिर्फ देह है और देह की ज़रूरत देह से ही पूरी हो सकती है वहाँ भावनाओं का कोई काम नहीं होता वहीं अजिंक्य इससे सहमत नहीं है लेकिन इस बात पर वो बहस भी नहीं कर सकते। बस दो लोग साथ रह रहे हैं जब जो भूख लगी बुझा ली बस इससे ज़्यादा कोई महत्त्व नहीं है अजिंक्य का आपगा की ज़िन्दगी में। दोनों का अपना स्पेस है, अपनी प्राइवेसी है, अपना जीवन है जिसमें दोनों में से किसी को भी हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है लेकिन जब दोनों का प्यार के बारे में नज़रिया सामने आता है तो उसमें भी आपगा के लिए कुछ नया नहीं है क्योंकि उसके लिए प्रेम वगैरह सिर्फ ख्याल हैं जबकि वास्तव में तो सारा खेल हारमोंस testastrone, एस्ट्रोजन और प्रोजेस्टेरोन का है, जिसमें जो ज़्यादा होता है वो उसकी तरफ आकर्षित होता है। सब हारमोंस का खेल होता है और इंसान उसे प्रेम नाम दे देता है जबकि ये विशुद्ध रासायनिक प्रक्रिया होती है कहना है आपगा का, लेकिन अजिंक्य नहीं मानता उसके लिए प्रेम एक अनुभूति है और जब उन अनुभूतियों के साथ सेक्स किया जाता है तब सम्पूर्ण तृप्ति होती है लेकिन आपगा को ऐसा नहीं लगता, लेकिन कहीं न कहीं अजिंक्य की बात उसे कचोटती है क्योंकि वो अपनी तुलना अपनी कामवाली से जब करती है तो पाती है वो हमेशा खुश रहती है, असंतोष का उसके जीवन में कोई काम ही नहीं होता लेकिन उसे अहसास होता है जैसे कोई कमी सी है और उस कमी को उसने दूर करना है लेकिन वो कमी क्या है वो समझ नहीं पाती, तब अजिंक्य उसे प्रेम का महत्त्व बताता है लेकिन वो ऐसी लड़की है जो कुछ भी बिना आजमाए मानने वालों में से नहीं है । फिर एक गंभीर निर्णय दोनों मिलकर लेते हैं। मेड के पति से वो सम्बन्ध बनाकर जानना चाहती है कि आख़िर वो इतनी संतुष्ट कैसे रहती है और उस तरफ कदम बढ़ा भी देती है जिसका हल उसे अजिंक्य की बाहों में आकर मिलता है। प्रेम और सिर्फ देह के उत्सव का फर्क उसे समझ पार्टनर की भी उतनी ही खुली सोच है जहाँ एक प्रयोग के माध्यम से देह और प्रेम के अंतर को स्पष्ट किया गया है, यहाँ कोई दैहिक शुचिता का प्रश्न नहीं है क्योंकि जब आप देह को देह की तरह ही समझोगे तो सम्बन्ध पर रिश्ता हावी नहीं होता, वहाँ गिव एंड टेक का समीकरण ही व्याप्त होता है तो कोई अपराधबोध जैसी मानसिकता जन्म नहीं लेती तो ऐसे प्रयोग आसानी से अमल में लाये जा सकते हैं लेकिन अभी क्योंकि ये समाज में कम स्वीकार्य है इसलिए प्रश्न उठने भी लाजिमी हैं। लेखक का प्रयोगवादी नज़रिया कहानी को अलग दिशा देते हुए प्रेम की उपयोगिता को उच्च पायदान पर स्थापित करता है जो प्रेम की जीत है, रिश्तों की जीत है जहाँ दैहिक सुख से ज़रूरी होता है आत्मिक सुख और आत्मिक सुख अपनत्व और लगाव से ही उत्पन्न होता है फिर वहाँ देह गौण हो जाती हैं और प्रेम अपनी उच्चता को प्राप्त कर लेता है।

'नक्कारखाने में पुरुष विमर्श' वास्तव में पुरुष विमर्श का जीवंत सबूत है। मनेजर साहब मुख्य किरदार है अपनी पत्नी से पीड़ित हैं। एक गाँव जहाँ कोई पढ़ा लिखा नहीं, उस पर सौतेले भाई लेकिन आपसी सम्बन्ध सगों से भी ज़्यादा सगे, एक खुशहाल सा जीवन होते हुए भी पत्नी के आने के बाद मनेजर साहब का जीना दुश्वार हो जाता है क्योंकि पत्नी भी थोड़ी बहुत पढ़ी लिखी है और मनेजर साहब बैंक में मैनेजर हैं साथ में कवि हृदय रखते हैं। अपना जीवन तो जीते ही हैं साथ में भाइयों और उनके बच्चों के लिए भी बहुत कुछ करना चाहते हैं लेकिन पत्नी के होते चाहकर भी ज़्यादा नहीं कर पाते। वहीं पत्नी दिन पर दिन उद्दंड होती जाती है जिसे किसी की परवाह ही नहीं, न रिश्तों की न पति की बस अपने हिसाब से जीना ही उसका मुख्य लक्ष्य है, कहीं न कहीं वो उन्हें दोषी समझती है क्योंकि वो माँ नहीं बन सकती जबकि है उल्टा वास्तव में वो माँ नहीं बन सकती लेकिन मनेजर साहब सारा दोष अपने सिर ही लेते हैं क्योंकि वो उनकी पसंद की थीं यदि बता दिया तो उनकी दूसरी शादी की बात शुरू हो जाती इसलिए सारा सच छुपा कर रखते हैं और शिव की तरह गरल पीते रहते हैं, समयनुसार भाइयों का शहर चले जाना, पत्नी का उन्हें उपेक्षित करना और यहाँ तक उनके संग्रह या उनके शौक का भी उपहास उड़ाना उसका नियम है, सब सहते हैं, आपसी सम्बन्ध तो जाने कब से हैं ही नहीं, खाने तक के लिए उनके लिए कुछ नहीं होता ऐसा जीवन जीते हैं और जब छोटे भाई के बच्चों के लिए कुछ करना चाहते हैं तो भी पत्नी द्वारा कोहराम मचाना उन्हें इतना विचलित करता है कि वो एक निर्णायक कदम उठा लेते हैं।

लेखक ने आज की सोच पर प्रहार किया है मानो कहना चाहता हो कि ज़रूरी नहीं हमेशा जो स्त्री हमेशा रोती बिलखती रहे वो ही सही हो, कभी-कभी सच बहुत कड़वा होता है, क्योंकि आज स्त्री को सहानुभूति जल्दी मिल जाती है तो वो उसका फायदा भी उठाती है और कोई भी निर्णय लेने से पहले दोनों पक्षों का सच जानना ज़रूरी होता है। आज जाने कितने पुरुष किन हालात में जी रहे हैं कोई अंदाज़ा भी नहीं लगा सकता, क्योंकि सदियों से स्त्री ही दबी कुचली सहमी रही है तो पलड़ा उसका भारी हो जाता है। बात सिर्फ इस कहानी की नहीं है क्योंकि ऐसे चरित्र आस-पास मिल जाते हैं बल्कि कहानी के माध्यम से पुरुषों की व्यथा को कहने की कोशिश की गई है। कहानी पुरुष विमर्श का सशक्त चित्र प्रस्तुत करती है।

'चुकारा' अपने आप में एक अलग ही चित्र प्रस्तुत करती है। मेजर रविकांत और उनकी पत्नी, जो रिटायर हो चुके हैं, अपने पैतृक शहर में, अपने मकान में रहते हैं। बच्चे बाहर सेटल हैं इसलिए दोनों पति पत्नी अपना बँधा-बँधाया अनुशासित जीवन जी रहे हैं कि अचानक राहुल वर्मा नाम के शख्स का आना उनकी

ज़िन्दगी में उथल पुथल मचाता है, जो उनसे अपनी दुकान का उद्घाटन करवाना चाहता है और उनसे करवाता भी है, भावनाओं में बहाकर लेकिन एक पहेली बना रहता है जो उन्हें सोचने पर विवश करता है कि आख़िर ये हमारे पीछे क्यों पड़ा है ? कहीं संपत्ति हथियाने का उद्देश्य तो नहीं ? ज़बरदस्ती उन्हें गिफ्ट देता है मेरा इस संसार में कोई नहीं कहकर तो ये बात भी उन्हें संशय में डालती है कि कल को उलटे सीधे ढंग से पैसे कमाकर लाये और उन्हें रखने को देने लगे और एक दिन ऐसा ही होता है तो उनके सब्र का बाँध टूट जाता है और वो उसे डांटते हैं और चले जाने को कहते हैं तब वो अपने जीवन का सत्य बताता है कि उसका कोई नहीं है, एक दोस्त के साथ बिज़नेस शुरू करने कुछ पैसों की ज़रूरत थी और रास्ता कोई था नहीं लेकिन फिर इंतज़ाम हो गया और बिज़नेस चल निकला तो यहाँ भी खोल लिया मगर मुख्य बात नहीं बतायी कि पैसों का इंतजाम आखिर हुआ कहाँ से ?

कहानी तो इतनी भर है लेकिन जिस नाटकीयता से कहानी आगे बढ़ती है तो कई जगह जो प्रश्न और संशय उठाते हैं वो पाठक के दिल में कहानी पढ़ते-पढ़ते स्वयंमेव उठने लगते हैं। एक अनुत्तरित प्रश्न छोड़ जाती है कहानी। कहानी साधारण है लेकिन उसमें रोचकता कैसे कायम करनी है, ये लेखक को पता है, कैसे पाठक को पढ़वा ले जाना है ये भी उसे पता है क्योंकि लेखक मानव मनोविज्ञान का ज्ञाता है और लेखनी में वो दम रखता है जो पाठक को अंत तक बाँधे रखे।

अंत में दो छोटी कहानियाँ खिड़की और सुनो मांडव दोनों ही प्रेम की तलाश करती रूहों का एकालाप है जहाँ प्रेम की चाह में दोनों खुद को मिटा देती है और इंतज़ार की शम्मा जलती रहती है कायनात के अंत तक। भटकती रूहें और प्रेम जो इंतज़ार बन उनसे उन्हें ही छीन चुका है लेकिन ज़िंदा है।

अब समग्रता से देखा जाए तो लेखक के पास सोच है, आस-पास की घटनाएँ हैं, ज़िन्दगी से जुड़ी यादें हैं, कथ्य है, शिल्प है और सबसे बड़ी चीज़ ज़िन्दगी का अनुभव है जो चिंतन को दिशा देता हुआ कहानी लिखवा ले जाता है। लेखक किसी एक विषय पर नहीं लिख रहा, समाज के अलग-अलग पहलुओं का समावेश कर अपने समय को रेखांकित कर रहा है जो ज़रूरी है।

वास्तव में लेखन वही है जो अपने समय को प्रस्तुत कर सके और लेखक वो ही कर रहा है। लेखक की कहानियों में जीवन है, समाज है, राजनीति है, दर्शन है, प्रेम है, सब कुछ है। सबसे बड़ी चीज़ उसको कहने का ढंग है, प्रस्तुतीकरण की विधा में लेखक माहिर है तभी एक सीधी सी बात हो या घटना हो उसको कलात्मक रुख के साथ प्रस्तुत करने की कला में लेखक सिद्धहस्त हैं। चिरई चुरमुन और चीनू दीदी, कसाब. गाँधी @यरवदा. इन, कितने घायल हैं कितने बिस्मिल हैं, नक्कारखाने में पुरुष विमर्श ऐसी कहानियाँ हैं जिनके जादू में पाठक खुद को बँधा पाएगा। वहीं हर एक फ्रेंड कमीना होता है एक संदेशपरक कहानी के रूप में खुद को प्रस्तुत करती है तो दूसरी अन्य कहानियाँ समाज में व्याप्त सामाजिक बुराइयों को इंगित करती हैं जो एक सफल कथाकार के रूप में लेखक को प्रस्तुत करती हैं।

बाकि जिन कहानियों ने प्रभाव डाला वो खुद ज़ेहन पर अंकित हो जाएँगी। लेखक का चिंतन और कथन दोनों समय की आवश्यकता को समझते हैं और सारे समाज को साथ लेकर चलते हैं जो उन्हें एक अलग पहचान देते हैं। उनकी विशिष्ट शैली उन्हें आज की पीढ़ी के लेखकों से अलग स्थान दिलाती है। उनकी कहानियाँ समाज को न केवल वर्णित करेंगी उम्मीद है नईदिशा भी देंगी। ❐

Hindi Pracharni Sabha

(Non-Profit Charitable Organization)

Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna ID No. 84016 0410 RR0001

'For Donation and Life Membership we will provide a Tax Receipt'

Annual Subscription: $25.00 Canada and U.S.A.

Life Membership: $200.00

Donation: $

Method of Payment: Cheque, payable to "Hindi Pracharni Sabha"

सदस्यता शुल्क (भारत में)

वार्षिक : 200 रुपये

दो वर्ष : 400 रुपये

पाँच वर्ष : 1000 रुपये

आजीवन : 3000 रुपये

Contact in Canada:
Hindi Pracharni Sabha
6 Larksmere Court
Markham,
Ontario L3R 3R1
Canada
(905)-475-7165
Fax: (905)-475-8667
e-mail: hindichetna@hotmail.com

Contact in USA:
Dr. Sudha Om Dhingra
101 Guymon Court
Morrisville,
North Carolina
NC27560
USA
(919)-678-9056
e-mail: sudhadrishti@gmail.com

Contact in India:
Pankaj Subeer
P.C. Lab
Samrat Complex Basement
Opp. Bus Stand
Sehore -466001, M.P. India
Phone: 07562-405545
Mobile: 09977855399
e-mail: subeerin@gmail.com

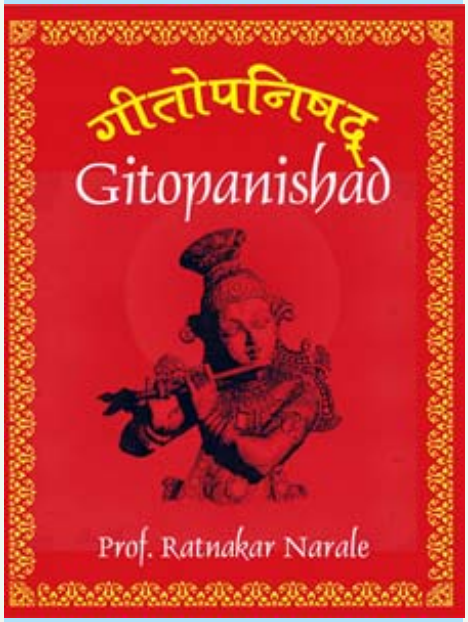

141-26-Livingston Rd. Toronto on, Canada
GITOPANISHED
Published By Pustak Bharti (Book India), Torontoo, ON. Canada, M2R 3E4
Sanskrat Hindi research Institue
Copy Right C2015
ISBN 978-1-897416-72--3

गीतोपनिषद्

समीक्षकः डॉ. सुशीला देवी गुप्ता

श्रीमद्भगवद्गीता देश काल की सीमा से मुक्त सार्वभौमिक ग्रंथ है। यह भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से निकली हुई दिव्य वाणी है; जो विश्व के प्रत्येक मानव को कर्त्तव्य बोध करा के नवजीवन का संचार करती है, इसीलिए विश्व के सभी धर्मगुरुओं एवं विद्वानों ने इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। इस के दिव्य ज्ञान को स्वयं धारण कर जो व्यक्ति दूसरों को भी स्वधर्म व कर्त्तव्य पालन करने की प्रेरणा देता है, वह दूसरों कों तो धन्य करता ही है, स्वयं भी जीवन मुक्त हो जाता है। उस के विषय में गीता में स्वयं भगवान् कहते हैं कि यह परम गुह्य उपदेश जो मनुष्य मेरे भक्तों से कहेगा, वह मेरी भक्ति पाकर निस्सन्देह मुझे प्राप्त करेगा।

य इमं परमं गुह्यं मदभक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परांकृत्वामामेवैष्यत्यसंशय।। 18:68।।

यह कथन आचार्य डॉ. रत्नाकर नराले जी के लिए सर्वथा उपयुक्त है। उन्होंने गीता पर आचार्य की उपाधि प्राप्त की, फिर गीतोपनिषद् लिखकर जन-जन तक गीता का संदेश पहुँचाने का जो प्रयास किया है, उसकी जितनी प्रशंसा की जाए कम है। इस उद्देश्य को पूरा करने में गीतोपनिषद् सराहनीय व सफल काव्य है।

यह सम्पूर्ण काव्य संस्कृत अनुष्टुप् छन्द में है, जिसका प्रयोग सर्व प्रथम महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में किया है। इस में गीता के 701 श्लोकों को 1447 स्वरचित छन्दों में रूपान्तरित किया गया है। गीता की टीका विश्व की अनेक भाषाओं में गद्य व पद्य में की गई है, किन्तु यह काव्य विश्व का सर्व प्रथम गीता का संस्कृत अनुष्टुप् रूपान्तर है, यह डॉ. रत्नाकर जी की मौलिकता व प्रतिभा का परिचायक है।

इस काव्य में गीता के 18 अध्यायों को 35 संगीत मय निरूपणों में शीर्षक व उपशीर्षकों में विभाजित करके मूल संहिता के साथ सुगम रीति से प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें गीता की महत्त्वपूर्ण पार्श्वभूमि, इतिहास, पात्र परिचय, सभी यौगिक शब्दों की परिभाषाएँ, प्रश्नों के सविस्तार उत्तर, वर्ण व्यवस्था की टीका कर्म-अकर्म, कर्म-फल, निष्काम कर्म, योग-भोग, आत्मा-परमात्मा, देह-देही, जन्म-मृत्यु, पुरुष-प्रकृति आदि का स्पष्टीकरण, गुरु शिष्य परम्परा, गीता के सभी योग आदि पर जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म सुन्दर विवेचन किया गया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। संस्कृत न जानने वाले गीता जिज्ञासुओं के लिये इसका इंग्लिश भाषा में भी अनुवाद किया गया है, इस कारण यह काव्य विश्व की समस्त जनता के लिए प्रेरणादायी बन गया है।

कला पक्ष की दृष्टि से भी यह काव्य प्रशंसनीय है। इसमें प्रस्तुत सरस्वती वन्दना, भारत राष्ट्रगीत, योग गीत, शांति पाठ, विश्व एकता गीत, आदि में आचार्य रत्नाकरजी की संगीतप्रियता एवं अलौकिक प्रतिभा के दर्शन होते हैं, इन गीतों में उन्होंने विभिन्न राग रागिनी तथा अनेक छन्दों का प्रयोग किया है। हिन्दी भाषा में लिखे गए इनके गीत भावसंवेदनाओं तथा भक्तिरस से परिपूर्ण हैं। संगीतप्रेमी, कथावाचक व भक्तजन इन गीतों को मन्दिर में व धार्मिक आयोजनों में गा सकते हैं। यह ग्रंथ ऑनलाइन amazon.com पर उपलब्ध है।

गीता पर संगीतमय प्रवचन, तथा गीता पाठ करने के लिए हारमोनियम के सुर तथा तबले की ताल के साथ दिये गए 172 गीतों से युक्त गीतोपनिषद् एक मूल्यवान साधन है। आशा है यह पुस्तक सब को लाभान्वित करेगी।

❐

पुस्तक समीक्षा

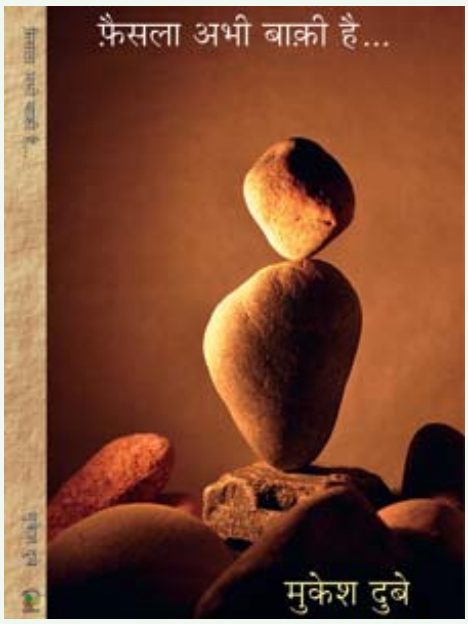

फैसला अभी बाक़ी है..., लेखकः मुकेश दुबे
मूल्यः 100 रुपये
शिवना प्रकाशन, पी.सी.लैब कॉम्पलेक्स बेसमेंट,
बस स्टैंड, सीहोर-466001 (म.प्र.)
फ़ोनः07562405545, 07562695918
Email-shivna.prakashan@gmail.com

फैसला अभी बाक़ी है...: सहज और सरल भाषा

समीक्षकः शहरयार अमजद ख़ान

लेखक मुकेश दुबे के एक वर्ष की अवधि में ही चार उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। उनका चौथा उपन्यास 'फैसला अभी बाक़ी है...' पूर्व के तीनों उपन्यासों से विषय और शैली दोनों में ही कुछ अलग हट के है। हालाँकि उनके सारे उपन्यास सामाजिक पृष्ठभूमि के ताने बाने पर ही रचे गए हैं लेकिन, यह उपन्यास उस सामाजिक पृष्ठभूमि से अलग दूसरे विषयों को भी छूता हुआ गुज़रता है। यह उपन्यास अपराध जगत और उसके भीतर छटपटा रहे कुछ निर्दोष लोगों की छटपटाहट को अलग तरीके से सामने लाता है। अपराध के पीछे की मनोदशा और परिस्थितियों की पड़ताल यह उपन्यास करता है। हर अपराधी जो कि जेल में है वह आपराधिक मानसिकता का हो यह ज़रूरी नहीं है, यही स्थापना यह उपन्यास करता है। मुकेश दुबे ने अपने पिछले उपन्यासों में जिस सहज और सरल भाषा का उपयोग किया था, इस उपन्यास में भी उसीका उपयोग किया है। जिसके कारण यह उपन्यास भी उनके पिछले उपन्यासों की ही तरह पठनीय बन पड़ा है। स्थानीय बोली के शब्दों को मुकेश दुबे बखूबी अपने लेखन में उपयोग करते हैं। जिसके कारण रोचकता बढ़ जाती है। इन दिनों सामाजिक पृष्ठभूमि पर लेखन बहुत ज़्यादा नहीं हो रहा है और यदि हो भी रहा है तो वह बहुत क्लिष्ट हो रहा है जिसके चलते सामान्य पाठक उससे अपने आपको जोड़ नहीं पाता है। मुकेश दुबे ने दोनों के बीच की राह चुनी है। उन्होंने एक संतुलन साधते हुए यह उपन्यास लिखा है। उनके पूर्व के उपन्यासों में जो कमियाँ नज़र आती थीं वह इस उपन्यास में दिखाई नहीं देती हैं। उपन्यास पाठक को प्रारंभ से अंत तक बाँधे हुए रखता है। इतनी कसावट के साथ मुकेश दुबे ने इस उपन्यास को लिखा है कि पाठक इसमें कहीं ऊबता नहीं है, पढ़ता जाता है। उपन्यास के पात्र तथा कथा नायिका, पाठकों को अपने आस-पास के ही महसूस होते हैं। कथा नायिका के साथ पाठक एक प्रकार का जुड़ाव महसूस करने लगता है। यही लेखक की सबसे बड़ी सफलता है। आशा है पाठक इस उपन्यास को भी मुकेश दुबे के पूर्व के तीन उपन्यासों की तरह पसंद करेंगे।

❐

Email-shaharyarcj@gmail.com

पुस्तकें

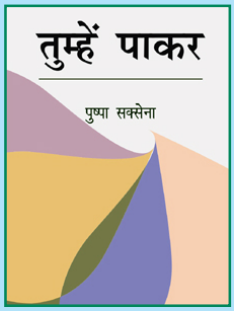

तुम्हें पाकर
(कहानी संग्रह)
लेखिकाः
डॉ. पुष्पा सक्सेना
प्रकाशकःसस्ता साहित्य मंडल, एन 77, पहली मंजिल, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001
दूरभाष-23310505,
मूल्यः 200 रुपये

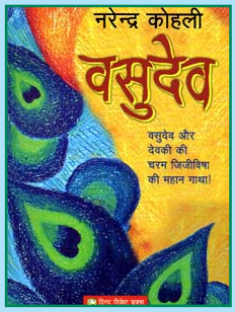

वसुदेव
(उपन्यास)
लेखकः नरेन्द्र कोहली
प्रकाशकः हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
जे-40, जोरबाग लेन, नई दिल्ली-110003
मूल्यः 250 रुपये
मूल्यः 250 /-रुपये

पुष्पा सक्सेना
(संकलित कहानियाँ)
प्रकाशकः निदेशक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, नेहरु भवन, 5 इंस्टीटयूशनल एरिया, फेज-11 वसंत कुञ्ज, नई दिल्ली-110070
मूल्यः 195 रुपये

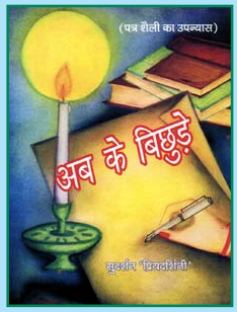

अब के बिछुड़े
(उपन्यास)
लेखिकाः
सुदर्शन प्रियदर्शिनी
प्रकाशकः नमन प्रकाशन, 4231 /1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
मूल्यः 350 रुपय

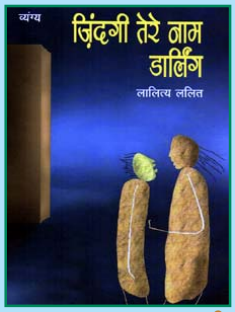

ज़िन्दगी तेरे नाम डार्लिंग
(व्यंग्य संग्रह)
लेखकः
लालित्य ललित
प्रकाशकः हिन्दी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उप्र) 246701
मूल्यः 200 रुपये

वुडब्रिज लाइब्रेरी में कवि गोष्ठी का आयोजन

रविवार 31 मई 2015 को वुडब्रिज लाइब्रेरी में कवि गोष्ठी का आयोजन हुआ। पिछले 6 वर्षों से हर साल यह गोष्ठी होती है। इस कवि सम्मेलन की व्यवस्था वुडब्रिज लाइब्रेरी के कार्यकर्ता श्री सुब्रामनियम और हिन्दी प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष और हिन्दी चेतना के प्रमुख संपादक-श्री श्याम त्रिपाठी और श्रीमती सरोज सोनी ने किया। संचालन का उत्तरदायत्व श्रीमती स्नेह सिंघवी और श्रीमती सरोज सोनी ने बड़ी योग्यता से निभाया। गोष्ठी बहुत सफल रही। इसमें लगभग 16 कवियों ने अपनी भावनाओं को दिलचस्प ढंग से सरल व तरल शब्दों में सहज रूप से गूँथ कर सुनाया और सभी श्रोताओं को विमोहित किया। छंद व अलंकारों के नवीन प्रयोग सहित सभी कविताओं में विषय व अभिव्यक्ति का अद्भुत सामंजस्य था। वुडब्रिज लाइब्रेरी ने सभी कवियों को प्रशंसा-पत्र भेंट करके उनका उत्साह बढ़ाया।

कार्यक्रम के अंत में हिन्दी चेतना के प्रमुख संपादक श्री श्याम त्रिपाठी जी ने श्री अरविन्द नराले, श्री रत्नाकर नराले को 'हिन्दी चेतना' पत्रिका का सहयोग देने के लिए और श्रीमती कृष्णा वर्मा को कैनेडा में 'हिन्दी चेतना' के विशेष सहयोगी के रूप में प्रशंसा पत्र भेंट किए।

डॉ. विष्णु सक्सेना को 'यश भारती' सम्मान

अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त गीतकार डॉ.विष्णु सक्सेना को लखनऊ के राम मनोहर लोहिया पार्क में विशाल जनसमूह सम्मुख उत्तरप्रदेश सरकार ने 2014 का सूबे का सर्वोच्च सम्मान 'यश भारती' प्रदान किया गया। 11 लाख रुपये की सम्मान राशि, सम्मान पत्र और शाल से मुख्य मंत्री श्री अखिलेश यादव ने सम्मानित किया। डॉ.विष्णु सक्सेना को यह सम्मान हिन्दी काव्य मंच की वाचिक परंपरा में महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए दिया गया है।

रोहित रूसिया को 'वागीश्वरी पुरस्कार'

सुप्रसिद्ध कवि तथा चित्रकार एवं 'हिन्दी चेतना' के लिए आवरण चित्र तथा रेखाचित्रों का सहयोग करने वाले श्री रोहित रूसिया को मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वागीश्वरी पुरस्कार से शीर्ष आलोचक डॉ. विजय बहादुर सिंह तथा वरिष्ठ कथाकार श्री उदय प्रकाश ने सम्मानित किया गया।

गिरीश पंकज को रामदास तिवारी सृजन सम्मान

व्यंग्य सबसे सार्थक अस्त्रः गिरीश पंकज

आज़ादी के बाद के समय को जानने के लिए हरिशंकर परसाई से लेकर मौजूदा व्यंग्य लेखकों को पढ़ना चाहिए। तब जिस महान भारत की कल्पना महात्मा गांधी ने की थी, आज देश पतन की ओर है। बाज़ारवाद का दैत्य, तो भ्रष्टाचार का दानव सामने खड़ा है। महंगाई डायन बन चुकी है। ऐसी प्रतिकूल स्थितियों से प्रतिकार करने को व्यंग्य जैसी अस्त्र-विधा ज़रूरी है। यह बातें मशहूर व्यंग्यकार व लेखक गिरीश पंकज ने शनिवार को रांची में कहीं। वह होटल ली लैक में आयोजित लीलावती फाउंडेशन के दूसरे सृजन सम्मान समारोह में बोल रहे थे। मौके पर गिरीश पंकज (रायपुर)को रामदास तिवारी सृजन सम्मान से नवाज़ा गया। उन्हें पुरस्कार स्वरूप समृति चिह्न, सम्मान पत्र व 25 हज़ार रुपए मानद राशि सौंपी गई। उन्हें यह सम्मान उनके समग्र साहित्यिक अवदान के लिए मिला है।

व्यंग्य का रीतिकालः प्रेम जनमेजय

दिल्ली से आए वरिष्ठ व्यंग्य-लेखक प्रेम जनमेजय ने, बतौर मुख्य अतिथि ने कहा कि व्यंग्य का इनदिनों रीतिकाल चल रहा है। लेखकों की नई पीढ़ी के समक्ष कई तरह की चुनौतियाँ हैं। मोबाइल व नेट के दौर में संवादहीनता की स्थिति है। इससे आपसी रिश्तों पर गहरा असर पड़ा है। पूँजीवाद अपने लक्ष्य में सफल हुआ है कि व्यक्ति महज अपने बारे में सोचे। उन्होंने कहा कि जो रचना सवाल न करे, उसे वे नपुंसक रचना कहते हैं।

-रांची के पत्रकार अनुज शहरोज़ की रपट

Beacon Signs

1985 Inc.

7040 Torbram Rd.Unit # 4, Mississauga, ONT.L4T3Z4

Specializing In :

Illuminated Signs Awnings & Pylons
Channel & Neon Letters

Banners
Silk Screen

Arthitectural Signs
Vehicle Graphics
Engraving

Design Services

Precision CNC Cutout Letters
(Plastic, Wood, Metal & Logos)

Large Format Full Colour Imaging System
Sales - Service - Rentals

Manjit Dubey

दुबे परिवार की ओर से हिन्दी चेतना को बहुत बहुत शुभकामनायें

Tel:(905) 678-2859 Fax :(905) 678-1271

Email: beaconsigns@bellnet.ca

पुस्तकों के बिना दुनिया की कल्पना भी नहीं की जा सकती : संतोष चौबे

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने किया सीहोर में विश्व पुस्तक दिवस का आयोजन

सीहोर : पुस्तकों के बिना हम दुनिया की कल्पना भी नहीं कर सकते। पुस्तकें हमारी मित्र हैं, हमारी पथ प्रदर्शक है तथा जब भी हम किसी उलझन में होते हैं तो हमें रास्ता दिखाने का काम पुस्तकें ही करती हैं। यह चिंता का विषय है कि पुस्तकों के स्थान पर दूसरे संचार माध्यमों को प्राथमिकता दी जा रही है, लेकिन फिर भी पुस्तकों की उपयोगिता बनी रहेगी। छोटे शहरों में पुस्तकों को लेकर चेतना जागृत करने की आवश्यकता है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास यदि दिल्ली जैसे महानगरों को छोड़कर सीहोर जैसे कस्बों को अपनी प्राथमिकता में रख रहा है तो यह एक सकारात्मक पहल है जिसका स्वागत किया जाना चाहिए। सुप्रसिद्ध कवि कथाकार तथा आइसैक्ट विश्वविद्यालय के कुलपति श्री संतोष चौबे ने 'राष्ट्रीय पुस्तक न्यास' (एन.बी.टी.) तथा सिद्धपुर श्री हनुमान शिक्षा समिति, सीहोर द्वारा 'विश्व पुस्तक दिवस' पर स्थानीय सिंधी कॉलानी स्थित ब्ल्यू बर्ड स्कूल के सभागार में आयोजित एक दिवसीय संगोष्ठी में मुख्य वक्ता के रूप में बोलते हुए यह विचार व्यक्त किये। संगोष्ठी का विषय था 'वर्तमान समय में पुस्तक की भूमिका'। कार्यक्रम का आयोजन शिवना प्रकाशन, ढींगरा फाउण्डेशन यूएसए, सिद्धपुर श्री हनुमान शिक्षा समिति तथा बी बी एस क्लब द्वारा संयुक्त रूप से किया गया था। कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. पुष्पा दुबे ने की। विशेष अतिथि राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के साहित्य संपादक कवि, कथाकार डॉ. ललित मंडोरा थे।

दीप प्रज्वलन के पश्चात सभी अतिथियों को पुष्प गुच्छ के स्थान पर पुस्तकें भेंट कर स्वागत चंद्रकांत दासवानी, सन्नी गोस्वामी तथा शहरयार खान ने किया । तत्पश्चात स्थानीय साहित्यकार मुकेश दुबे के उपन्यास 'फ़ैसला अभी बाक़ी है...' का विमोचन भी किया गया। विषय पर प्रारंभिक वक्तव्य देते हुए राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के साहित्य संपादक कवि, कथाकार डॉ. ललित मंडोरा ने कहा कि सीहोर में आज आयोजन को लेकर जिस प्रकार से उत्साह मिला है उससे भविष्य में इस प्रकार के और आयोजन सीहोर सहित छोटे शहरों में करने की न्यास की योजना को बल मिला है। श्री मंडोरा ने कहा कि पुस्तकों से समाज में चेतना आती है और पुस्तकें जगाने का काम करती हैं। कथाकार मुकेश वर्मा ने कहा कि पुस्तकें नारियों की तरह होती हैं जो माँ, बहन, पत्नी आदि विभिन्न रूपों में हमारे साथ हमेशा होती हैं। ईश्वर ने जब दुनिया बनाई तो पूर्व में केवल पुरुष को बनाया फिर पुरुष के एकाकीपन को कम करने महिलाओं को बनाया तथा फिर दोनों के एकाकीपन को कम करने पुस्तकों को बनाया। पत्रकार वसंत दासवानी ने बोलते हुए कहा कि पाठकों की संख्या घटी है तो उसके पीछे कहीं न कहीं पुस्तकों की अनुपलब्धता तथा पुस्तकों की कीमतें भी ज़िम्मेदार हैं। उन्होंने पुस्तकों को सुलभ तथा सस्ती बनाए जाने पर बल दिया। कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहीं हिन्दी की विभागाध्यक्ष डॉ. पुष्पा दुबे ने कहा की पुस्तकें हमें हर चीज़ को, हर घटना को देखने का नया नज़रिया प्रदान करती हैं। उन्होंने कामायनी सहित अन्य पुस्तकों का संदर्भ देते हुए कहा कि इन पुस्तकों के उजाले में जब हम कुछ घटनाओं को देखते हैं तो हमें वो घटनाएँ अलग दिखाई पड़ती हैं। इस अवसर पर दिल्ली से पधारे डॉ. ललित मंडोरा को शहर के प्रबुद्ध वर्ग की ओर से सम्मानित भी किया गया। विचारक ओम दीप तथा पत्रकार रामनारायण ताम्रकार ने शाल भेंट कर उन्हें सम्मानित किया। संगोष्ठी के पश्चात आयोजित काव्य गोष्ठी में संतोष चौबे, बलराम गुमाश्ता, महेंद्र गगन, लालित्य ललित, मुकेश दुबे, पंकज सुबीर, विनय उपाध्याय तथा मोहन सगोरिया ने अपनी प्रतिनिधि रचनाओं का पाठ किया। कार्यक्रम में बड़ी संख्या में शहर के तथा विशेष रूप से भोपाल से आए साहित्य प्रेमी उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन श्री विनय उपाध्याय ने किया। **-चंद्रकांत दासवानी**

डॉ. विजय बहादुर सिंह को 'भवभूति अलंकरण'

शीर्ष आलोचक डॉ. विजय बहादुर सिंह को उनके समग्र साहित्यिक अवदान हेतु मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भवभूति अलंकरण से शीर्ष आलोचक डॉ. रमेश दवे तथा वरिष्ठ कथाकार श्री उदय प्रकाश ने भोपाल के मानव संग्रहालय के सभागार में आयोजित कार्यक्रम में सम्मानित किया। इस अवसर पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष श्री पलाश सुरजन सहित बड़ी संख्या में भोपाल के साहित्यकार एवं पत्रकार उपस्थित थे।

हमारी गर्दनें और क़लम दोनों झुकी हुई हैं

आज अपनी बात मैं एक कहानी से शुरू करती हूँ, जो बचपन में अपनी प्रज्ञाचक्षु मौसी से सुनी थी। एक यात्री रास्ता भटक कर उस जगह चला गया; जहाँ सात कोस तक के गाँवों को झुकी गर्दनों वाला इलाका कहा जाता था। उस इलाके के पास पहुँचकर यात्री बहुत चिंतित हो गया। उन गाँवों को पार करके ही वह अपनी मंज़िल तक पहुँच सकता था। पर इतने कोस उसे गर्दन झुका कर चलना पड़ना था, जो उसे बेहद मुश्किल लग रहा था। गर्दन उठा कर चलने का मतलब था, उसकी आँखें फोड़ दी जातीं। वह थका हुआ था और उसके घोड़े को भी आराम की ज़रूरत थी। वह अपने घोड़े के साथ उस इलाके की हद के बाहर बरगद के पेड़ के नीचे रुक गया।

रात उसने उसी वृक्ष के नीचे विश्राम किया। दूसरे दिन उसके भीतर क्या प्रेरणा हुई कि वह तरोताज़ा होकर, अपने घोड़े पर सवार होकर, सीना तानकर, गर्दन अकड़ा कर अपने रास्ते चलने लगा। चहुँ ओर शोर मच गया। उसकी सीधी गर्दन के बारे में वहाँ के सत्ताधारी को खबर मिल गई। उसने अपने सिपाही उसे पकड़ने के लिए भेजे।

सत्ताधारी के सम्मुख उसे प्रस्तुत किया गया। वह अपने उसी अंदाज़ में खड़ा रहा। सत्ताधारी को बहुत गुस्सा आया। उसने उससे कहा-''यात्री तुम्हें नहीं मालूम कि इस इलाके में अगर कोई गर्दन सीधी करके चलता है, तो उसकी आँखें निकाल ली जाती हैं। तुम अगर अपनी खैर चाहते हो तो गर्दन नीची कर लो।''

यात्री विनम्रता से बोला-''मालिक, मैं तो आपके दर्शन करना चाहता था और साथ ही आपको प्रणाम करना चाहता था। अगर गर्दन झुकाता हूँ तो बस धरती नज़र आती है। आप नज़र नहीं आते। आप धरती वासी थोड़े ही हैं, आप तो सबसे ऊँचे हैं, ऊपर के स्थान पर हैं।'' उसने दोनों हाथ ऊपर किए। ''आपको प्रणाम तो गर्दन उठा कर ही किया जा सकता है।''

फिर उसने कर्मचारियों की ओर देखकर कहा- ''इन सबकी गर्दनें झुकी हैं, वे आपको नहीं धरती को नमन करते हैं। ये गर्दनें उठाकर ही आपका अभिवादन कर सकते हैं। मालिक, आपका सम्मान करना मेरे साथ-साथ इनका सबका भी सौभाग्य होगा।''

सत्ताधारी को यात्री की बात बहुत पसंद आई। उसने सबको गर्दनें उठाने का हुक्म दिया। अब वर्षों से झुकी गर्दनें सीधी नहीं हो पा रही थीं। पीढ़ी दर पीढ़ी झुकी गर्दनों को अब सहारा चहिए था। लकड़ी बाँध कर उन्हें सीधा किया गया।

यात्री को बहुत से उपहार देकर विदा किया गया। वह जाते-जाते लोगों के भीतर मन्त्र फूँक गया और उन्हें सोचने के लिए मजबूर कर दिया कि उस अकेले ने उनकी गर्दनें सीधी करवा दीं, अगर वे सब एक हो जाएँ तो सत्ता पलट सकते हैं। यात्री के जाने के बाद लोगों ने सत्ताधारी से सत्ता छीन ली।

यह कहानी मुझे आज इसलिए उपयुक्त लगी कि शायद हमारी भी गर्दनें और क़लम दोनों झुकी हुई हैं। क्या हम सचमुच उसी युग में जी रहे हैं या आवाज़ बुलन्द करने की हममें ऊर्जा ही नहीं बची। लड़कियाँ, बच्चे शोषण का शिकार हो रहे हैं। पत्रकारों को ज़िंदा जलाया जा रहा है और हम कुछ भी नहीं कर पा रहे। हलकी सी गर्दन उठाते हैं, विरोध व्यक्त करते हैं और फिर गर्दन झुकाकर अपने कामों में व्यस्त हो जाते हैं। कानून और सत्ता की ताकत को दोषी ठहरा कर चुप रह जाते हैं।

पिछले अंक में मैंने लिखा था कि इस देश में अगर लोग किसी बात के विरोध में एकजुट हो जाते हैं तो फिर उसका समाधान निकाले बिना नहीं छोड़ते। इसके लिए कभी सरकारी संपत्ति नष्ट नहीं की जाती, कभी हॉस्पिटल बंद नहीं होते या रेल का चक्का जाम नहीं किया जाता। लोकतान्त्रिक अधिकारों का प्रयोग कर लोग अपनी बात मनवा लेते हैं। क्या स्वदेश में ऐसा नहीं हो सकता?

इस बार फिर कुछ लोगों ने पूछा है कि, रचनाएँ चुनने की प्रणाली क्या है! भारत के रचनाकारों की रचनाएँ क्यों वापिस की जाती हैं? क्या हम प्रवासी लेखकों को ही छापना चाहते हैं? मित्रो, हिन्दी चेतना वैश्विक पत्रिका है! कैनेडा और भारत दोनों देशों से प्रकाशित होती है। देश और विदेश के साहित्यकारों में पुल की तरह काम करती है। रचनाओं की सार्थकता को प्रमुखता दी जाती है। उसी के अनुरूप किसी अंक में भारतेतर रचनाकार अधिक होते हैं और किसी अंक में देश के। देशी-विदेशी रचनाकारों का अनुपात तय करने का और रचनाएँ अन्यत्र छपने भेजने को कहने का, हमारा कोई मापदंड नहीं, कोई हिडन एजेंडा नहीं। निष्पक्षता से निर्णय लेते हैं।

कुछ तुम ने कहा....कुछ हमने सुना। कहने सुनने से रिश्ते मज़बूत होते हैं। कह दिया करें अपने दिल की बात। अच्छा लगता है।

आपकी मित्र

सुधा ओम ढींगरा

वर्षा का आगमन एक प्रकार से परिवर्तन का संकेत होता है। परिवर्तन इस बात का कि जो कुछ चल रहा है वह अब बदलेगा। लेकिन हम प्रकृति के इस एक संकेत से कुछ नहीं सीखते। आमजन के जीवन में परिवर्तन की वर्षा का मानसून कभी नहीं आता।

NEOFUSION CREATIVE FOUNDATION

"CHANGING LIVES BY EDUCA TION & EMPOWERMENT"

सपने हुए अपने

Jaipur chapter is working under aegis of

DHINGRA FAMILY FOUNDATION,USA

"To minimize the rate of
School Dropouts and **Child Labour**
in underprivileged communities by creating interest in studies along with empowering them with employment skills through training in **Visual and Performing arts** and ensuring that they make a living out of it"

OBJECTIVES

- Child Education
- Stop School Dropouts
- Re-entry program for school dropouts
- Overall Personality Development
- Platform for Future
- Waste Paper Management
- Vocational Training
- Skill Development
- Health & Hygiene
- Child and Parents Counseling
- Financial Support for Education
- Promote Gender Equality
- Awareness Programs for Girls

9928570700, 09958070700 , 0141-2504886

www.facebook.com/neofusioncreativefoundation

contact@neofusioncreativefoundation.org

www.neofusioncreativefoundation.wordpress.com

www.neofusioncreativefoundation.org

Digital India

(Power To Empower)

"डिजिटल इंडिया"
के निर्माण तथा भारत सरकार की
"बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ" योजना
में "ढींगरा फ़ाउण्डेशन, अमेरिका"
का एक छोटा सा विनम्र योगदान।

आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निःशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना

ढींगरा फ़ाउण्डेशन, अमेरिका

योजना हेतु सम्मान देते सांसद श्री आलोक संजर, आइसैक्ट यूनिवर्सिटी चांसलर श्री संतोष चौबे

बालिकाओं को शिक्षण सामग्री प्रदान करते नपाध्यक्ष श्री नरेश मेवाड़ा, श्री अनिल पालीवाल, श्री शंकर प्रजापति

ओरिएंटेशन कार्यक्रम में बालिकाओं को मार्गदर्शन प्रदान करते नपाध्यक्ष श्री नरेश मेवाड़ा

निःशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत प्रशिक्षण प्राप्त करतीं बालिकाएँ